वैवाहिक निबन्धावली—४

केवल पतियों के लिए

सुहागरात

(भाग २)

या

पतियों को सीख

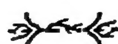
अपने प्रेमियों के नाम

—:o:—

विवाह करके भी मनुष्य कैसे सुखी रह सकता है?

—.o:—

कृष्णाकान्त मालवीय



पोस्टेज पैकिङ्ग अलग] सं० २००२ [सजिल्द ५)

प्रकाशक—
पं० पद्मकान्त मालवीय
अभ्युदय प्रेस,
प्रयाग।





मुद्रक—
श्री० एम० एल० पाण्डेय,
अभ्युदय प्रेस,
प्रयाग।

विषय-सूची

परिशिष्ट-भाग

द्वितीय संस्करण की भूमिका

'सुहागरात' या 'पतियों को सीख' का संस्करण, सन् १९३९ में ही समाप्त हो गया था। उसके बाद मैं नजरबन्द कर दिया गया और पूज्य पिता जी के स्वर्गारोहण के समय पेरोल पर छूट कर आया तो मेरा अधिक दिनों तक जेल से बाहर रह सकना इतना अनिश्चित था कि मैंने 'अभ्युदय', अभ्युदय प्रेस, तथा अपनी समस्त प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री इत्यादि का सारा भार सुप्रसिद्ध स्थानीय फर्म 'इण्डियन प्रेस प्रयाग' को सौंप दिया था। कागज की कमी और छपाई इत्यादि का समुचित प्रबंध न हो सकने के कारण सुहागरात का दूसरा संस्करण माग और इच्छा रहते हुये भी इससे पहले मैं प्रकाशित नहीं कर सका। इसका मुझे दुःख है। अब मौका मिला है तो 'सुहागरात' के तीनों भागों को मैं फिर से प्रकाशित कर रहा हूँ पुस्तकें जल्दी में छपी हैं और यत्र-तत्र उनमें भूलें रह जाना संभव है किन्तु हमारा विश्वास है कि पाठक उदारतापूर्वक उन भूलों को दृष्टिगोचर कर देंगे द्वितीय संस्करण होने के बाद सुहागरात के उर्दू, गुरुमुखी, गुजराती, इत्यादि देशी भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। पुस्तक की उपयोगिता का यह ज्वलन्त प्रमाण है। पुस्तक की उपयोगिता आज भी वैसी है जैसी आज से पहले थी इसमें मुझे सन्देह नहीं।

'सुहागरात' के द्वितीय संस्करण का मूल्य साढ़ेतीन रुपये था। वर्तमान काल को देखते हुये उसके मूल्य में एक रुपये की वृद्धि कुछ भी नहीं है। फिर भी इस मूल्य वृद्धि के लिए हम पाठकों से क्षमा प्रार्थी हैं। इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं 'सुहागरात' की यह पुस्तक पाठकों के हाथों में सप्रेम समर्पित करता हूँ।

भारती भवन
प्रयाग
२०-१-४६



पद्मकान्त मालवीय

हमारा निवेदन



"Joint life is by no means a bed of roses, but it is a supreme test of love".

वैवाहिक-जीवन अधिकतर स्त्रियों और पुरुषों का सुखमय नहीं हुआ करता। अधिकतर पति इच्छा रखते हुए भी अपनी पत्नी को प्रसन्न नहीं रख सकते, इसी प्रकार से अधिकतर पत्नियाँ अपने पति को सुखी नहीं रख सकतीं। हम लोगों में विद्या का अभाव है, शिक्षा का, जैसा चाहिये, हम लोगों में प्रचार नहीं और सुखी जीवन किसको कहते हैं इसकी परिभाषा भी हम लोग नहीं जानते। बड़े कुटुम्ब का एक अङ्ग होकर रहना ही—जब कि सभी लोगों का एक ही तरह का मिज़ाज नहीं, एक ही प्रकार की रुचि नहीं, एक ही आदर्श और एक ही समान ध्येय नहीं, जब कि पुरुष और स्त्री-विभाग के मस्तिष्कों में ज़मीन आसमान का अन्तर है—सब दुःखों का एक मात्र कारण है ऐसा हम नहीं मान सकते। पैसे की कमी, सासुओं की प्रसिद्ध आधिपत्य की लालसा, माता, पुत्र और बहू के दृष्टिकोणों और आदर्शों में फ़र्क़, तथा विद्या के अभाव के कारण स्त्री-अङ्ग की अनुदारता, संकुचित-हृदयता और उसके पुरातन पूजा के प्रेम आदि के माथे भी संसार के समस्त दुःखों का भार हम नहीं लाद सकते। पुरुष अङ्ग अङ्गरेज़ी पढ़ हवा में उड़ने लगा है, शिक्षा ने उसे उदार बना दिया है, उसकी भावनाएँ, कामनाएँ दूसरी हैं. उसकी आकांक्षाएँ दूसरी हैं, संसार के

"वैवाहिक-अवस्था किसी दृष्टि से भी फूलों की सेज नहीं है, यह प्रेम की सर्वोच्च कसौटी है"।

कु० का० मा०

जीवन संग्राम ने उसे नई नई शिक्षाएँ दे दी हैं जब कि समाज का स्त्री अङ्ग हज़ारों कोस पीछे पड़ा हुआ है और इसीलिये पति पत्नी के जीवन मेल नहीं खाते, उनमें स्वरैक्य* तथा साम्य नहीं होता और इसी कारण से वे जितने सुखी हो सकते हैं नहीं हो पाते हम इसको भी मानने को तैयार नहीं। "सबसे भले विमूढ़ जिनहिं न व्यापे जगत्-गति" की कहावत के अनुसार हम लोग मूढ़ों को ही सुखी समझ लें, सो भी ठीक नहीं है। हा; यह हो सकता है कि सुख क्या है यह न जानने के कारण, उच्चादर्शों के अभाव के कारण, कूप-मण्डूक होने के कारण वे दुःख को सुख समझ लें और जो बातें हम लोगों को हृदय में शूल सी लगती हो, वे उनको राह में पड़ी हुई कंकड़ियों के समान भी न दिखाई दें।

साधारण विद्या और धन से हम लोग ससार के, विशेष कर, वैवाहिक-जीवन के समस्त सुखों को मोल ले सकते हैं यह समझना भी ठीक न होगा, साथ ही यह समझना कि शिक्षा प्राप्त धनी पति पत्नी जो अकेले अपनी कोठी अलग बना कर रहते हैं, केवल इन्हीं कारणों से सुखी हो सकते हैं यह भी ठीक नहीं है।

भारत का जिक्र ही क्या, यूरोप और अमरीका में पति पत्नी प्रायः पढ़े लिखे होते हैं, वे माता-पिता, भाई-बन्दों से अलग भी रहते हैं, स्वराज्य के कारण उनके घरों में भारत के समान दारिद्र्य भी नहीं है फिर भी वहा के वैवाहिक-जीवनों के सम्बन्ध में एक विशेषज्ञ का कहना है—

†चार विवाहित जोड़ों में से एक जोड़ा किसी तरह से सफल

---

*Harmony

†"Speaking broadly, I should say that only one marriage in four may be judged as even tolerably successful and a very much smaller proportion can fairly be considered as really happy"

समझा जा सकता है और वास्तव में सुखी वैवाहिक-जीवन वाले जोड़ों की संख्या तो बहुत ही कम है।" अभी कुछ ही दिन हुये प्रयाग के गोरे पत्र "पायोनीयर" ने पश्चिमीय प्रदेशों में तलाक के मुकद्मों की नित्य प्रति बढ़ती हुई संख्या पर खेद प्रकट करते हुये लिखा था*—"इतनी अधिक संख्या में पुरुष-गण में योग्यता, संकल्प और अच्छे भाव नहीं कि वे अपने वैवाहिक-जीवन को सुखी बना सकें। इनमें अधिकतर जीवन के अन्य विभागों में सफलता लाभ कर लेते हैं। इतनी अधिक संख्या में वैवाहिक सम्बन्ध का असफल होना यह सिद्ध करता है कि मानव समाज में ही कहीं पर कोई भारी गड़बड़ है।"

इन सब बातों से हमारे इस मत का "विद्या, धन, या माता, पिता, बन्धु-बान्धवों से अलग रहने से ही पति और पत्नी सुखी नहीं हो सकते" समर्थन होता है।

स्त्री-पुरुष का वैवाहिक-जीवन सफल और सुखमय हो इसके लिये हमारी समझ में आवश्यक यह है कि दोनों एक दूसरे की विशेषताओं और त्रुटियों को जाने, उनसे भले प्रकार परिचित हों, दोनों एक दूसरे के सम्बन्ध में उदारता के साथ विचार कर सकें, दोनों एक दूसरे से अपना विकास प्राप्त कर सकें, दोनों अपने अपने उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों को जानते हुए प्रत्येक मिनट उनके पालन के लिए उद्यत हों दोनों एक दूसरे के लिए हरदम अधिक से अधिक त्याग करने को तैयार हों, दोनों एक दूसरे को प्रसन्न करने की

---

*"So many men and women lack the aptitude, capacity, good will and determination to make their marriages successful Large numbers of them are not wanting in brains for commerce, the professions and other useful and respectable duties of modern life. These marriage failures prove that *there is something very wrong with humanity.*"

कीमियां को जानते हों और उनके हृदयों में एक दूसरे को प्रसन्न रखने की उत्कट वाञ्छा और लालसा हो, दोनों संयमी हों, समान-शील, आचार-विचार और रुचिवाले हों, दोनों ही मे कुछ तो ज़रूरी ही (mental and sexual affinity) मस्तिष्क और रति-सम्बन्धी साम्य हो और दोनों ही प्रेम की विद्या, प्रेम के विज्ञान, प्रेम की कला और प्रेम के शास्त्र के अधिक नहीं तो कुछ ही जानकार ज़रूर हों।

हमारी प्राचीन प्रथा यह थी कि हम को काम-शास्त्र की भी कुछ शिक्षा मिल जाती थी, ऋषि-मुनि भी इस शास्त्र का विवेचन करते थे और इसके सम्बन्ध मे ग्रन्थ लिखते थे। आज यह सब कुछ नहीं है। यही नहीं, ये पुस्तके सहसा अब मिलती भी नहीं, जो मिलती भी हैं, उनमें कुछ होता नहीं और अधिकतर इनमें नाम से धोखा दे धन कमाने मात्र के लिए होती हैं। इस सम्बन्ध मे सरकारी रुकावटे भी हैं। हमारा निवेदन यह है कि इन पुस्तकों की कुछ बातों को छोड़ कर जिनसे प्रत्येक मनुष्य को लाभ नहीं, बाकी सब का ज्ञान एक सुखी वैवाहिक-जीवन की इच्छा रखने वाले सद् गृहस्थ के लिए आवश्यक हैं। हमारा निवेदन देश के विद्वानों तथा अधिकारियों से इसलिए यह है कि वे "कामशास्त्र", "रतिरहस्य", "अनङ्गरङ्ग" "नागर सर्वस्वम्" आदि मे लिखी हुई बातों के सम्बन्ध मे खोज कराये और अनावश्यक, हानिकर तथा जिन बातों को प्रकट करना वे हितकर न समझे उनको छोड़ कर एक ग्रन्थ नवविवाहित युवक और युवतियों के लिए, हम सदृश दो चार पुस्तकों को पढ़कर,-लैभग्गू लिख्खाड़ों के हाथ से नहीं, वरन् काशी के प्रसिद्ध विद्वान श्रद्धेय बाबू भगवान दास जी सदृश अधिकारी, अङ्गरेज़ी और संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वानों के हाथ से निर्माण करा दें। काम के शास्त्र और उसकी कला का ज्ञान वैवाहिक-जीवन को सुखमय बनाने में बहुत कुछ सहायक हो सकता है,

ऐसा हमारा विश्वास है। * क्योंकि इससे काम की कला में निपुण हो वे एक दूसरे की तृप्ति में सहायक होंगे और यह तृप्ति उनके असुखी जीवन को भी बहुत कुछ सुखमय बनाने में समर्थ हो सकेगी।

"वात्स्यायन" तथा अन्य कितने ही प्राचीन आचार्यों ने कामशास्त्र के ज्ञान की उपयोगिता और आवश्यकता को अपनी प्रभावशालिनी भाषा में ज़ोरों से सिद्ध किया है। अभी हाल ही में इङ्गलैण्ड के स्त्री-पुरुष सम्बन्धी ज्ञान (Sex Psychology) के सर्वश्रेष्ठ विशेषज्ञ डा० नार्मन हेयर ने तो यहाँ तक लिख डाला है—

†"स्त्रियों और पुरुषों को काम के विज्ञान और कला की कुछ शिक्षा ज़रूर देनी चाहिए। अगर इसके कारण वैवाहिक-जीवन आरम्भ होने के पहिले, कुमार और कुमारी की अवस्था में ही मार्ग से भ्रष्ट होने का भय हो तो चिन्ता की बात नहीं क्योंकि यह असम्भव नहीं कि आगे आने वाली सन्तानें इसे भी बुरा न समझें और मान्य कर लें।"

अमरीकन जज लिण्डसे का कहना है—

‡"युवकों और युवतियों को इस प्रकार की शिक्षा दे देने से बहुत से दोष समाज से आप से आप ही दूर हो जायँगे।"

---

*For this at least will help them in having sexual adjustment and once this has been attained one thousand and one other differences in married life pale into insignificance

कु० का० मा०

†"Men and women should learn something of the Science and art of Love . ..If this involves some premarital experience posterity may learn to accept it".

‡"Education in the young in 'the wide subject of sex would sweep most of this evil out of existence. . . ."

वैवाहिक-जीवन और विवाह-बन्धन से बंधे हुए जीवों को सुखी बनाना ही वास्तव में कामशास्त्र का प्रयोजन भी है। कहा भी है:—

"असाध्यायाः सुखं सिद्धिः
सिद्धायाश्चानुरंजनम्
रक्तायाश्च रतिः सम्यक्
कामशास्त्र प्रयोजनम्"

[रतिरहस्य]

"रिवोल्ट आव यूथ" नाम की पुस्तक में अमरीका के जज लिण्डसे ने लिखा है —*"ऐसी पुस्तके भी हैं जिनमें उन विषयों की चर्चा है, सभ्य समाज में जिनकी चर्चा भी पाप है। इस प्रकार की पुस्तकें उपयोगी बहुत हैं। इनका पठन-पाठन आवश्यक है और इनके प्रकाशन में रोक टोक न होनी चाहिए।"

संकोच की बात है किन्तु है यह सर्वश्रेष्ठ सत्य कि आज दिन के वैवाहिक-जीवनों की असफलता और दुःखों का एक प्रधान और सब से जबर्दस्त कारण रति-संबन्धी और रति-जनित असौख्य और असन्तोष (Sexual unhappiness) है। डा० हेयर का भी ख्याल कुछ ऐसा ही है। उन्होंने लिखा है:—

---

*"There is also a class of book that deal with subjects conventionally forbidden, but whose value to society is undeniable. They are not intended for immature minds, but there should be other methods than censorship of protecting such minds aginst them The destruction and suppression of such sources of *truth* for such reasons involves the payment by society of too high a price for the advantages that it may gain"

*"वैवाहिक-जीवन के असौख्य की अधिकता अधिकतर रति-जनित असौख्य और असन्तोष का प्रतिफल मात्र है।"

कामशास्त्र के विज्ञान और कला के समुचित ज्ञान से हमारी समझ में यह उपर्युक्त कारण कम से कम बहुत अंशों में दूर हो जायगा।

"अनङ्गरङ्ग" में लिखा है :—

"रतेः सुखस्य ज्ञानार्थे रतिशास्त्र समभ्यसेत्
ज्ञात्वा कर्माणि कुर्वीत तत्रानन्दो भवेद् ध्रुवम्
अन्यथा·· ········ ·········· ········
नचानन्दो न च सुखं दुःखस्यैवतु कारणम्"

"नागर सर्वस्वम्" में तो यहा तक लिखा हुआ है:—

"अत्राह महेश्वरः
एवं ········नारी नान्यमिच्छति मानवम्।
क्लीवोऽपि हृदयं तस्याः प्राप्नोत्येव न संशयः'
[तस्याः स्त्रियाः हृदयं क्लीवोऽपि पुरुषः प्राप्नोति, संशयो न]

इति नरैर्विधिना परिसेविता
परमशर्म समेत्य नितम्बिनी।
तृणवदूर्जितजीवित निस्पृहा
त्यजति याम्यपुरेऽपि न वल्लभम्॥"

··· ····· ······ ··················
· · · · · ····· ·· · ···· ·········

तथा चाह महेश्वरः—

"इति चिन्तित मात्रेण स्त्रीणा तृप्तिः प्रजायते।
विनाऽपि·· ···· · ·ससर्गेण वरानने॥

---

*"This frequency of unhappiness is only one manifestation of a widespread sexual unhappiness".

उपर्युक्त ग्रन्थ के ग्रन्थकर्ता का दावा है कि क्लीव मनुष्य उसके आदेशानुसार आचरण कर स्त्री के हृदय का सम्राट बन सकता है और वह भी ऐसा कि यमपुरी में जाकर भी स्त्री उससे विलग न होना चाहे, यही नहीं उसका दावा यह भी है कि उसके आदेशानुसार आचरण करने से चिन्ता मात्र से विना समर्ग के ही स्त्री को पूर्ण तृप्ति प्राप्त हो सकती है ।

"कामशास्त्र" या तत्सम्बन्धी बातें गन्दी हैं, *व्यभिचार-जनक और† अश्लील हैं, यह आर्य तथा भारतीय नहीं वरन् पश्चिमीय, खोखली और इन्द्रियपरायणता पर स्तम्भित-सभ्यता का विचार है। बात यह है कि पश्चिमीय सभ्यता वस्तु या तथ्य बातों पर स्तम्भित नहीं है, उसमें खोखलापन और बाह्य आडम्बर बहुत है और आत्मा को नहीं जड़ को ही उसने सब कुछ समझ लिया है। आर्यसभ्यता इससे बिलकुल भिन्न है और इसीलिये दोनों के दृष्टिकोणों में इतना फ़र्क है । किसी भारतीय का नहीं वरन् एक प्रसिद्ध अङ्गरेज़ लेखक का कथन है :—

‡"पूर्वीय देशों में साधारणत. पुरुषों को स्त्रियों की शारीरिक तुष्टि के रहस्य की शिक्षा दी जाती है। हमारी वर्तमान् शिक्षा प्रणाली इन ओर से आँख फेरे हुए है और इस कारण ने गार्हस्थ्य जीवन दुःखमय

---

* Immoral †Obscene

‡"Moslems" and Easterns, in general study the art and mystery of satisfying the physical woman I have noticed among barbarins the system of "making men", that is of teaching lads first arrived at puberty nice conduct of the "*instrumentum paratum platandis civibus, a branch of knowledge-tree which our morden education grossly neglects, thereby entailing untold miseries upon individuals, families and generations* The mock virtue, the most immodest modesty of England and of the

हो गया है। पूर्वीय देशों में बड़े-बड़े विद्वान् और धर्म के प्रचारक भी इन विषयों पर पुस्तक लिखते हैं. ......"

"सहस्ररजनीचरित्र" अलिफ़लैला या जो अङ्गरेजी में "अरेबियन नाइट्स" के नाम से प्रसिद्ध है वह भी प्रायः इसी प्रकार का एक ग्रन्थ है यद्यपि जो संस्करण संसार में प्रकाशित हो रहे हैं, उनमें से इस प्रकार की सब बातें निकाल दी गयी हैं और इस तरह वह केवल बच्चों के मनोरञ्जन की कथा मात्र के रूप में रह गया है। कैप्टन सर रिचर्ड एफ़ बर्टन ने असली "अरेबियन नाइट्स" के अङ्गरेज़ी संस्करण* की भूमिका में लिखा है:—

"†सर विलियम जोन्स ने बहुत दिन हुए लिखा था कि कोई प्राकृतिक वस्तु भी अश्लील और व्यभिचार-जनक हो सकती है यह भाव ही भारतीयों या उनके कानून बनाने वालों के हृदय में कभी नहीं उठा, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि वह किसी

United State in XIX century, pronounces the subject foul and fulsome, society sickens at all details, and hence it is said abroad that the English have the finest woman in Europe and least know how to use them. Throughout the East such studies are aided by a long series of volumes, many of them written by learned physiologists, by men of social standing and by religous in high office (Vol. VIII, pp. 179-180, Terminal Essays)

*कह नहीं सकते, ठीक कहां तक है, किन्तु सुनते हैं कि १५००) या १६००) में यह संस्करण मिलता है। कृ० का० मा०

†"As Sir William Jones observed long ago, that anything natural can be offensively obscene never seems to have occurred to the Indians or to their legislators, singularity pervading their writings and conversation, *but no proof of moral depavity*. . . . . For

दृष्टि से भी उनके नैतिक-पतन का द्योतक है। अश्लील आदि के भाव का समय और देश से घनिष्ट सम्बन्ध होता है, जो वात इङ्गलैण्ड में अश्लील हो वही संभव है मिश्र मे अश्लील न मानी जाय' ' ' "

इटली के प्राचीन ग्रन्यों में भी बोकेशियो का एक "डी० केमरन" नाम का ग्रन्थ है। इसमे दस रात्रियों की कथाएँ हैं और इसी तरह की कथाएँ हैं किन्तु पश्चिमीय सभ्यता ने इसमें भी काट-छाट कर दी है और अब अङ्गरेज़ी मे इस ग्रन्थ का भी सहस्र-रजनी-चरित्र की भाति ही एक पवित्र सस्करण प्रकाशित होता है।

हमारा ख्याल यह है कि इन पुस्तकों का देशों की सामाजिक स्थिति की आवश्यकता से सम्बन्ध था, वहा के रहन-सहन के यह अनुकूल होती थीं, इनसे समाज के सामाजिक तथा नैतिक नियमों (Social virtues) का ज्ञान होता था, साथ ही इनसे पढ़ने-वालों को कामशास्त्र सम्बन्धी साधाराण शिक्षाएँ सहज में ही मनोरञ्जक रूप में मिल जाया करती थीं। किन्तु सभ्यताओं के संघर्ष से, एक के शक्तिशालिनी और दूसरी के दासी होने से, हमारी विशेषताएँ जाती रहीं, दूसरों का रङ्ग हम पर चढ गया, उनके विचार हमारे विचार हो

instrance, the European novelist marries of his hero and heroine and leaves them to consummate marriage in privacy even Tom Jones has the decency to bolt the door. But the Eastern story teller, especially, this unknown prose Shakespeare, must usher you, with a flourish, into the bridal chamber and narrate to you with infinite gusto, everything he sees and hears Again we must remember that grossness and indecency, in fact *les terpitudes,* are matters of time and place, what is offensive in England is not so in Egypt, what scandalises us now would have been a tame joke *tempore Elisa*" (Vo I, p. XXV in Foreword)

गये और इस कारण से हमारी स्थिति में जो शिक्षा हमारे अनुकूल और उपयोगी थी, हम उसे गन्दी और हानिकर समझने लगे। निकट भूतकाल से कामुकता को प्रदीप्त करनेवाले तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के लेखकों ने भी गन्दी पुस्तकों को लिख-लिख कर, इन पुस्तकों के प्रति हमारी घृणा को उचित और सार्थक बना दिया।

हम लोगों को एक बात और भी ध्यान मे रखनी चाहिए। निकट भूतकाल, आधुनिककाल और प्राचीनभूत में भी हमारे आचार्यों ने "गान्धर्व विवाह, (Love marriage) या प्रेम के विवाह को कभी श्रेष्ठ नहीं माना वह लोग इसकी निस्सारता को जानते थे, अपने विशिष्टज्ञान और दूरदर्शिता से जो आज दिन यूरोप और अमरीका मे हो रहा है, इसको उन लोगों ने सोच लिया हो तो भी असम्भव नहीं। हमारे आचार्यों ने गान्धर्व-विवाह की निन्दा तो नहीं की किन्तु इसे उन लोगों ने सदा "मध्यम" कहा।

*"सिद्धा यतो विवाहात् तनयत्यनुरागमुत्कट सुखदम्।
गान्धर्वो मध्योऽपि हि सद्योगात्पूजितस्तस्मात्॥
[कन्दर्प चूड़ामणि]

यद्यपि एक आचार्य का मत यह था :—
†"एके तु चित्त नयने यस्यो पुरुषस्य चानुरज्येते
तस्यामृद्धिम प्राहुस्तदभावे लक्षण विफलम्॥
अर्थात् जिस कन्या मे पुरुष का मन अनुरक्त हो उसी से वह विवाह करे

---

*वैदिक विवाह से सिद्ध स्त्री बहुत ही सुखदायक अनुराग को उत्पन्न करती है; गान्धर्व-विवाह अच्छा है पर मध्यम है, अन्य विवाह पूजित हैं।

†यस्यामनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिः। नेतरामाद्रियेत्। इत्येके वात्स्यायनः

A man will find happiness and prosperity in such

किन्तु यह सर्वमान्य हुआ नहीं। माता पिता अपनी मर्जी मे अपने पुत्रों और पुत्रियो का सम्बन्ध करते थे; हा, आज दिन के माता-पिताओं की भाँति, आँख बन्द कर, किसी स्वार्थ या बुद्धि-हिनता से वह सहसा प्रेरित नहीं होते थे। विवाह हम लोगों में एक सामाजिक ही नहीं वरन् धार्मिक बन्धन भी होता था। यह एक प्रेम सी अस्थायी वस्तु से विहीन, सब ताप, जोश और गर्म खून की बातों से दूर, उष्णता-विहीन जीवन का सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य होता था। साथ खेलने घूमने-फिरने का सवाल ही कहा, निकट भूत और आधुनिक काल में वर-वधू एक दूसरे की सूरत-सीरत से भी अनभिज्ञ होते थे। दोनों के प्रेम का प्रश्न उठता ही नहीं था क्योंकि वैवाहिक-जीवन की नींव धर्म तथा कर्तव्य मानी गयी थी। बन्धन मज़बूत हो और स्त्री अपने पद से सन्तुष्ट रहे इसी लिए हमारी समझ में विवाह के साथ इहलोक और परलोक का सम्बन्ध था और स्त्री को सहधर्मिणी अर्द्धाङ्गिनी का ऊँचा से ऊँचा, पवित्र और आदर का स्थान दिया गया था जीव स्त्री के लिए यह सब था साथ ही जड़ भाव ('Physical') स्त्री की तुष्टि के लिए काम-शास्त्र की रचना कर दी गयी थी क्योंकि हमारे आचार्यों से यह छिपा न था कि स्त्री संसार के समस्त अभावों को किसी न किसी तरह सहन कर सकती है और अगर कुछ उसे सह्य नहीं है तो वह है केवल रति-जनित असौख्य और असन्तोष। इससे उसे मर्म वेदना होती है साथ ही इससे उसके विकास में व्याघात भी पहुँचता है।

भारत मे ही क्यों, जापान में भी प्रेम का विवाह (Love marriage) सबसे बड़ा पाप समझा जाता था। बालिका के लिए

a woman who creates love in his mind and brings pleasure to his eyes at first sight He should marry such a woman only, not any other, provided she is satisfactory in other respects.

इससे बड़ा कोई दूषण ही नहीं था। बालिका, माता पिता के सुख के लिए, उनके क़र्ज़ को अदा करने के लिए वेश्या-वृत्ति तक धारण कर ले यह बालिका के लिए प्रशंसा की बात थी किन्तु यदि कहीं वह प्रेम का विवाह कर ले तो वह घृण्य हो जाती थी। प्रेम का, विवाह के सम्बन्ध मे कहीं ज़िक्र ही नहीं था। यहाँ की आवश्यकताए दूसरी थीं, पश्चिम की आवश्यकताए दूसरी थीं, और अपनी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का विधान समय की सभ्यता करती थी। हमारे टीका टिप्पणी करने वालों को इसलिए सब बातो पर ध्यान देकर ही राय देनी चाहिए। यूरोप के लिए जो ठीक है वही भारत के लिए भी हो यह ठीक नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे कि भारत के लिए जो ठीक है वह यूरोप के लिए भी ठीक नहीं हो सकता।

इन सब बातों और विशेष कर विवाह सम्बन्धी बातो पर विचार करते समय हमको यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि पूर्वीय देशों मे उनके गर्म प्रदेश होने से, साथ ही कमज़ोरी कामुकता* और ऐयाशी की अत्यधिक वृद्धि हो जाने से बालिकाएं जल्दी अभिवृद्धि प्राप्त कर लेती हैं, साथ ही ग्यारह से अठारह तक की अवस्था शीघ्र ही प्रज्वलित और उत्तेजित होने वाली अवस्था है और इस समय में युवक और युवतियों का सम्मिलन भयावह हो सकता है। हमारे देश में हमारी समझ में इसीलिए युवकों का युवतियों से मिलना, उन पर विवाह के अर्थ प्रेम प्रकट करना (Courtship and Wooing) हानिकर समझा गया और इसीलिए हमारे देश मे प्रेम के सम्बन्ध (Love marriage) की प्रथा ही नहीं प्रचलित की गयी। पश्चिमीय प्रदेशों में, वर्बर दशा और गरीबी से त्रस्त होने के कारण, साथ ही शीत प्रधान होने के कारण बालिकाएं देर से

---

*कामुकता की वृद्धि के कारण अमरीका से ठण्ढे मुल्क में अब ११, १२, १३, १४, वर्ष की अवस्थाओं की स्कूलों मे पढ़ती हुई कन्याए माताएं हो रही हैं। कु० का० मा०

अभिवृद्धि प्राप्त करती थीं और हैं भी, मुल्क ही ठण्डा है, इसलिए वहा बालक और बालिकाएं अधिक अवस्था तक बिना किसी क्षति के एक दूसरे से मिल जुल सकते हैं और इसीलिए विवाह का बन्धन सर्व श्रेष्ठ वहा मस्तिष्क तथा हृदय का हुआ। वहा सामाजिक तथा मस्तिष्क सम्बन्धी साम्य (Social and mental affinity) की नींव पर विवाह इस तरह स्तम्भित हुआ, इन्हीं साम्यों की वहा फ़िक्र होती है किन्तु कदाचित् यह नींव स्थाई न हो, जैसा कि पश्चिमीय प्रदेशों में अब प्रकट भी हो रहा है, यही सोचकर हमारे आचार्यों ने भारतीय विवाह को धार्मिक तथा रति-सम्बन्धी साम्य (Religious affinity, *and Sexual affinity) और कर्तव्य के साम्य की नींव पर स्थापित किया। यूरोप और अमरीका में जो दिखाई दे रहा है उसे देखते हुए हमको यह स्वीकार करना होगा कि कम से कम हमारी दशा इस संबन्ध में उनसे अच्छी नहीं है तो खराब भी नहीं है। हमको यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि अब यूरोपीय विद्वान् भी (Sexual affinity) रति-सम्बन्धी साम्य और कर्तव्य को प्रधानता देने के लिए चिल्ला रहे हैं।

स्त्री अपनी ओर से अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार यथाशक्ति प्रयत्न करती है, एक दासी की भाँति वह पतिदेव की सेवा में रत रहती है किन्तु फिर भी उसको वह सुख नहीं मिलता जिसकी वह अधिकारिणी है और जिसके लिए वह अपना जीवन और सर्वस्व अपने पति के चरणों में अर्पण करती है। दूसरी ओर पति गृहस्थी सञ्चालन और धन सञ्चय करने में बैल सा जुता रहता है और फिर भी उसे सच्चा सुख नसीब नहीं होता। संसार की इस समय सबसे विषम समस्या यही है

---

*इसीलिए काम शास्त्र की रचना और उसके ज्ञान का प्रयोजन भी है। कु० का० मा०

पुरुप, पुरुष है, नायक है, कर्त्ता है, इसलिए उत्तरदायित्व उस पर विशेष है, वह भरसक प्रयत्न भी करता है फिर भी सौ में निन्यानवे पुरुष सफल नहीं होते क्योंकि स्त्री-प्रकृति का उनको ज्ञान नहीं इसका पता ही नहीं कि स्त्री है क्या। वह एक ओर अपने आधिपत्य में भूले हुए स्वयम् उसे जानने की कुछ कोशिश नहीं करते दूसरी ओर अत्यन्त लज्जाशीला होने के कारण, स्वयम् अपने को ही अच्छी तरह न जानने के कारण और प्रकृति के प्रबन्ध से स्त्री अधिक गम्भीर और अज्ञेय है। वह अपनी बातों के सम्बन्ध में अधिकतर चुप रहना पसन्द करती है। सदियों से अपनी कामनाओं को दबाते और छिपाते-छिपाते वह सलज्जा हो गई है और इसलिए पतिदेव को जो मालूम हो सकना चाहिए वह भी नहीं मालूम होता। पतिदेव अपनी धुन में दीवाने रहते हैं; अपने को सर्वज्ञ समझते हुए पग-पग पर तनिक-तनिक सी साधारण बातों में भूलें करते हैं और नतीजा यह होता है कि जीवन क्षार हो जाता है और सुख का साम्राज्य नष्ट हो जाता है। हा, अपनी मूर्खतावश हम जो चाहें समझा करें।

पति अपने गृह के साम्राज्य को अधिक कण्टक-विहीन और सुखी बना सकें साथ ही गृहलक्ष्मी के मन्दिरों में दुःखों का दारिद्रय हो इसलिए एक विवाहिता स्त्री के अपने कुमारी-जीवन के प्रेमियों तथा मित्रों को, विवाहिता-जीवन के लिखे हुए कुछ पत्रों का सग्रह हम प्रकाशित कर रहें हैं। लेखिका स्त्री पूर्णशिक्षा प्राप्त है, पश्चिमीय शिक्षा की दीक्षा से दीक्षित है, बचपन से ही पश्चिमीय वातावरण में पली है और शिक्षापूर्ण होने के बाद पूर्ण वयस्का होने पर, अपने माता-पिता की प्रसन्नता से, अपनी रुचि के आदेशानुसार उसने विवाह किया है। पत्र उन नवयुवकों को लिखे गये हैं जो उसके मित्र थे और एक समय में उसके पाणिग्रहण के लिए लालायित थे किन्तु जिनको उसने अपने योग्य नहीं समझा। पत्रों के सम्बन्ध में हम इतना और कह देना चाहते हैं कि वे पतिदेव की जान में लिखे गये हैं। इन पत्रों मे स्त्री ने अपने

प्रेमियों का ध्यान उनकी विशेष त्रुटियों की ओर आकृष्ट किया है और स्त्री-हृदय की बातों को निःसङ्कोच हो कर कह दिया है। सम्भव है इन प्रेमियों में कोई हमसे आपसे मिलता-जुलता हो, कोई हमारा या आपका ही दूसरा शरीर हो, किसी की त्रुटियाँ हम में आप मे मौजूद हों। इन त्रुटियो को जान कर हम सब स्त्री-प्रकृति को समझ सकें, अपने को अपनी पत्नी को अधिक सुखी बनाने के योग्य बना सकें, अपने गृहों को अधिक सुख का स्थल बना सकें और अपने वैवाहिक-जीवन को अधिक सुखमय बना सकें, पुस्तक का उद्देश्य यही है।

वैवाहिक-जीवन को सुखमय बनाने की जितनी बातें हो सकती हैं, "मनोरमा" ने, निस्सन्देह ही सूत्र रूप में, सब की ओर अपने पत्रों में इशारा कर दिया है। एक दो बातें उसने नहीं कही हैं, स्त्री होती हुई, पुरुषों से कुछ बातों के कहने में उसे स्वाभाविक संकोच था और इसीलिए हम इन बातों की चर्चा यहा पर कर देना ज़रूरी समझते हैं। सब से पहिली बात सुहागरात के सम्बन्ध की है। इस सम्बंध की सारी बातें जो पतियों को मालूम होनी चाहिए, सुखमय वैवाहिक-जीवन की इच्छा रखने वाले पतियों के लिए ही, हमने अपनी "सोहागरात" प्रथम भाग नाम की पुस्तक मे लिख दी हैं, और उनको प्रत्येक पति को जान लेना चाहिए। किन्तु उनके साथ ही साथ हम विशेष रूप से पतियों सेएक दो बातें यहां पर कह देना चाहते हैं क्योंकि "सोहागरात" की लेखिका "शान्ति" स्त्री होती हुई, सभी बातों को कह नहीं सकती थी, साथ ही वह पुस्तक स्त्रियों के लिए है इसलिए आवश्यकता से अधिक बातें उसमें हम भी नहीं कह सकते थे।

सब से पहिली बात जो हम कहना चाहते हैं यह है कि सुहागरात की प्रथा को हम लोगों को एक दम उड़ा देना चाहिए। समय और आवश्यकता के अनुकूल ही प्रथा भी होनी चाहिए। जब विवाह ८ वर्ष की अवस्था में होता था, वधू बड़ी होती होती दस पाच बार ससुराल में रह जाया करती थी और न किसी ख़्याल से सही तो भी

केवल पति-भक्ता होने से पति से प्रेम नहीं तो पति में भक्ति तो वह रखने ही लगती थी। वे एक दूसरे को रोज़ घर में काम करते, उठते बैठते देखते थे। समय से एक तरह का प्रेम दोनों में हो ही जाया करता था और तब चार पाच वर्ष एक दूसरे को जानने के बाद सुहागरात की प्रथा काम-वासना की तृप्ति के लिए नहीं, पवित्र गर्भाधान के लिए मन्त्र तथा पूजा द्वारा विधि के अनुसार होती थी। इसका कोई अर्थ था और इसमें तथ्य भी था। अब यह सब कुछ नहीं है।

ईश्वर की कृपा से, समय की गति से, और भारत के सौभाग्य और पश्चिमीय सभ्यता के संघर्ष से अब वैवाहिक-अवस्था बढ़ती जा रही है। पढ़े लिखे कुछ घरों में विवाह अब पहिले की अपेक्षा कुछ अधिक पक्व अवस्था में होने लगा है। फल यह हुआ है कि विवाह होते ही सुहागरात की प्रथा हो जाती है। कहने को एक ओर सुधार हुआ किन्तु सुधार ही के अनुकूल और अनुसार अन्य बातों में परिवर्तन न होने से हम खाई से खड्ड में गिर गये हैं। पुरानी प्रथा में पति पत्नी कुछ तो एक दूसरे को जान ही लेते थे, अब यह जाता रहा है और सुहागरात में दो अपरिचित व्यक्ति एक दूसरे के पास हो जाते हैं। हम नव-पतियों से इतना ही कह देना चाहते हैं कि करोड़ों में विरली ही कोई एक बालिका होगी जिसे ऐसी स्थिति में सुहागरात में काम की वासना हो, या जिसे उस रात्रि में काम की वासना हो सकती है। इसलिए एक अपरिचित व्यक्ति का एक कुमारी स्त्री से, जो उसको नहीं जानती और जो शरीर के ही समान आत्मा से और मस्तिष्क से भी कुमारी है, बलात्कार भयावह तथा हानिकर है। नव-पतियों को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि कोई भी मनस्विनी स्त्री जिसमें तनिक भी आत्म सम्मान है और जो बिलकुल गिरी हुई नहीं है कभी भी एक अपरिचित पुरुष को अपना शरीर समर्पण नहीं करना चाहती। उच्च श्रेणी की वेश्याएं भी कभी ऐसा नहीं होने देतीं किन्तु हमारे पति-गण

पत्नियों से यह व्यवहार करते हैं जो वह एक वेश्या के साथ भी नहीं कर सकते।

इस सबन्ध मे सम्राट् नेपोलियन की कथा को नव-पतियों को सदा याद रखना चाहिए। नेपोलियन अपनी प्रियतमा जोज़फाईन से विवाह कर उसे ले चला। वह उसमें इतना अनुरक्त था कि गाड़ी में सवार होते ही उसने उसका चुम्बन करना शुरु किया। जोज़फाईन ने उसे एक वर्बर मनुष्य समझा, उसकी अवहेलना की, वह रुष्ट हो गयी और इस घटना का दोनों के जीवन भर प्रभाव बना रहा। किन्तु इसी के साथ ही साथ हम नव-पतियों से नहीं नायकों से यह भी कह देना चाहते हैं कि वे जीवन में इस प्रकार की भी—

*"अवघृत भावायोपा देशेकाले यथेहित निपुणैः
व्यावर्त्तते नियुक्ता नेतिमत कामशास्त्राय"

—भूल न करें, बड़े बड़े प्रेमियों के हृदय में अक्सर इस भूल से सदा के लिए विराग पैदा हो जाया करता है।

विवाह को सुखमय बनाने के लिए और इसलिए भी कि वैवाहिक जीवन सफल हो, आवश्यकता यह है कि हम विवाह का अर्थ ठीक ठीक समझें और जानें और विशेष रूप से इस सत्य को हृदय-पटल पर अङ्कित कर लें कि विवाह दो भिन्न व्यक्तियों का एक सग निवास नहीं

---

*उस नायिका की, जिसका भाव निश्चित हो गया है और जो इसी इच्छा से स्वयम् उपस्थित हुई है, अवसर होते हुए भी यदि इच्छा की पूर्ति न की जाय तो उसे उस नायक से वैराग्य हो जायगा। किन्तु इसके साथ ही वात्स्यायन के इस उपदेश को भी हमको सदा ध्यान में रखना चाहिए—

"सचिन्त्येति समागता परवधू रत्यर्थिनी स्वेच्छया
गच्छेत् क्वापि न सर्वदा सुमतिमानित्याह वात्स्यानः"

कु० का० मा०

है, विवाह और सच्चा विवाह दो शरीरों का शारीरिक विवाह भी नहीं है, अर्थात् विवाह का अर्थ इन्द्रियगत-वासनाओं का साधन नहीं है। इसके साथ ही हम को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि विवाह निरा दो आत्माओं, जीवों या मस्तिष्कों का कोरा आध्यात्मिक सम्बन्ध भी नहीं है। विवाह वास्तव में इन तीनों ही का मजमूवा, अचार या मुरब्बा है। विवाह सुखमय हो नहीं सकता, विशेषकर वर्तमान समय और युग में, यदि उसके द्वारा दो मस्तिष्कों, आत्माओं, हृदयों और साथ ही साथ दो शरीरों का भी एक दूसरे में लय नहीं हुआ है। विना पति और पत्नी के जीवनों में (Harmony) स्वरैक्य हुए हज़ार पाधा-पुरोहित सर पटकें, हज़ार वेदियों पर हम क्यों न बैठाये जायँ और करोड़ों वार ही हम क्यों न अग्नि को साक्षी कर एक दूसरे का हाथ पकड़ें और धर्मतः निवाह का वचन दें, सच्चा विवाह नहीं होगा, नहीं होगा, नहीं होगा। धर्म, समाज या कानून विवाह को असली विवाह का रूप दे नहीं सकते और न ये विवाह को सुखमय ही वना सकते हैं। इसे वेद-वाक्य ही समझना चाहिए कि गठ-वन्धन की गाठ अपने ही सहारे मजवूत रह सकती है और धर्म, समाज तथा पाधा-पुरोहित उसे मज़वूत नहीं रख सकते।

विवाह को सुखमय वनाना, पति और पत्नी, विशेष रूप से, पति के ही अधीन है अन्यथा हम जो चाहें कहते रहें पत्नी सहधर्मिणी का रूप नहीं धारण कर सकती, वह ससार की नैया की वरावर की खेवैया नहीं हो सकती और वह एक उच्च श्रेणी, कोटि और कक्षा की, उच्च मञ्च पर वड़े आदर से विठाई हुई एक पवित्र-वेश्या ही रहेगी।

सुहागरात को इसलिए कामवासना की तृप्ति का आयोजन समझना हम सव की भारी भूल है और वहुत से अनर्थों का कारण भी यही हो रहा है। अगर हम में वुद्धि हो तो हमारे देश के पति-पत्नियों के सदृश दो अपरिचित व्यक्ति शरीर के नहीं वरन् दो आत्माओं के

सम्मेलन का अनुष्ठान* ही सुहागरात को आरम्भ किया करें। सुहागरात की रात मे दो अपरिचित व्यक्तियों को एक दूसरे के प्रेम को प्राप्त करने की ही कोशिश आरम्भ करनी चाहिए, साथ ही एक दूसरे को जान कर हम को इस चिन्ता मे लीन होना चाहिए कि किस तरह अपने जीवन की बातों में काट छाँट आदि करने से दोनों के जीवन अधिक से अधिक मेल खा सकते हैं और एक हो सकते हैं।

शरीरों का सम्मेलन तभी होना चाहिए जब दोनों मस्तिष्क, दोनों आत्माएँ एक हो जायँ और जब दोनों यह अनुभव करने लगें कि वे एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते, जब दोनों एक दूसरे मे तल्लीन और तद्वत् होने के लिए पागल हो जायँ दोनो यह अनुभव करने लगें कि आत्माओं का मेल जीवों का लय असम्भव है जब तक कि इस अनुष्ठान की सिद्धि के लिए शरीरों की आहुति न दे दी जाय, जब तक वे यह अनुभव न करें कि आत्माओं के निवास के लिए शरीर की जरूरत है और बिना शरीर के आत्मा जीवित ही नहीं रह सकता, जब बरबस यह सत्य उन पर प्रकट होने लगे कि एक दूसरे के शरीर की सहायता से ही वे अपना पूर्ण विकास प्राप्त कर सकते हैं, जब "हुस्न आईन-ये इश्क हो, इश्क आईन-ये हुस्न" और जब दोनों के शरीर लोह और चुम्बक की भाँति, आप से आप बिना किसी आयोजन और प्रबन्ध के, दोनों की पूर्ण सम्मति से, किन्तु बिना दोनों के

---

*महाराष्ट्रों मे सुहागरात को कदाचित् "शुभरात्रि" कहते हैं, प्राचीन रूप 'सुहागरात' सोहागरात, का हमारी समझ में "सौभाग्य-रात्रि" रहा होगा। शुभरात्रि अब अपवित्र रात्रि हो गयी है, और उस रात्रि मे अब अचल सौभाग्य अर्थात् पति पर सदा के लिए अधिकार और पति की छाया स्वरूप होने का आयोजन नही होता है, अब होता है, पुत्रोत्पादन का प्रयत्न। पुत्र से सुहाग, सोहाग या सौभाग्य से न कभी कोई सम्बन्ध था और न हो सकता है।

कृ० का० मा०

मुँह से कुछ भी कहे हुए ही एक दूसरे में लय हो जाँय। हम को यह जानना चाहिए कि पति पत्नी के प्रथम संसर्ग के लिए भी प्रेम, शक्ति या बल के प्रयोग की अपेक्षा नहीं करता।

हमारे इस मत से बहुत से विद्वान् असहमत न होंगे, वे कहेंगे कि आत्माओं के सम्मेलन की फ़िक्र विवाह के पहिले होनी चाहिए, नायक और नायिका विवाह तभी करें जब प्रेम में वह पगे हों, जब आत्माओं का लय हो चुका हो और शरीरों का लय वे चाहते हों। एक हद* तक यह सर्वथा ठीक है और हम को इस मत से विरोध नहीं किन्तु इस देश में यह होता भी नहीं और सहसा हो सकता भी नहीं। साथ ही सहज कामुकता-प्रधान-प्रेम के साथ यह हानिकर भी हो सकता है। कुछ अन्य लोग कहेंगे कि शारीरिक सम्मेलन घनिष्टता की पराकाष्ठा का परिचय देता है, घनिष्टता न भी हो तो भी इसके द्वारा दो अपरिचित अजनबी भी एक दूसरे के निकट हो जाते हैं। कुछ लोग यह भी कह बैठेंगे ("†If they sexually adjust themselves nothing else matters") किन्तु इन महानुभावों की दलीलों के महत्व को उनसे अधिक मानते हुए भी हमारा निवेदन यही है कि शारीरिक सम्बन्ध बाद में ही होना चाहिए, मानव-समाज का और स्त्री-समाज का हित इसी में है।

---

*सच्चा प्रेम एक कुमारी के हृदय में पश्चिम में भी नहीं होता। विवाह के बाजार से एक युवक को फांसना ही उसका उद्देश्य होता है और इस लिए एक दूसरे को प्रसन्न रखने की फिक्र में दोनों ही अपना असली रूप छिपाये रहते हैं। इस तरह आत्माओं का सच्चा लय नहीं होता और कुछ ही दिनों बाद असलीयत नज़र आने पर तलाक की तैयारी होने लगती है। कु० का० मा०

†"यदि रति-सम्बन्धी समता दोनों में उपस्थित हो गयी तो फिर जीवन के सहस्रों ही अन्य विभेद उनको असुखी नहीं कर सकेंगे"

कु० का० मा०

प्राचीन आचार्यों में से भी एक या दो के विरुद्ध हमारा यह प्रस्ताव है, यह हम जानते हैं। इन आचार्यों को यह भय है कि यदि सुहाग-रात को ही शरीरों का सम्मेलन न हुआ तो सम्भव है नायिका को नायक के पुंसत्व में ही सन्देह हो जाय। यह सन्देह वैवाहिक-जीवन के लिए भयावह हो जायगा।

"स्तम्भी भावे भर्तुः सम्मतिरिहनास्ति बाभ्रवीयानाम्।
अहमेव पश्यन्ती गाढं दूयेत सा यस्मात्॥
परिभवति पण्ढमिव त स्तम्भत्वं यस्त्वह समातनुते।
तस्मादुपक्रमी स्यात् स्तम्भं नारोचयेत्तत्र"॥

किन्तु यह सब जानते हुए भी हम अपने इस मत को ही कि प्रथम भेंट में ही शरीरों का सम्पर्क न हो ठीक समझते हैं। कारण यह है कि यह असम्भव नहीं कि उपर्युक्त बातें उन पति और पत्नियों के लिए हों, जिनका परिचय अधिक दिनों का हो, इसके सिवाय हमारे मतभेद का प्रधान कारण यह है कि हम पुरुष-प्रकृति में परिवर्तन देखना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि पुरुष, प्रेम को, वासना की तृप्ति को अपने आत्मा से विलग और शरीर से ही सम्बन्ध रखने वाली वस्तु न समझे।

पुरुष और स्त्री में एक सब से बड़ा अन्तर यह है कि प्रेम, जोश, कामवासना की तृप्ति या तुष्टि, पुरुष-जीवन में एक साधारण घटना, (accident) या एक (episode) कथानक है, जिससे उसकी आत्मा से किसी किस्म का भी कोई ताल्लुक या सम्बन्ध नहीं होता। इसके विपरीत स्त्री के लिए प्रेम, कामवासना की तृप्ति, उसके जीवन का आदि, अन्त और सर्वस्व है और उसकी आत्मा से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

पुरुष, प्रेम करता है, और अक्सर वह समझता है कि वह प्रेम से ही पागल हो रहा है किन्तु सौ में निन्यानवे बार पुरुष केवल अपने को धोखा देता है, वह प्रेम करता नहीं या करता भी है तो केवल

अपने शरीर से, जड़ से, दूसरे शरीर को ही और उसके जड़ को ही। एक विचित्रता यह भी है कि एक पुरुष, जब वह शरीर से प्रेम करता रहता है, समझता यह है कि वह आत्मा से प्रेम कर रहा है, और इसी तरह जब कभी वह आत्मा से प्रेम करता रहता है तो समझ लेता है कि वह शरीर से ही प्रेम कर रहा है, और शरीर और जड़त्व का ही वह उपासक है। इसके विपरीत स्त्री जब वह किसी पुरुष से प्रेम करती है तो वह अपने शरीर और आत्मा, जड़ और जीव दोनों से ही प्रेम करती है। इसीलिए सुहागरात की रात में स्त्रियाँ, उस पुरुष को जानने, बूझने और समझने को उत्सुक होती हैं, जो विधि की विडम्बना से, माता पिताओं के आदेश से, पाधा-पुरोहितों की साज़िश से, या जन्मपत्रों के मिल जाने से उनके पास उस समय मौजूद होता है। इसके विपरीत पुरुष में ऐसी कोई भावना नही होती। स्त्री को जानने की आवश्यकता ही उसे कोई प्रतीत नहीं होती, काम की जड़ता, उसकी वाह्य प्रखरता उसके अन्धा कर देने को सदा प्रस्तुत रहती है। यही कारण है कि पुरुष कभी कभी ऐसी स्त्रियों के प्रेम में भी पागल हो जाते हैं जिनकी आत्मा से उनका आत्मा करोड़ों कोस दूर होता है और जिनसे वास्तव में वह प्रेम कभी कर हीं नहीं सकते। स्त्री से यह नहीं हो सकता, युगों से अपनी कामना और काम-वासना का दमन करते-करते वह दमन की आदी हो गयी है और इसलिए वह वर्तमान (Immediate present) में अन्धी और पागल हो ही नहीं सकती।

पुरुषआत्मा और शरीर को युगों से भिन्न समझता आया है, वह समझता है कि एक को अलग रख कर, वह दूसरे में भीन सकता है, आत्मा के विना किसी तरह के सम्बन्ध के भी इस तरह से वह शरीर की, जड़ की तृप्ति-लाभ करता है, स्त्री यह कर ही नहीं सकती। स्त्री प्रकृति के अधिक निकट है, निरक्षरा होती हुई भी, हज़ार गुना अधिक शिक्षित पुरुष से, स्वभाव प्रकृति और सहज बुद्धि की सहायता से वह

अधिक चतुर होती है, वह सृष्टि के नियमों और अनन्त सत्यों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक समझती और बूझती है। सच तो यह है कि एक ' विद्वान् से विद्वान् और चतुर से चतुर मनुष्य भी एक स्त्री के सामने या तो मूर्ख है, या एक बच्चा"। स्त्री अपने सहज ज्ञान से ही यह भले प्रकार जानती है कि *जीव और जड़ एक दूसरे के बिना सफलता नहीं लाभकर सकते और इसीलिए जब वह प्रेम करती है तो केवल शरीर या आत्मा से नहीं वरन् शरीर और आत्मा दोनों से ही, शर्त इतनी है कि पुरुष उसे इस तरह से प्रेम करने दे। यही कारण है कि वर्तमान परिवर्तन के काल में स्त्रियाँ सुहागरात में सुखी नहीं होतीं, वे निश्चेष्ट होती हैं और अधिकतर के लिए सुहागरात अन्धकार, नैराश्य और असन्तोष ही की रात होती है। अभी यही होता है और अनन्त काल तक यही होता भी रहेगा जब तक पुरुष अपना सुधार नहीं करते और सुहागरात को स्त्रियों की भाँति दो आत्माओं के मेल की रात न समझ कर उसे केवल दो शरीरों के मेल की रात समझते रहेंगे।

हम यहाँ पर यह भी कह देना चाहते हैं कि पुरुष तथा स्त्री की उपर्युक्त भिन्न प्रवृत्तियों और प्रकृतियों के कारण ही अधिकतर वैवाहिक-जीवन सफल और स्वर्गीय सुख के देने वाले नहीं होते। पुरुष कामवासना, तथा उसकी तृप्ति को आत्मा और मस्तिष्क से एक विलग वस्तु समझता है। स्त्री की आत्मा का अपनी आत्मा में या अपनी आत्मा का उसकी आत्मा में लय वह आवश्यक नहीं समझता,

---

*सच तो यह है कि जड़ और जीव को अलग कर पुरुष ने "विवाह" को ही अर्थशून्य बना दिया है क्योंकि सच्चे विवाह का उद्देश्य ही यह शिक्षा देना है कि जड़ (Body) और जीव (Spirit) अन्ततोगत्वा एक हैं और जीवन निरर्थक है यदि यह दोनों एक कर लिए नहीं जाते।

कृ० का० मा०

इसका नतीजा यह होता है कि शरीर के तृप्ति-लाभ करने पर, काम-वासना की तृप्ति होने पर, या पत्नी से उसके काम को जाग्रत करने मे अशक्त हो जाने पर, उसके और उसकी पत्नी के जीवन में एक को दूसरे से बाँधने वाली कोई बात ही नहीं रह जाती। यह सच है कि सुपति या भले मानुस पति अपने बच्चों की माता होने के कारण साथ ही अपनी गृहस्थी का सारा बोझ उठाये रहने के कारण अपनी पत्नियो को कष्ट नहीं देते, उनको वे घर की मालकिन बनाये रहते हैं, उनके सुख, खाने, पहिरने का वे अच्छा प्रवन्ध रहते हैं, उनको स्नेह और दया की दृष्टि से देखते हैं, और यह सब करते हुए समझते हैं कि वे अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। किन्तु हम इन सुपतियो और भविष्य में होने वाले ऐसे सुपतियो से कह देना चाहते हैं कि यह कर्तव्य का पालन नहीं है, और पत्नी ज़वान से उनसे कुछ कभी कहेगी भी नहीं किन्तु वह इन सब बातों से सन्तुष्ट रहा नहीं करती और न हो सकती है। स्त्री, शरीर के साथ ही साथ आत्मा भी चाहती है। वह कोरी देवी नहीं है या देवी होती हुई भी मानवी है और इस लिए कोरे आदर, दया कोमलता, सुख, गहनों और रुपयों से ही उसे तुष्टि नहीं होती। देवियों की भाँति वह आदर चाहती ज़रूर है किन्तु केवल आदर और पूजा से उसे तुष्टि नहीं होती। पूजा करना वह ख़ुद जानती है और अपने श्रेष्ठ से श्रेष्ट आराध्य देवताओं की अपेक्षा वह पति की अधिक पूजा करती है। अनुशासन-पर्व में एक स्त्री ने कहा है—"वायु अग्नि, वरुण, या दूसरे कोई भी देवता एक स्त्री को वैसे ही प्रिय नहीं होते जैसा कि "रतिपति"* "प्रियतम"।

---

*वेदव्यास ने "रतिपति" शब्द का प्रयोग व्यर्थ ही नहीं किया है, यह भी हमको ध्यान में रखना चाहिए। हिन्दी के काव्यों में भी श्रेष्ठ पति के लिए सुन्दर, सरस, "सुजान" शब्द का ही प्रयोग समझदार कवियों ने किया है।

बराबर वाली, सहधर्मिणी, मनस्विनी स्त्री अपनी पूजा कभी पसन्द नहीं करती, पूजा तो दासियाँ या वेश्याएँ ही पसन्द कर सकती हैं। दया, कोमलता आदि के प्रदर्शन से भी उसे सन्तोष नहीं होता क्योंकि यह सब विशेषताएँ उसके पास स्वय हैं और इतनी प्रचुर मात्रा में हैं कि इनकी खैरात वह दूसरों को दे सकती है। स्त्री, स्नेह चाहती है किन्तु इससे भी अधिक वह चाहती है प्रेम, जोश, (Passion) या इश्क। मदान्ध करने वाले प्रेम से विहीन स्नेह को भी एक मिनट के लिए वह सहन नहीं कर सकती, क्योंकि वह जानती है कि पति-पत्नी के जीवन के लिए एक दूसरे के बिना ये निरर्थक हैं और उसके काम के नहीं। पति और पत्नी इसीलिए स्वर्गीय वैवाहिक-जीवन तभी वहन कर सकते हैं जब जीवन पर्यन्त वे प्रेमी और प्रेमिका, नायक और नायिका, आशिक़ और माशूक़ और जीव (Spirit) और जड़ (Body) ही बने हैं, केवल वासनाओं की तृप्ति के लिए नहीं वरन् जीवन के अन्य समस्त विभागों में भी।

यहाँ पर एक बात हम पाठकों, देश के सुधारकों और वैवाहिक-सम्बन्ध या सस्कार में सुधार चाहने वालों से भी कह देना चाहते हैं और वह यह है कि न तो सभ्यताएँ वृक्षों के समान एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर जमाई जा सकती हैं और न हम यही कर सकते हैं कि एक सभ्यता की बातों का हम दूसरी सभ्यता में पैवन्द लगा दें। सभ्यताओं का सम्मिश्रण सभव है किन्तु उनकी क़लम हम बाँध नहीं सकते। विकास और उन्नति किसी क्रम से ही हो सकती है। पश्चिम की स्थिति, आवश्यकता के अनुसार ही वहाँ की प्रथाएँ हैं और उन प्रथाओं के अनुकूल, उनकी ही नींव पर, वहाँ की सभ्यता और सामाजिक अभिवृद्धि का महल खड़ा हुआ है। अपने अनुकूल रीति से ही, वह ऊपर भी उठाया जा रहा है। इन महलों के सतमहलों में यह सम्भव ही नहीं कि हम जाकर भारतीय या मुगलकालिक पत्थर के गुम्बज लगा दें।

यही नहीं कि हमारा गुम्बज ना-मौजू होगा, इमारत की खूबसूरती और उपयोगिता को नष्ट कर देगा वरन् होगा यह कि इमारत की बनावट में फर्क हो जायगा और यह भी असम्भव नहीं कि आठवां, दसवां, पन्द्रहवां महल हम ऊपर उठा ही न सकें, या उनके उठाने के लिये हमको बड़ी काट छाँट करनी पड़े, सारी इमारत की इमारत ही रद्द हो जाय और उसके गिरही पड़ने का भय खड़ा हो जाय। इन्हीं इमारतों ही के समान सभ्यताएँ भी हैं और इसलिये हम सब को यह सदा ध्यान में रखना चाहिये कि अगर पश्चिमीय बातों को हम चाहते हैं तो सारा क्रम हमको पश्चिमीय ही करना होगा। पश्चिमीय विचारों की नींव पर ही हमको अपनी इमारत भी बनानी होगी। विवाह को सुखमय बनाने के लिए विषमय कोर्टशिप, तलाक, ट्रायल मैरिज और जो जो यूरोप और अमरीका में हो रहा है, सब कुछ ध्यान में रखना होगा और करना होगा, और बिना इनके काम ही नहीं चलेगा। इसके साथ ही साथ हमको यह भी ध्यान में रखना होगा कि पश्चिमीय संसार अभी भी स्वयं निर्मित भूलभुलैयों में ही भूला हुआ है और मोक्ष और नजात के पथ को वह निश्चित नहीं कर सका है। प्रेम के विवाह (Love marriages) को वह सफल अभी तक नहीं बना सका और जो उपाय उभरने के लिए वह करता है वही उसे एक और आफ़त फँसा देता है। एक अङ्गरेज़ी कवि के शब्दों में—

"Where people once are in the wrong
Each line they add is much too long
Who fastest walkest, but walks astray
Is only farthest from his way" *

---

*जब पुरुष गलत मार्ग पर होता है तो जो बात करता है वही उसकी कठिनाइयों की वृद्धि करती है, जो तेज़ भागता है, साथ ही भटकता हुआ है, उसे उसके प्रत्येक पग उसके मंजिल से अत्यन्त दूर ले जाते हैं। कृ० का० मा०

हम "कोर्टशिप" को उस रूप में जो उसका इस समय यूरोप और अमरीका में है पसन्द नहीं करते। हमारी समझ में यह वहा भी हानि-कर सिद्ध हो रहा है, इस मानी में नहीं कि उसके नाम पर प्रायः सतीत्व की भी हत्या हो जाती है, वरन् इसलिए क्योंकि हमारा यह विश्वास है कि "कोर्टशिप" में युवक को प्रसन्न रखने और फाँसने में एक युवती को अपने मस्तिष्क और शरीर की सारी शक्तियों को खर्च करना पड़ता है और उसे हर समय चालाकी, धूर्तता, नीति-निपुणता से काम लेना पड़ता है। इसका प्रभाव उसके शरीर और मस्तिष्क पर पड़ता है और विवाह और पति का सहयोग होने तक वह प्रायः अधमरी सी हो जाती है, और उसमें प्रेम का वही जोशोखरोश नहीं रह जाता जो एक कुमारी में होना चाहिए और जो वैवाहिक-जीवन को सार्थक बनाने के लिए नितान्त रूप से आवश्यक है।

कुछ लोगों की राय है कि यदि स्त्रियों को भी विवाह के प्रस्ताव को स्वयम् उपस्थित करने का पुरुष के समान ही अधिकार दे दिया जाय, तो स्त्री को चालाकी, धूर्तता, नीति-निपुणता और फरेब से काम लेने की जरूरत न पड़ेगी और इस दशा में "कोर्टशिप" से उसे कोई क्षति न पहुँचेगी, किन्तु हमारा कहना यह है कि "कोर्टशिप" की प्रथा के कारण युवतियाँ और युवक दोनों ही प्रेम की मादकता और सुरूर, प्रेम के खाई और खड्ड, प्रेम की आकाश-गामिनी और पाताल-गामिनी लहरों में स्नान कर चुके होते हैं, बहरे मुहब्बत की तूफाँ खेजियों के थपेड़ों का भी अनुभव उनको हो चुका होता है, मजा कोई बाकी रह नहीं जाता और विवाह के बाद प्रेम में उनके लिए प्रेम का स्वाभाविक लहलहापन, प्रेम की मादकता रही नहीं जाती। यह सब कुछ न हो तब भी हम "कोर्टशिप" के इसलिए विरोधी हैं क्योंकि हम ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों का ही विवाह श्रेयस्कर समझते हैं, क्योंकि हम चाहते हैं कि विवाह के समय युवक और युवती दोनों ही मस्तिष्क और शरीर दोनों से ही कुमार और कुमारी ही हों और दोनों का

शरीर ही नहीं मस्तिष्क भी अदूषित हो। कह नहीं सकते सम्भव है कन्या सर्वथा अदुषिता हो, मस्तिष्क से भी, कदाचित् इसी लिए "बालविवाह" की प्रथा ही चला दी गई थी और अति की पराकाष्ठा पर पहुँचने से ही यह अब हानिकर हो गयी हो। "सगाई जल्दी हो" की प्रथा भी कदाचित् इसीलिए जारी की गई हो कि प्रेमाङ्कुर बढ़े और पर-पुरुष और "पर-दूषण" की रोक मन में ही पैदा कर दी जाय। शरीर और मन दोनों ही पवित्र रहे शरीर और मस्तिष्क दोनों के ही परिपक्व होने पर विवाह कर दिया जाया करे ऐसा प्रबन्ध था।

आर्य सिद्धान्त और सनातन-सभ्यता का आदेश है "यः कौमार हरः स एवहि वरः"। कौमार शरीर का ही नहीं वरन् मस्तिष्क और मन का भी। मन में यदि किसी के प्रति ऐसा भाव उदय हो जाय तो विवाह उसी के साथ होना अनिवार्य रूप से आवश्यक था, नहीं तो स्त्री सती के पद से गिर जाती थी। यही कुमारियों के लिए आवश्यक था और यही कुमारों के लिए भी।

"राम" ने "सीता" को प्रथम देखने पर कहा था—"सहज पुनीत" मोर मन छोभा...

"मोहि अतिशय प्रतीत मन केरी
जेहि सपनेहु पर नार न हेरी"

"राम" का यह दावा था कि यदि सीता, पर नारी होती तो मेरे हृदय में उनके प्रति ऐसे भावों का उदय होना संभव न था। "सीता" जी ने स्वयंवर के समय अपने मन में, जिससे कुछ भी छिपा हो नहीं सकता और ईश्वर से, जो घट-घट व्यापक और सर्वज्ञ है, वन्दना की थी:—

"तन मन वचन मोर प्रण साँचा।
रघुपति पद सरोज मन राँचा॥
तौ भगवान सकल उरवासी।
करिहहिं मोहि रघुवर कै दासी॥"

यही नहीं, जिस समय "जनक" ने निराशा में कहा "कुँअरि कुँआरि रहउ का करऊँ" और राम के उठकर धनुष तोड़ने चलने पर सीता की माता सुनयना जी ने कहा, "सखि सब कौतुक देखन हारे" जिस समय राम के धनुष के निकट पहुँचने पर सीता ने कहा थाः—

"गणनायक वरदायक देवा। आज लगे कीन्हीं तव सेवा॥
वारवार सुन विनती मोरी। करहु चाप गरुता अति थोरी॥"

उसी समय एक कवि रूपी चित्रकार ने सीता के हृदय का एक चित्र खींचा था, और सीता उस समय एक अपनी सखी से कह रही थीं:—

"मो मन में निहचै सजनी, यह तातहु ते प्रन मेरो महा है।
सुन्दर श्याम सुजान सिरोमनि, मो मन में रमि राम रहा है॥
रीति पतिव्रत राख चुकी, मुख भाख चुकी, अपनो दुलहा है।
चाप निगोड़ो अबै जरिजाव, चढ़ौ तो कहा न चढ़ौ तो कहा है॥"

पतिव्रत की रीति, के लिए मन से या मुँह से भाख देना ही काफी था। "कोर्टशिप" में मन, वचन या शरीर कोई भी पवित्र रह नहीं सकता। पश्चिमीय सभ्यता की ही भाँति उसकी "कोर्टशिप" की प्रथा भी पतन तथा प्रवृत्ति का मार्ग है, उत्थान, निवृत्ति और पवित्रता का नहीं।

अपने देश के नवयुवकों से हम इसलिए यह भी कह देना चाहते हैं कि पश्चिमीय प्रथाओं में पश्चिमीय खिलौनों और वस्तुओं की भाँति वाह्य तड़क-भड़क मात्र है, भीतर से उनमें कुछ नहीं है और न उनमें असली तत्व ही कुछ है। पश्चिमीय सभ्यता की हालत कुछ वैसी ही है जैसे पश्चिमीय देशों में "विज्ञान" की है। सुख के साधन लाखों ही उसने तैयार कर दिये, साथ ही बम, ज़हरीला गैस, पनडुब्बी नौका और सृष्टि का मिन्टों में संहार करने वाले वायुयान भी, जो सर्वथा नाश के ही साधन हैं।

"अकबर" साहब ने "दिल्ली दरबार" के सम्बन्ध में लिखा था—

"महफिल उनकी, साकी उनका
आँखें अपनी, वाकी उनका"

हमारी वर्तमान दशा का सर्वोत्तम चित्र यही है। जिस ओर देखो, जहाँ देखो, यहाँ तक कि मंदिरों, देवालयों और भगवान की मूर्तियों के शृङ्गार में भी पश्चिमीय सभ्यता की चमक दमक पहुँच गयी है, अगर इस समय में हम कुछ अपना कह सकते हैं तो वह हमारा गार्हस्थ्य जीवन और हमारा पति-पत्नी का सम्बन्ध ही है। देश के और समाज के सुधारकों से हमारा विनीत निवेदन यही है कि ईश्वर के लिये इसे अपना ही बनाये रहना, जब तक यह अपना है, जीवन सुख और शान्ति की मृत-प्राय आशालता भी कहीं न कहीं से हरी बनी रहेगी। याद रहे, पश्चिम की ओर जाकर सूर्य भी अस्त हो जाता है।

आर्य सभ्यता, आज की अपनी इस हीन दशा में भी अगर अपनी सवत पश्चिमीय सभ्यता से कुछ कह सकती तो पश्चिमीय प्रदेशों के नायकों से वह कवि "हाली" के शब्दों में कदाचित् यही कहती—

"ज़ीस्त बेअकलों को हो जाय बसर करनी मुहाल,
इतनी भी ऐ आकलों अच्छी नहीं हुशियारियाँ"।

इसके साथ ही वह एक दूसरे प्रसिद्ध शायर के शब्दों में यह भी कह देती—

"हमने माना हो फरिश्ता शेख़ जी
आदमी होना मगर दुश्वार है।"

पश्चिमीय सभ्यता वासनाओं कि तृप्ति के लिए है और पश्चिमीय प्रदेशों की कितनी हीन दशा हो गयी है इसका अन्दाज़ा इसी से

लगाया जा सकता है कि जज लिन्डसे की राय में अमरीका में *"हाई स्कूलों मे पढने वाली प्रत्येक दस लड़की में से एक और प्रत्येक सौ में दस, सुमार्ग से विचलित हो गयी हैं और भयावह रास्ते पर चल रही हैं। मैं यह जोरों से कह देना चाहता हू कि इसमें अत्युक्ति तनिक भी नहीं है और वास्तव में यह कम से कम सख्या मैं बतला रहा हूँ। इस सख्या में भी गणना केवल उनकी ही है जिनकी उम्र इस समय १४, १५, १६ या १७ है। "मैंने पिछले साल में सौ हराम के गर्भों के मामलों को अपने हाथ मे लिया, मैंने इनमें से अधिकतर मे माताओं और बच्चों का भी भार अपने ही ऊपर ले लिया। इन प्रत्येक मामलों में स्थिति छू मतर की थी और कन्याओं के सामने केवल दो मार्ग थे, तुरन्त मेरे पास आतीं या तुरन्त ही किसी गर्भ-पात करने वाले की शरण में जातीं।

†"कम से कम ५० फ़ी सैकड़ा जो अलिङ्गन और चुम्बन से

---

*"One High School girl in every ten and ten in every hundred in our schools have their feet set on more or less perilous ground. Let me repeat *that these are minimum figures and they include Only the ages of fourteen, fifteen, sixteen and seventeen"* .
I handled about a hundred cases of illegitimate pregnancy last year, taking care of most of the mothers and babies With everyone of these girls it was a touch and go whether to come to me and arrange to have the baby or to go to an abortionist ..

†"Atleast 50o/o of those who begin with hugging and kissing, do not restrict themselves to that but go further than and indulge in other sex liderties, which by all the conventions are outrageously improper"

"Fully 90o/o of the High School boys have had sex experience by the time they finish school"

शुरू करती हैं, इतने पर ही नहीं रुकतीं वे आगे बढती हैं और वह सब कुछ करती हैं जो ससार और समाज के समस्त नियमों पर पदाघात करता है ।"

. . . .

"हाई स्कूलों मे पढ़ने वाले बालकों ६० फी सैकड़ा स्कूल की शिक्षा ख़त्म करने के पहिले स्त्री का ससर्ग कर चुके होते हैं"

....

. .. .

*"अपने हाथ में आई हुई लडकियों में हम लोगों ने देखा कि ३१३ मे से २६५ रजस्वला और बालिग़ा हो चुकी थीं ११ और १२ वर्ष की अवस्था में । इनमें से अधिकतर ११ की अवस्था मे रजस्वला और बालिग़ा हो चुकी थीं । ३१३ लड़कियो को दो समूहो में विभाजित कर देखने से ज्ञात हुआ कि २८५ उनमें से ११, १२, और १३ की उम्र में स्त्री हो चुकी थी और केवल २८ उनमें से १४, १५, और १६ की अवस्था मे स्त्री हुई थी ।"

"कम से कम एक शहर न्यूयार्क मे इस समय मे ५०,००० 'कुमारियाँ ऐसे पुरुषों के साथ रह रही हैं जो उनके पति नही हैं ।"

यह सब है पश्चिमीय सभ्यता और कामुकता की वृद्धि का नतीजा । विवाह होने के पहिले की दशा यह है, विवाह के बाद क्या होता

---

*' We found that 265 of 313 girls had come to physical maturity at 11 and 12 years more of them maturing at 11 and 12 Dividing the 313 girls into two groups we found that 285 of them matured at the ages of 11, 12 and that only 28 matured ar 14, 15 and 16".

"There are" says Judge Lindsay "*atleast* 50,000 girls in New York living with men who are not their husdands . . . "

है—"तलाक" के मुकदमो के हालत पढ़ लीजिये। मिस मेयो भारतीयों की निन्दा करती है किन्तु सत्य बात यह है कि इस गिरी दशा में भी भारत के युवक और युवती, कम से कम पश्चिमीय सभ्यता के युवकों और युवतियों से सहस्त्र गुना अधिक पवित्र हैं। भारत में भी महाभारत हुआ किन्तु यहाँ (War Babies) युद्ध के बच्चे पैदा नहीं हुए। पश्चिमीय संसार में अब ट्रायल मैरिज, बहुविवाह आदि की प्रथाओं का प्रस्ताव किया जा रहा है किन्तु हमारा कहना यह है कि नीव गलत है, जिन सिद्धान्तों पर सभ्यता अवलंबित है, जिन भित्तियों के सहारे वैवाहिक-महल उठाया जाता है, वे सब हेय हैं, खोखली हैं, सुन्दर और नीव के अनुकूल होती हुई भी ज़हरीली हैं और उनसे कम चल ही नहीं सकता। सभ्यता या वैवाहिक सबन्ध को कामुकता की नीव पर स्तम्भित करना ही भूल है। पूर्वीय वैवाहिक सबन्ध की नीव उष्णता और जो जोशविहीन ठण्डा (Cold-Blooded) कर्तव्य है। प्रेमाग्नि की आंच इसमें है ही नहीं। बन्धन धार्मिक है और उसकी मज़बूती के लिए उसका सबन्ध इहलोक से ही नहीं परलोक से भी रच दिया गया है। साथ ही सब से बड़ा अन्तर यह है कि मस्तिष्क और हृदय का साम्य नहीं, वरन् धार्मिक विचारों, सामाजिक कर्तव्यों तथा रति सम्बन्धी साम्य की नींव पर यह स्तभित है। कर्तव्य रूपी बन्धन में प्रेम का लहलहापन न हो, मादकता न हो, यह भी असमव नहीं कि अस्थायी सुखों से वह बिलकुल विहीन हो किन्तु मादकता विहीन होने पर भी यह टिकाऊ अधिक है इसमें तनिक भी सन्देह*नहीं। प्रेम, जोश तथा मादकता स्थायी हो नहीं सकती यह भी हमको सदा ध्यान में रखना चाहिए। मस्तिष्क सम्बन्धी

---

*हमारे प्राचीन आचार्यों ने गान्धर्व-विवाह को धर्म्म-विवाह नहीं कहा इसका एक कारण यह भी कहा जाता है कि वे कहते थे कि इसमें विवाह-विच्छेद (Divorce) की संभावना अत्यधिक है।

कृ० का० मा०

साम्य (mental affinity) के सामने रति-सम्बन्धी साम्य (Sexual affinity) हेय है किन्तु इसमें तुष्टि और सन्तोष अधिक है इनमें कम से कम हमको तनिक भी सन्देह नहीं। "समन् विवाहम् च मैत्री च न तु पुष्ट विपुष्टयो." का वास्तव में उद्देश्य ही यही था।

*प्रथाएं समय की स्थिति और आवश्यकताओं के अनुकूल ही होती हैं और पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इङ्गलैण्ड के एक ज़बर्दस्त विद्वान ने अभी ही यह मत प्रकट किया है कि बहु-विवाह की प्रथा वहां जारी की जाय। कुमारियों की संख्या वहा अत्यधिक है, कुमार कम हैं। यहही अङ्गरेज़ भारत की बहु-विवाह प्रथा की निन्दा करते थकते नहीं थे। इसके सिवाय जैसा कि "मनोरमा" ने लिखा है, हमको यूरोप और अमरीका में जो कुछ हो रहा है, जैसी वहां की दशा है उस पर भी निगाह रखनी चाहिए। वासनाओं की तृप्ति की नींव पर स्तंभित विवाहों के नित्य प्रति बढ़ते हुए झगड़ों और तलाकों की संख्या को देखकर ट्रायल मैरिज-(Trial marriages) अर्थात् विवाह करने के पहिले, गिर्जे में जाने के पहिले, कुछ दिनों युवक और युवती एक साथ पति पत्नी की भांति रहकर यह देख लिया करें कि वे एक दूसरे से सुखी रह सकेंगे या नहीं और तब विवाह किया करें—का प्रस्ताव ज़ोरों से वहां इस समय हो रहा है।

हम सदृश दो चार पुस्तकों को पढ़कर विद्वान बनने वाले का कु

---

*हमको यह भी सदा विदित होना चाहिए कि बहु-विवाह, एक पुरुष का अनेक स्त्रियों से विवाह करना या द्रौपदी की भांति एक स्त्री का कई पुरुषों की सम्पत्ति होकर रहना या और ही जितने प्रकार के वैवाहिक-सबन्ध देखने में आते हैं, वास्तव में स्थिति, समय की आवश्यकता और मुख्यतः पुरुष स्त्रियों की जन संख्या से उनका घना सबन्ध होता है, और इनकी नींव पर ही उनका महल उठता है और हम इसी को धर्म और सामाजिक नियमों के नाम से पुकारा करते हैं।

कु० का० मा०

भी इस संबन्ध में कथन अनधिकार चेष्टा होगी, फिर भी हमारा निवेदन यही है कि यह कढ़ाई से गिर कर भट्टे में जाने के समान होगा। पश्चिमीय मस्तिष्क रक्षा के निमित्त तथ्य तर्क और शुष्क विवेक से विचार करता हुआ नित नूतन उपाय रक्षा के सोच रहा है किन्तु रक्षा होगी नहीं क्योंकि नींव और सिद्धान्त की भित्ति ही भ्रष्ट है।

हम ट्रायल मैरिज़ के विरोधी इसलिए नहीं हैं क्योंकि हम पुरुष-प्रकृति को जानते हैं और यह जानते हैं कि जब तक उसका सुधार नहीं होता, वह "मनोऽन्येति नवम नवम" की पुजारिनी बनी रहेगी, वह भँवर की प्रकृति के समान है, वह फूलों पर उड़ती ही फिरेगी। हम ट्रायल मैरिज के ख़िलाफ़ इस लिए भी नहीं हैं क्योंकि हम पुरुष हैं, स्वार्थी हैं, अन्यायी हैं, "हमारे लिए सब कुछ और दूसरे के लिए कुछ नहीं" कहने वाले हैं। हम कैसे ही पतित और दुराचारी क्यों न हों, पत्नी को हम पवित्र ही चाहते हैं, कुमार अवस्था में हम कैसे ही कुछ क्यों न रहे हों [यद्यपि यह देश के सौभाग्य की बात है और इस पर हम गर्व कर सकते हैं कि *पश्चिमीय देशों हमारे युवक कम से कम इस संबन्ध में करोड़ गुना अच्छे हैं और अधिकतर हमारे युवक पवित्र ही रहते हैं] कुमारी को हम पवित्र और सती ही चाहते हैं और कुमारी के कौमारित्व को अपने स्वार्थ और प्रभुता से व्यर्थ ही और व्यर्थ का महत्त्व प्रदान करते हैं। स भव है हमारे बहुत से भाई हमारे इस मत के लिए हम पर हँसें और हमको हेय भी समझें किन्तु हम कौमारित्व स्पून सतीत्व को (as such) इसी दृष्टि से और इसी लिए कि उसमें कोई विशेषता है कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं

---

* जर्मनी की राजधानी बर्लिन शहर में अस्सी हजार पुरुष और स्त्री ऐसे हैं जो केवल पुरुष, या केवल स्त्रियों के क्लबों के सदस्य या सदस्या हैं, स्त्रियों के क्लबों में पुरुष और पुरुषों के क्लबों में स्त्रियाँ जा नहीं सकतीं और इन क्लबों में आपस में ही परस्पर काम-वासना की तृप्ति होती है। कृ० का० मा०

समझते। हम से छिपा नहीं कि पुरुष दूसरे की पत्नियों और वेश्याओं के प्रेम में अक्सर पागल होते हैं और उनके चरणों में सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार रहते हैं। अगर कौमारित्व में कोई विशेषता होती तो उपर्युक्त बातें असम्भव होतीं। हम यह भी जानते हैं कि पूर्वीय प्रदेशों के एक या दो मतदाताओं का मत यह था कि विवाह के बाद पति, पत्नी को किसी दूसरे के पास "बाल भाव मोक्षाय" कौमारित्व हरण के लिये भेज दिया करे और कौमारित्व - हरण हो जाने के बाद ही पत्नी का पति से सहवास हो। इन मतदाताओं को भय यह था कि कौमारित्व-हरण के कष्ट के कारण कहीं पत्नी पति से भय न खाजाय और कहीं ऐसा न हो कि वह पति से फिर कभी प्रेम ही न कर सके।

शारीरिक 'कौमारित्व' को वैसा महत्त्व एक दृष्टि से 'वात्स्यायन' ने भी नहीं दिया है। कन्या सम्प्रयुक्तमधिकरण (Courting and wooing a maiden) के अध्याय में कुमारियों को सीख देते देते यहाँ तक कहा गया है, अवश्य ही, यह पूर्ण रूप से विश्वास हो

~ बहुत दिन पढ़े हो गये इसलिए मतदाताओं तथा ग्रन्थ का नाम याद नहीं है किन्तु हमने ऐसा पढ़ा ज़रूर है। यह भी सम्भव है कि किसी भी दक्षिण मार्गी आचार्य का मत यह न हो क्योंकि आर्य सभ्यता में ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, कुमार. कुमारी, अक्षत अक्षता, अदूषित युवा, अदूषिता कन्या, अपूर्व अपूर्वा का ही विवाह श्रेष्ठ माना गया है। उपर्युक्त प्रथा से "कुमारी" का मन और शरीर दोनों ही दूषित हो जाता है।

सुनते हैं मलाया प्रायद्वीप में प्रायः अब भी यह प्रथा प्रचलित है। बरात धूम धाम से निकलती है, विवाह होता है, अनन्तर तीन दिन पति, पत्नी के साथ रहता है, चौथे दिन पत्नी पति से अलग कर दी जाती है और फिर उसका विवाह सिवा उस पति के किसी भी दूसरे मनुष्य के साथ हो जाता है। इस प्रथा का तत्व और रहस्य हमारी समझ में नहीं आता।

कु० का० मा०

जाने पर कि कुमार छोड़ कर भागेगा नहीं और उससे विवाह जीवन भर का सबन्ध होगाः—

"अभ्यर्थितापि नातिविवृता स्वयम् स्यात्। अन्यत्र। निश्चय कालात्। यदातु मन्येतानुरक्तो मयि न व्यावर्तिष्यति इति तदैवेनमभियुञ्जानम् बाल भाव मोक्षाय त्वरयेत्। विमुक्त कन्या भावा च विश्वास्येषु प्रकाशयेत्"

"कन्याभियुज्यमाना तु य मन्येताश्रय सुखम्।
अनुकूल च वश्य च तस्य कुर्यात्परिग्रहम्" ॥

ट्रायल मैरिज और [Premarital experience] "विवाह के पहिले ही कुछ अनुभव" जिस पर पश्चिमीय सवार आज दिन बहुत जोर दे रहा है, कुछ उसी के समान किन्तु पवित्रता को लिये हुए यह उपर्युक्त बातें थीं किन्तु हमारा ख्याल यह है कि हमारी सभ्यता इन सब बातों को करके देख चुकी, उसने इनको निकम्मी पाया और इनको करके छोड़ दिया। भारत में प्राचीन काल में और आज भी मलाबार, ट्रावनकोर और उत्तरी पहाड़ी या जङ्गली प्रदेशों में क्या नहीं प्रचलित है ! स्वयंवर, गान्धर्व, राक्षस, एक स्त्री के कई पति, एक पति के कई स्त्री, सब कुछ तो था और है। एक नहीं आठ* प्रकार के विवाह-सम्बन्ध होते थे, नियोग भी होता था, पति के जीवित रहते दूसरा विवाह भी होता था, किन्तु इनकी निस्सारता और

---

* [१] ब्राह्म [२] प्राजापत्य, [३] आर्ष, [४] दैव [५] गान्धर्व, [६] आसुर, [७] राक्षस [८] पैशाच। प्रथम चार प्रकार के विवाह 'धर्म्य" माने गये हैं, द्वितीय चार को काम्य विवाहों में सज्ञा है। कन्या को अलकृत कर उसका दान देना, ब्राह्म विवाह कहा जाता था, यह विवाहों में सर्व श्रेष्ठ माना गया है। युवक और युवती मिल कर धर्म का आचरण करें, इस उद्देश्य से उनका विवाह कर देना "प्राजापत्य" विवाह कहा जाता था। वर से दो गाय लेकर उसे कन्या दे देना "आर्ष" विवाह था। एक ऋत्विज को वेदी पर विठा

त्तरावियों को देख कर हो हमारे पूर्वजों ने, हमारी सभ्यता ने इन बातों को किया, करके जोड़ दिया, इन का वहिष्कार कर दिया और अन्त में सतीत्व, पवित्रता, धर्म और कर्तव्य

कर उसे कन्या दे देना "दैव" विवाह कहा जाता था। इन सब उपर्युक्त विवाहों में कुमारी के माता पिता की सम्मति ज़रूरी है। द्वितीय चारों प्रकार में माता पिता की सम्मति जरूरी नहीं। युवक और युवती की सम्मति या प्रीति ज़रूरी कही जाती है किन्तु हम कह नहीं सकते कि यह ठीक कहा तक है। कम से कम पैशाच विवाह का जो रूप है वह कदाचित् कन्या की सम्मति होने पर इसी प्रकार का न होता। गान्धर्व-विवाह, प्रेम और पसन्द का विवाह था, युवक और युवती प्रेम के वशीभूत हो आप ही संबन्ध कर लेते थे। आसुर-विवाह का अर्थ कन्या के माता पिता को धन देकर कन्या ले लेना है। जबर्दस्ती कन्या को छीन ले जाना, शक्ति के बल से, राक्षस-विवाह कहलाता है और सोती हुई कन्या को चोरी से उठा ले जाना पैशाच-विवाह के नाम से प्रसिद्ध है। द्वितीय चार प्रकार के विवाह धर्म्म नहीं [अधर्म्य] "काम्य" विवाह कहे जाते थे। अधर्म्य क्यों समझे जाते थे, इसका एक कारण यह भी बतलाया गया है कि इनमें विवाह-विच्छेद, तलाक(Divorce) और विवाह-बन्धन के टूटने की अधिक सभावना रहती थी। हमारे देश में (Love-marriages) प्रेम के विवाह, गान्धर्व-विवाह इसी लिए श्रेष्ठ समझे ही नहीं गये। विवाह की नींव प्रेम [जो घटने बढ़ने और नाश होने वाला होता है] के माथे रखी ही नहीं गई। भारत में इसी लिए धर्म और कर्तव्य की नींव पर विवाह-बन्धन स्थापित किया गया था। विवाह-परिछेद (Divorce) और पति के जीवित रहते पुनर्विवाह का भी आयोजन था। सब के आश्चर्य जनक बात यह है कि प्राचीन भारत में विवाह-विच्छेद (Divorce) के जो नियम थे वे प्रायः वे ही थे जो सौ वर्ष पहिले इङ्गलैंड, वेल्स स्काटलैंड

की नीव पर विवाह-बन्धन को स्थापित किया। हम भी सतीत्व और पवित्रता को इसी लिए सर्वश्रेष्ट महत्व प्रदान करते हैं क्योंकि हमारा विश्वास है कि वैवाहिक-जीवन कभी भी सुखमय हो ही नही सकता जब तक कामुकता का एकदम दमन न किया जाय और पत्नी मन और शरीर दोनों से ही सती और पति मन और शरीर दोनों से ही पवित्र, सयमी और एक पत्नी-व्रत धारण करने वाला न हो, क्योंकि हमारा विश्वास है कि वासना की तृप्ति की नीव पर स्तम्भित सम्बन्ध न सुखकर हो सकता है और न स्थायी।

किन्तु उपर्युक्त बातों का अर्थ पाठको यह न लगा लेना चाहिए कि पश्चिम में सब खराब ही है और हमारे यहाँ सब अच्छा ही है। पश्चिम मे अनेक अच्छी बातें हैं, साथ ही भारत की कितनी ही हीन प्रथाओं का कैसा नाशकारी फल हो रहा है यह हमारा ही जानना है।* इस सम्बन्ध मे तो हमारा निवेदन यही है—

में प्रचलित थे। भारत के विवाह के नियम अधिकतर Germany जर्मनी के नियमों से मिलते जुलते हैं। हमारा ख्याल तो यह है कि जर्मनों ने अपने वैवाहिक नियमों का निर्माण हमारे नियमों के आधार पर ही किया है। किन्तु भारतीय तलाक की विशेषता यह थी कि प्रथमत. यह कठिन बहुत था साथ ही दुश्चरित्रता (adultry) का प्रमाण आवश्यक न था। यह हो सकता है कि बहुविवाह की प्रथा के होने से, या पुरुष की प्रभुता मे, या स्त्रियों की पवित्रता से दुश्चरित्रता का नियम ही न रखा गया हो किन्तु इसी तस्वीर का दूसरा रुख यह भी है कि हमारे आचार्यों ने वही कर रखा था जिसके लिए आज पश्चिमीय प्रदेश चिल्ला रहे हैं और वह यह कि गन्दगी साबित करने की जरूरत आवश्यक न समझी जाय। कृ० का० मा०

*कविसम्राट रवीन्द्र के शब्द मे सच तो यह है—

"The marriage system all over the world and not only in India from the earliest ages till now, is a barrier

"एक नहीं दो नहीं सौ नहीं हजार नहीं ।
हमारे सीने के दागों का कुछ शुमार नहीं ॥"

हमारी कुप्रथाओं का सुधार और पुन स्स्कार ज़रूरी है, वहुत सी समयानुकूल वाते हम को जारी करनी हैं, सब से बड़ी बात यह करनी है कि पुस्तकों और अक्षरों में ही नहीं वरन् व्यवहारिक-जीवन मे हम को स्त्री को आदर और पूजा का पद देना है किन्तु यह सब होते हुए भी हमारा निवेदन यही है कि जो कुछ हम करे, आँख खोल कर, उन वातों के नतीजो पर अच्छी तरह से विचार कर, साथ इस व त को साथ ध्यान में रख कर कि हमारा मार्ग पश्चिम की भाँति प्रवृत्ति का नहीं वरन् निवृत्ति का है और सच्चा और सुखदायी मार्ग यही है। हम कह नहीं सकते क्यों और कैसे किन्तु हमारा तो विश्वास है कि इस प्रवृत्ति और वासना की लिप्सा का ही यह नतीजा हुआ है कि आज—

"आदमी को भी मुयस्सर नहीं इन्सा होना" ।"

कामनाएं दो प्रकार की होती है। एक काम्य, इन्द्रियानुगत, अपवित्र और नाशकारी दूसरी पवित्र और अनन्त-जीवन की प्रदायिनी। एक तृष्णा से ओत-प्रोत है, काम्य है, जड़ है और यह हमको समय की गति के पहियों में जीवन मारण या जन्म और मृत्यु के रूप में बाँध देती है, दूसरी वोधमय है, यह जीवन मरण तथा जन्म और मृत्यु से हमको स्वतत्रता दिलाती है और हमारी आत्मा को अन्त-जीवन और विशिष्ट-आत्मा में विलीन कर देती है। एक अशान्ति

---

in the way of true union between man and woman, which is possible only when "Society shall be able to offer a large field for the creative work of woman's special faculty without detracting from the creative at home".

R. N TAGORE

अतृप्ति, प्रवृत्ति की प्रोत्साहिका और जननी है, दूसरी तुष्टि, तृप्ति-निवृत्ति और निर्वाण की माता है। इन्हीं दो प्रकार की दो भिन्न माम-नाओं की नीव पर ही पश्चिमीय और भारतीय सभ्यता अवस्थित और अवलम्बित है। इस भिन्नता और परस्पर विरोध के कारण ही दोनों के दृष्टिकोणों में महान् अन्तर है और इसके ही कारण दोनों की प्रथाओ, आदर्शों, उद्देश्यों और जीवन के नियमों में इतना फर्क है। इसी के कारण पश्चिमीय सभ्यता में वासनाओं की तृप्ति तथा धन-सग्रह का आदर और आयोजन है जब की भारतीय सभ्यता में सब से अधिक सन्तोप, त्याग, विद्या और चरित्र का मान था और सब से अधिक ईप्सित वस्तु थी निष्काम और शान्ति। यहाँ केवल धन से कोई वड़ा हो ही नहीं सकता था, पश्चिमीय सभ्यता मे केवल धन से सम ससार के ऊँचे से ऊँचे पद को प्राप्त कर सकते हैं। वहा रुपये की सब माया है। वहा रुपये की ही जात है हमारे यहाँ धर्म, कर्तव्य और चरित्र की नीव पर जाति का भी विभाजन था। इस धन की नीव के कारण ही अमीर गरीब का भेदभाव हुआ, गरीब पीसे जाने लगे हजारों कानूनों की जरूरत हो गयी और राष्ट्रो को दूसरे राष्ट्रों से युद्ध करना और राज्य का विस्तार करना नितान्त आवश्यकता हो गया।

वैवाहिक-जीवन की समस्याओं के स बन्ध में ही नहीं वरन् जीवन की प्रायः समस्त महत्वपूर्ण समस्याओं के स बन्ध मे दोनों हो सभ्यताएँ सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकीं है, क्योकि सिद्धि प्राप्त करने के बाद पतन अस भव होता, कहीं न कहीं पर पहुँच कर दोनों ही सभ्यताएँ विफल हो जाती हैं, अपने हो हाथों द्वारा निर्मित "तोक गुलू" और हथकड़ियों और वेड़ियों में ये अपने को ही जकड लेती हैं, और एक फन्दे को छुड़ाने के फेर में और फन्दों में ये अपने को फसाती जा रही हैं। मुक्ति का मार्ग ढू ढ़ने में, अपने को अमर और सफल बनाने की धुन में दोनों ही पागल हो रही हैं यद्यपि दासी होने के कारण १८५७ के वाद से हमारे पतन-काल में आर्य सभ्यता सर्वथा हीन, निश्चेष्ट और

तामसी हो गयी है। हर तरह से हर प्रकार के अनुभव और प्रयोग किये जा रहे हैं किन्तु निश्चित कुछ नहीं हो सका है। हमारे देश के सुधारकों को यह सब ध्यान मे रखना चाहिए और इन सब के साथ ही साथ हमारे इस विनीत निवेदन को भी कि सुधार अपने हाथो ही होगा, अपनी शक्तियो से ही होगा और होगा अपने भीतर की ही सहायता से किसी भी दूसरे की या बाहर की सहायता से नहीं।

देश के सुधारकों को एक बात और भी ध्यान मे रखनी होगी और यह है कि पश्चिमीय सभ्यता एक जर्मन विशेषज्ञ* के मतानुसार राजसी (राजस; forceful, active, energetic) शक्तिशालिनी, प्रत्येक क्षण आगे बढ़ने वाली, मार काट पसन्द करने वाली और सक्रिय है और हमारी सभ्यता तामसी, प्रगाढ़ निद्रा और निश्चेष्टा की पक्ष-पातिनी, निष्क्रिय और स्वप्नों में लीन रहने वाली है। रज और तम की भाँति ही दोनो बिलकुल, विभिन्न पथ-गामिनी और एक दूसरे की बिलकुल विरोधिनी हैं। हमको यह भी जानना चाहिए कि रज अकेला अपनी प्रकृति और बनावट के ही कारण, केवल अपनी शक्ति और पूर्ण विकास से ही, अगर उसकी रोक थाम न की जाय, अपनी ही नहीं संसार की समस्त शक्तियों का विनाश सम्पादित कर सकता है। इसके विपरीत "तम" अकेला अपने पूर्ण विकास से निश्चेष्ट हो संसार की समस्त शक्तियो को एक छोटे बिन्दु (Point) का रूप दे सकता है। पश्चिमीय सभ्यता एक दम "लोकायता" या इन्द्रोपासन और शक्ति पर स्तंभित है। पूर्वीय सभ्यता एक दम निष्क्रियपात्रता (Passivity) और पूजा पाठ और अध्यात्म (Too much spiritualism) पर अवलम्बित है। एक सभ्यता का उद्देश्य है सारी पृथ्वी का साम्राज्य, दूसरी सभ्यता सारे स्वर्ग पर अधिकार चाहती है, ठीक वैसे ही जैसे वैवाहिक-सम्बन्ध आर्य-सभ्यता मे बिलकुल शुष्क धार्मिक कर्तव्य है और पश्चिमीय

* Count H. Keyserling

सभ्यता में पूर्ण वासना की तृप्ति। समस्त पृथ्वी या सारा स्वर्ग दोनों ही सिद्धान्त गलत हैं क्यों की या जड़ और या जीव की संज्ञा पृथ्वी तल पर हो ही नहीं सकती ठीक उसी तरह से जैसे वैवाहिक-सम्बन्ध एकदम शुष्क कर्तव्य या एकदम काम्य हो कर सफल नहीं हो सकता। जर्मन-विशेषज्ञ का कहना यह भी है कि राजस (पश्चिमीय) सभ्यता ससार में अपना अस्तित्व ही नहीं कायम रख सकती जब तक उसका तामसी वर्तमान पूर्वीय सभ्यता से सम्मिश्रण नहीं होता और दोनों "सत्व" के सिद्धान्त की नीव पर स्तम्भित नहीं होतीं। हमारा निवेदन यह है कि हम जर्मन विशेषज्ञ से इस बात में सहमत नहीं कि आर्य सभ्यता "तामसी" है। जिस सभ्यता में "गीता" और उपनिषदों का ज्ञान और सदेश मौजूद हो, वह "तामसी" हो ही नहीं सकती। अर्जुन पर तामस तारी था, वह निश्चेष्ट हो गए थे, मोह के वशीभूत हो गये थे, सबको अपना ही देख रहे थे इसीलिए तो भगवान कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया किन्तु इसके साथ ही साथ हम यह मानते हैं कि काल चक्र और अवनति की मार से हमारा, हमारी आत्मा का, और हमारे ही साथ, हमारे ही विकल्प और तर्क से सभ्यता का रूप भी बदल गया और ऐसी दशा में हमारे पतन काल में हममें तामसी प्रवृत्ति की अधिकता हो गयी, और हम प्रगाढ़ निद्रा और निश्चेष्टा के, साथ ही लोभ, मोह, चरित्र की हीनता और (Too much spiritualism) अत्यधिक अध्यात्म की चिन्ता के फन्दे में फस गए। किन्तु हम फिर चेते हैं, समस्त पूर्व जागा है, और हमारी सनातन आर्य सभ्यता जो तम नहीं रज और सत्व के सुखमय मेल और सामजस्य पर अवस्थित है और जिसकी आवश्यकता जर्मन-विशेषज्ञ बतला रहे हैं फिर हममें ही और हमसे ही विकास प्राप्त कर रही है। सभ्यता का रूप अधिक नहीं तो कुछ ज़रूर हम समय की प्रगति से मालूम कर सकते हैं और समय की प्रगति से विदित हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि १८५७ के बाद, हम अधिक तामसी हुए, हमारी सभ्यता

तामसी हुई किन्तु १९०४–१९०५ में पूर्वीय प्रदेशों की स्थिति और जापान की रूस पर विजय के साथ ही साथ ʼहमारी सभ्यता ने करवट वदली। सन् १९०५ की कांग्रेस ने स्वर्गवासी मि० गोखले के सभापतित्व में प्रथम-प्रथम हमारी राजनीति में और उसके साथ ही साथ हममें "राजस" के अंकुर बोये। बायकाट का प्रस्ताव पास हुआ। १९०७ की कलकत्ते की कांग्रेस ने स्वर्गवासी दादा भाई नारोजी के सभापतित्व में स्वराज्य, राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी और बायकाट का प्रस्ताव पास कर यह प्रकट किया कि उसमे "राजस" का पूर्ण रूप से उदय हो गया है। डा० बीसेन्ट का "होमरूल आन्दोलन" हममें "राजस" को युवारूप मे प्रकट करता है। महात्मा जी का "असहयोग" 'राजस" की पराकाष्ठा को सिद्ध करता है, किन्तु इसके साथ ही निष्क्रिय प्रतिरोध, वह भी "अहिंसात्मक" खुद कष्ट सहो, मार खावो, वार मत करो, खुशी-खुशी कष्ट झेलो, अधिक से अधिक प्राकृतिक और पवित्र जीवन वहन करो" यह "राजस" में "सत्व" का सुहावना सम्मिश्रण था। असहयोग का पतन, सत्व का त्याग था, और "राजस" में ही फिर फँसना था, जो कि हिन्दू मुस्लिम झगड़ों और मार काट से प्रकट भी होता है। इस सन्सार में, साथ ही प्रकृति में स्थिरता है ही नहीं; हर तरफ हर वात मे उतार चढ़ाव है, और प्रगति का रूप घड़ी के लटकन की भाँति एक सीमा से दूसरी सीमा पर जाना और आना है। इस लिए यह किसी का समझना कि हमारी सभ्यता तामसी है महज़ भूल है। पश्चिम पूर्व को स्वतन्त्र न करे, पूर्व स्वयम् स्वतन्त्र हो जायगा या अपनी ही हित-रक्षा के नाम पर विवश हो पश्चिम को पूर्व को स्वतन्त्र करना होगा, नहीं तो पूर्व को बाँधे रख कर वह अपनी गुलामी की ज़ंजीरों को स्वयम् अपने हाथों ही निर्मित कर लेगा।

यह सब होगा, नहीं होगा, कैसे होगा, और कब होगा यह सब विषयान्तर है। इस समय तो हम अपने देश के समाज सुधारकों की

सेवा में इतना ही निवेदन कर देना चाहते हैं कि अपने घर में और अपने पास सब कुछ है, अन्धे होकर पश्चिम की नक्ल करने के फेर में पागल मत होना, वर्तमान् कालिक पश्चिमीय कोर्टशिप (Courtship), ट्रायल मैरिज (Trial marriage), विवाह के पहिले ही वैवाहिक-जीवन की घनिष्ठता का परिचय (Pre-marital Experience) तथा अन्य इसी प्रकार की बातों के सुन्दर और भड़कीले नामों से अपनी सुध-बुध को मत खो देना, इनकी हमको हमारे देश और हमारे समाज को तनिक भी आवश्यकता नहीं। वर्तमान समय में हमको किसी तरह से निराश होने की भी तनिक ज़रूरत नहीं। खुशी से फूल जाने और निश्चेष्ट हो बैठ जाने की भी ज़रूरत नहीं, किन्तु सच बात यह है १९०५ से १९२७ तक में हमने जितनी उन्नति की है, उसकी सीमा नहीं है। हम परिवर्तन और क्रांति (Revolution) के काल में रह रहे हैं, हमको अपनी गति का पता नहीं है, किन्तु भविष्य में इन वर्षों का इतिहास लिखने वाला ऐतिहासिक हमारी उन्नति पर दङ्ग रह जायगा। हमारी सभ्यता में और हममें भीतर ही भीतर घोर मन्थन हो रहा है और हमारा विश्वास है कि इससे हमको हमारी लक्ष्मी और हमारा अमृत दोनों ही मिल जायँगे। हमको केवल इतना ही विश्वास होना चाहिए कि हम सब कुछ अपने ही भरोसे कर सकते हैं, प्राचीन के निकट हो कर, अपनी "तामसी" निश्चेष्टता, प्रगाढ़ निद्रा का त्याग कर, ससार माया है और अध्यात्म की चिन्ता (Too much spiritualism) की प्रवृत्ति पर अंकुश लगा कर, रज और सत्व के मार्ग पर चल कर और "अभ्युदय" के इस सदेश को हृदयङ्गम कर

*"उत्थतव्य जाग्रतव्य योक्तव्य भूतिकर्मसु
भविष्यतीत्येव मन कृत्वा सतत मव्ययैः"

---

*"जागो, उठो, आगे बढ़ो और हितकर कामों में जी जान से लग जाओ, इस विश्वास के साथ कि सफलता होगी और होगी।

हम सुधारों के विरोधी नहीं, हम जितने व्यापक और जिन सुधारों को चाहते हैं, संकोच से, भय से और इस कारण से कि अभी हमें अपने को अधिकारी नहीं समझते, उनकी चर्चा भी नहीं करते किन्तु इसके साथ ही हमारा निवेदन यह है कि आवश्यक सुधारों को हम करते चलें, किन्तु सच्चे और व्यापक सुधार अभी हम कर नहीं सकेंगे क्योंकि हम पराधीन हैं, हमारा आत्मा भी हमारा नहीं और क्योंकि स्वराज्य, बिना पूर्ण स्वतन्त्रता के हमारी आत्मा का पूर्ण विकास, हमारा अभ्युदय असम्भव है और जब तक यह सम्भव नहीं हम लोगों को यह अधिकार नहीं कि अधूरे और गुलामों के ज्ञान से हम महास्वतन्त्र, सत्य संकल्प, पारदर्शी महर्षियों के ज्ञान पर हरताल फेरने की चेष्टा में उतावले हो पड़ें। हमारा निवेदन इस लिए यही है कि हमारी सभ्यता और हम इस समय दोनों ही गुलामी की ज़ञ्जीरों से जकड़े हुए हैं, दोनों ही परमुखापेक्षी हैं और इन कारणों से हमारे मस्तिष्कों की गति और विकास भी परिमित हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। स्वतन्त्र होने पर हम 'समवित' और 'विदेह-मुक्त' दोनों ही हो सकेंगे और उस समय हम अपने ही नहीं वरन् संसार के पथ-प्रदर्शक बन सकेंगे।

हमारा यह मत, कम से कम, हम को स्पष्ट है कि वैवाहिक-जीवन को सुखमय बनाने के लिए, कामवासना को बहुत ही कम करना होगा, साथ ही संयम और इन्द्रिय-निग्रह को नितान्त रूप से आवश्यक बनाना होगा। हम इसी लिए शरीरों के सम्मेलन के पहिले आत्माओं के सम्मेलन पर अधिक ज़ोर देते हैं। हमने इसी लिए कहा है कि सुहागरात में शरीरों का सम्मेलन न हो और शरीरों का सम्मेलन तब ही हो, जब यह पूर्णरूप से निश्चित हो जाय कि विवाह, जीवन भर का निवाह होगा। इससे यह भी सुफल फलेगा कि काम-वासना का नियमन और नियंत्रण होगा, इन्द्रिय-निग्रह का हम को अभ्यास होगा और धीरे धीरे मानव-समाज, वर्तमान काल में जो वासना की वृद्धि

हो गई है [और जो संसार के समस्त कष्टों का एकमात्र प्रधान कारण है], उसको कम कर सकेगा, उस पर विजय प्राप्त कर सकेगा और तब संसार दुःखों का नहीं वरन् सुखों का केन्द्र हो जायगा।

इस सम्बन्ध की एक बात हम और कह देना चाहते हैं। एक* जर्मन-विशेषज्ञ का कहना है कि हजार, दो हजार या दस हजार वर्षों बाद काम की वासना की तृप्ति, इसी प्रकार की, मानव-समाज में रहेगी ही नहीं। इस विशेषज्ञ का कहना है कि यह मानव-हृदय की सब से जबर्दस्त वासना है, सुखों में यह सर्वश्रेष्ठ भी है किन्तु यह सब होते हुए भी वासना की तृप्ति का साधन और प्रकार, इसी तरह से हो यह सृष्टि का ध्येय या सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य हो नहीं सकता. क्योंकि सृष्टि का आदर्श यदि यही होता तो पुरुष और स्त्री की जननेन्द्रियाँ शरीर के नीचे के भाग में न होतीं; साथ ही शरीर के मूत्र को भी बाहर करना उनका काम न होता। जर्मन-विशेषज्ञ का कहना है कि उनके मतानुसार आचरण करने से पुरुष और स्त्री सदा सुखी और अमर-जीवन वहन कर सकते हैं। विशेषज्ञ का मत क्या है इसकी चर्चा हम नहीं करते। जब तक संसार के अधिकतर विद्वान उसके मत को स्वीकार न कर लें, साथ ही हम भी उसके कायल न हो जायँ हम उसकी चर्चा पसन्द नहीं करते, दूसरे चर्चा कर हम व्यर्थ में गालियाँ खाने को भी उत्सुक नहीं। जो कुछ लिख डाला है उसी के लिए कदाचित् कुछ हिन्दी के सर्वज्ञ और संस्कृत के कुछ विद्वान हम को क्षमा नहीं कर सकेंगे। अस्तु।

हम न वैज्ञानिक हैं, प्राणि-शास्त्र-विशारद, न प्रकृति के ही विद्वान, इस लिए जर्मन-विशेषज्ञ के मत के सम्बन्ध में हमारा कुछ भी कहना अनधिकार चेष्टा होगी और इस लिए उसके समान दलीलों को न पेश करते हुए और उसके सिद्धान्त को वेदवाक्य न मानते हुए भी हम जो दलीलें और मत ऊपर प्रकट कर चुके हैं उनसे ही, जर्मन-

---

* Dr. Carl Buttenstedt.

विशेषज्ञ के केवल इस मत का समर्थन करते हैं कि मानव-समाज के भविष्य के इतिहास में काम-वासना की तृप्ति का यही प्रकार नहीं रहेगा। क्यों? क्योंकि हमारा विश्वास है कि मानव-समाज के विकास के लिए, पुरुष और स्त्री को अधिक से अधिक सुखी बनाने के लिए, साथ ही स्त्री को उसके जन्मजात और उपयुक्त पद पर आसीन करने के लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि काम की वासना पर लगाम लगाई जाय और पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध इस प्रकार की काम-वासना की तृप्ति की नींव पर नहीं वरन् किसी अन्य अधिक टिकाऊ नींव पर अवलम्बित किया जाय। इस मत के रास्ते में हम को एक ही जबर्दस्त कठिनाई दिखाई देती है और वह यह है कि सृष्टि ने अपनी ही रक्षा के निमित्त काम-वासना की जड़ को मानव-हृदय में बड़ी मजबूती से जड़ दिया है और काम-वासना की धुरी पर ही सारा सृष्टि का चक्र चल रहा है। आशा की रेखा हमारे लिए यह है कि प्रकृति ने सन्तानोत्पत्ति का ही आयोजन किया था, विवाह की प्रथा का नहीं. ऐसी दशा में काम-वासना की जड़ की मजबूती जरूरी थी। मानव-मस्तिष्क ने विवाह की प्रथा को जन्म दिया है, विवाह में सन्तानोत्पत्ति का आयोजन है। इसलिए काम-वासना की जड़ को उतनी ही और उसी प्रकार की मजबूती* की जरूरत अब नहीं रही है और इस लिए काम-वासना की तृप्ति के लिए हृदयों के सम्मेलन की आवश्यक

* "If we think of all that marriage represents to most of us—the memory of the worlds adventure faced together in youth so heedlessly and yet so confidently, the tender comradeship, the sweet association of parenthood, how much more these count, than the bond by which nature, in her ingenious telcology, has contrived to secure and render agreeable the perpetuation of species".

करहम प्रकृतिके प्रबन्धकोटिकाऊ,स्वास्थ्यकरऔरअच्छा रूपदेसकते हैं।

इन सब बातों के साथ ही हम एक बात और भी पतियों से कह देना चाहते हैं। "मनोरमा" ने कई पत्रों में, कई पहलुओं से, काम-वासना को नियमित करने की बात को कहा है। सूत्र रूप से जितना आवश्यक था उसने कह दिया है फिर भी इस सम्बन्ध में हम कुछ कह देना चाहते हैं। आत्मा के लिए शरीर ही निवास है और जीव बिना जड़ के या जड़ बिना जीव के जिन्दा नहीं रह सकता। इसी एक सत्य की नींव पर सारा स सार और ब्रह्माण्ड चल रहा है किन्तु इसी के साथ ही साथ दूसरा अनन्त सत्य यह भी है कि जीव ही प्रधान है, जीव ही नायक है, कर्त्ता है और जीव के बिना जड़ अज्ञान; जीव-विहीन और जीवन-रहित है। इस लिए हमारी समझ में इन दोनों की समुचित उपयोगिता के अनुकूल ही पुरुष और स्त्री-जीवन में इनको स्थान भी मिलना चाहिए। हमने इसी लिए दो आत्मा ओं [जीवों], हृदयों के सम्मेलन को अधिक महत्व प्रदान किया है किन्तु यह होते हुए भी जैसा कि ऊपर हम कह चुके हैं, जड़ [शरीर] महत्व-हीन या नगण्य नहीं है, और उसकी अवहेलना कर जीव जीवित नहीं रह सकता। जड़ के महत्व का इससे बड़े सुबूत और क्या हो सकता है कि पश्चिमीय सभ्यता उसी की तृप्ति पर ही अवलम्बित है। हमारा निवेदन इस लिए यही है कि सृष्टि और जीव के विकास में इस लिए जड़ और इन्द्रियोपासन के महत्व को स्वीकार करते हुए भी उसे उसके उपयुक्त स्थान पर ही रखना चाहिए, और पति-पत्नी के सयोग और ससर्ग की मात्रा को वर्तमान की अपेक्षा अत्यधिक कम कर देनी चाहिए। 'सृष्टि का उद्देश्य, आदर्श और आदेश भी ऐसा ही है यह पशुओं और फल-फूलों को देख कर भी हम समझ सकते हैं। जीव-शास्त्र-विशारदों का मत है कि आदिकाल में पुरुष और स्त्रियों मे भी ऋतुविशेष* ही में

* "It is not an exaggeration to say that in true marriage the sexual relationship and child-bearing

काम का प्रादुर्भाव होता था। संसार और मानव-समाज, साथ ही पति पत्नी की हितचिन्ता से भी कुछ ऐसा ही विधान हमारी समझ में श्रेयस्कर होगा। इस सम्बन्ध की विस्तार की बहस में न पड़ कर हम इतना ही कह कर सन्तोष करेंगे कि यह अच्छा होगा यदि पुरुष और स्त्री-समाज वसन्त तथा श्रावण मास को काम की तृप्ति के लिए एक-मात्र ऋतु समझ लें और गर्भाधान तभी किया जाय जब पति और पत्नी कामान्ध हों और अधिक से अधिक एक दूसरे में लय होने को लालायित हों। यह पति-पत्नी और साथ ही बच्चों के लिए भी अच्छा और श्रेयस्कर होगा।

यह एक आम प्रसिद्ध बात है कि (love children, children of passion) काम वासना के बच्चे अधिक खूबसूरत, चतुर और तेज़ होते हैं। इसका रहस्य इतना ही है कि वह प्रौढ कामना, और तृप्ति के बच्चे होते हैं। मनुष्य इस बात में जानवरों से भी गये बीते हैं। पशु गर्भाधान करते हैं जब वे कामना के वशीभूत होते हैं, जब प्रकृति उनको विवश करती है और जब वे अपने आपे से बाहर होते हैं, इसके विपरीत पुरुष बच्चे पैदा करते हैं बिना किसी ख्याल*

---

although they will always be a normal expression of marriage are incidental· They are not the object, they are the means of expressing the truth of the new life which marriage has created".

—COUNT H KERSLING

* अकारण सन्तानोत्पत्ति करना, हमारा विश्वास है, संसार को नर्क का रूप देने में प्रधान कारण है। इसी कारण से अनाचार, पापाचार बढ़ा है। भ्रूण हत्या, गर्भपात से पाप इसी के कारण होते हैं। आयुष्यहीन, अकर्मण्य, काहिल, निकम्मे बच्चे इसी की वजह से पैदा होते हैं और इसी एक कारण से मानव-समाज अत्यधिक कामुकता का शिकार हो गया है। कृ० का० मा०

के, अकारण, आदत से रिवाज से, या यूं* ही इन्द्रियों की चपलता को दमन न कर सकने के कारण या अपने क्षणिक जोश की शान्ति के नाम पर संसार के समस्त दु:खों का एक प्रधान कारण यह भी है, साथ ही पुरुष और स्त्री के पार्थक्य, उनके दिन-दिन बढ़ने वाले विभेदों और दोनों की परस्पर दूरी का भी हमारी समझ में प्रधान कारण यही है। इस प्रकार जनक बनना हमारी समझ में अनेक दृष्टियों से मानव-समाज और पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध के लिए भयावह और नाशकारी सिद्ध हुआ है। हमारे पूर्वजों ने इसी कारण से गर्भाधान के सस्कार का आयोजन किया था, जिसमें समझ बूझ कर, आँखें खोल, पूर्ण कामना से ही बच्चे पैदा किये जाय। हम पंडित, विशेषज्ञ या बड़े विद्वान नहीं किन्तु हमारा विश्वास यह है, कि पुरुष और स्त्री युगों हुआ एक दूसरे से उसी दिन अलग और दूर हो गये जिस दिन पुरुष ने जड़ (Body) को जीव (Spirit) से अलग किया, जिस दिन उसने स्त्री को "कामवासना की तृप्ति के एक साधन" और "सुख की सामग्री" का रूप दिया, और जिस दिन उसने स्त्री को एक बराबर वाली के सिंहासन से गिरा कर दासी की श्रेणी में बैठा दिया। पुरुष के ऐसा करने से ही "कामवासना की तृप्ति और प्रेम" पुरुष-जीवन मे केवल एक आकस्मिक या साधारण घटना या कथानक मात्र हो गया, इसी कारण से यह कृत्य उसकी आत्मा से नहीं उसके शरीर से ही सम्बन्ध रखने लगा, और पुरुष समझने लगा कि वह आत्मा को शरीर से और शरीर को आत्मा†

* There have been, there are and there will be illegitimate parents but there have never been and never will be illegitimate children

कृ० का० मा०

† इसी कारण से विवाह सच्चा विहाह अर्थात् आत्माओं और शरीरों का लय न रह गया और असुखकर हो गया। कृ० का० मा०

से दूर रख सकता है। यही नहीं पुरुष के ऐसा करने से ही स्त्री में भी परिवर्तन हुआ और जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं प्रेम और वासनाओं की तृप्ति स्त्री-जीवन में भी शरीर और धीरे-धीरे अब आत्मा से भी विलग वस्तु होती जा रही है।

शरीर, पुरुष के अधीन था, उसका वह पालन पोषण करता था, स्त्री ने कहा, यह तुम्हारा है, जैसा जब चाहो, तुम इसके साथ व्यवहार करो, और इसलिए शरीर से वह निश्चेष्ट हो गयी, वह निष्क्रिय-पात्र (Passive vessel) मात्र रह गयी, शरीर से निश्चेष्ट होने पर धीरे धीरे पुरुष की स्वार्थपरता और बर्बरता को देख स्त्री अब अपनी आत्मा को भी धीरे-धीरे निश्चेष्ट और विलग करती जा रही है। स्त्री समझती है और देखती है कि हर घड़ी, आये दिन या पुरुष की जब इच्छा हुई, स्त्री को प्रिय हो या नहीं, वह यह सब चाहता है। चाहे भी क्यों न ? पुरुष-आत्मा से पुरुष का यह कृत्य विलग है, स्त्री ऐसा कर नहीं सकती, लिहाजा उसने यह तय किया कि शरीर की भाँति ही वह आत्मा को भी तटस्थ कर ले। यह सब, पुरुष, स्त्री और इनकी सन्तानों के लिए ज़हर साबित हो रहा है। इसलिए अगर सृष्टि को हम को जीवनमय बनाना है तो हम को स्त्री को बराबर वाली का पद देना होगा, काम की वासना पर हम को लगाम लगानी होगी, इसमें उसकी मर्ज़ी को भी स्थान देना होगा और ऐसा प्रयत्न और प्रबन्ध करना होगा जिससे प्रेम, काम-वासना की तृप्ति, पुरुष की आत्मा और स्त्री के शरीर से कोई विलग वस्तु न रहे, इसके साथ ही हम को ऐसा नियम बनाना होगा जिससे पिपासा की शान्ति तभी हो जब दोनों की आत्माएँ, दोनों के शरीर, चारों ही एक दूसरे में लय होने को उत्सुक और लालायित हों।

हमने इसी लिए काम की तृप्ति के लिए विशेष ऋतुओं, वसन्त और वर्षा, का प्रस्ताव उपस्थित किया है। वसन्त [फाल्गुण] में पुरुष कामान्ध होते हैं प्रकृतिवशात्, वर्षा [श्रावण और भाद्र मास]

में स्त्रियाँ कामातुर होती हैं। अगर हमारा प्रस्ताव स्वीकार किया जाय तो कुछ ही दिनों में वर्षा का ऋतुविशेष आर ही नहीं रह जायगा और दोनों के लिए एक ही ऋतु हो जायगा। अगर गर्भाधान फाल्गुन में हो तो श्रावण, भाद्र में स्त्री के गर्भ का छठा सातवां मास होगा और उसे काम की वासना हो ही गी नहीं। फाल्गुण को पसन्द हम इस-लिए करते हैं क्योंकि प्रथमतः यह ऋतुराज है, पुरुष का ऋतु है, वह कमजोर होता है और अपनी प्रकृति का दमन नहीं कर सकता, स्त्री तूफ़ान का क्षेत्र है, वह समुद्र है, उसमें समय से ज्वार भाटा ही आता है, नहीं तो वह समुद्र के समान शान्त ही रहती है, पुरुष नद है, वर्षा के नालों के समान वह सहज में डोलायमान हो जाता है। साथ ही स्वभावतः समुद्र की अपेक्षा नद कहीं अधिक चञ्चल होता है, दूसरे वसन्त में गर्भाधान होने से स्त्री प्रकृति के प्रतिबन्ध से ही वर्षा में कामातुरा नहीं हो सकेगी और उसे कोई कष्ट न होगा। इसके विपरीत यदि हम वर्षा को गर्भाधान का समय निर्धारित करें तो एक तो पुरुष कमजोर होता है दूसरे उसके मार्ग में कोई प्राकृतिक प्रतिबन्ध हो नहीं सकता, वसन्त में वह मदान्ध होगा और अत्याचार तथा पापाचार करेगा और इससे सब प्रयत्न निष्फल हो जायगा।

इस तरह से 'वसन्त" को ऋतुविशेष ही नहीं, एक ही ऋतु मान लेने से, पुरुष और स्त्री, एक ही युग में फिर एक ही समान श्रेणी में आ जायँगे, स्त्री का दासी का रूप जाता रहेगा, पुरुष और स्त्री; जो, विकास की सीढ़ियों में कहीं अलग हो गये हैं फिर एक हो जायँगे और सब से श्रेष्ठ बात यह होगी कि बच्चे बलवान, आचारवान, संयमी और धीमान पैदा होकर संसार को स्वर्ग से विलग और दुःख का केन्द्र नहीं वरन स्वर्ग सम और स्वर्ग का ही एक दूसरा टुकड़ा बना देंगे।

हमारे ही देशवासी नहीं, कुछ विद्वानों को छोड़ कर यूरोप और अमरीका वाले भी हमारे इस प्रस्ताव पर हँसेंगे, कहेंगे यह अव्यावहा-रिक है, मानव प्रकृति की यह अवहेलना करता है, यह व्यवस्था,

आदेश और नियम समान है। हमारे युवा मित्र कहेंगे "अच्छे आये, आज तक विशेषज्ञ सप्ताह में एक बार-दो बार पन्द्रह दिन में एक बार-दो बार, महीने में एक बार-दो बार की कैद लगाते थे, यह वर्ष में एक बार चाहते हैं क्या इन्सान हैं ! किन्तु हमारा निवेदन यह है कि वे ही नहीं हम भी उनके ही साथ हसेंगे और उनकी ही बातों का समर्थन करेंगे क्योंकि उनके ही समान हम भी वर्तमान सभ्यता और वातावरण में ही पले हैं और इनकी कृपा से हम भी उनके ही समान कामुक और कामुकता में अधिक अभिवृद्धि प्राप्त किये हुए (Sexually more-developed) जीव हैं। हम सभी में काम की प्रवृत्ति इस उन्नति के युग में वर्तमान सभ्यता की कृपा से अन्य सभी बातों के समान अधिक अभिवृद्धि प्राप्त कर गयी है, किन्तु इसी के साथ ही हमारा निवेदन यह भी है कि विचार का प्रादुर्भाव और प्रचार ही संसार में सब कुछ है और किसी दशा को उपस्थित करने के लिए, किसी भी बात का अस्तित्व कायम करने के लिए पहले उस विचार का ही अस्तित्व कायम करना ज़रूरी है।-"मैं हूँ जैसे कि मेरे विचार हैं, तुम हो जैसे कि तुम्हारे विचार हैं किन्तु वे सब हैं जैसे कि हम सब के विचार हैं।" हम सब समाज के विचारों के प्रतिबिम्ब स्वरूप ही हैं और इस लिए कामुकता को नियमित करने का विचार होने से ही हम सब की कामुकता आप से आप अवश्य ही धीरे-धीरे कम हो सकती है।

आज हमारा ऋतु विशेष का प्रस्ताव अव्यावहारिक है और ज़रूर है किन्तु यदि पुरुष और स्त्री को सुख से संसार में रहना है, अगर हम को निकट भविष्य में होने वाले (Sex war) स्त्रीत्व और पुंसत्व के नाशकारी गृहकलह और युद्ध को रोकना है, स्त्री को उसके उपयुक्त पद पर आसीन कर, विकास की सीढ़ियों पर मानव-समाज को ऊपर

---

* "I am what I think, you are what you think but they are waht we all think"

उठाना है और गृहस्थी को सुख और स्वर्ग का केन्द्र बनाना है तो आज नहीं तो पाँच सौ वर्ष बाद, हजार वर्ष बाद या दस हजार वर्ष बाद जब इस पुस्तक का कहीं नामोनिशान भी न होगा, इस पुस्तक के इस प्रस्ताव को या इसी के समान इसी के भाई किसी ऐसे ही दूसरे प्रतिबन्ध को मानव-समाज को कायम करना होगा। कामुकता की वृद्धि का फल हम देख चुके, उसका उज्वल सितारा वेश्याओं और वाराङ्गनाओं का समूह और महाभारत है, अब कामुकता का दमन कर भी हम को देखना चाहिए, क्या होता है?

अन्त में एक बात हम और कह देना चाहते हैं। "मनोरमा" ने भी लिखा है और जर्मन विशेषज्ञ की भी राय यही है कि पुरुष "राजस" और स्त्री "तामस" प्रकृति की जीव है। हमारी समझ में यह विभाजन कदाचित् इस बिना पर किया गया है क्योंकि पुरुष सक्रिय, सचेष्ट, शक्तिशाली, इन्द्रियपरायण और लड़ने वाला (active, energetic, forceful, materialistic and militant) है, इसके विपरीत स्त्री निष्क्रिय; निश्चेष्ट, अधिक धर्मभावना वाली (Passive and too much spiritual) है। इस विभाजन का एक कारण यह भी हो सकता है कि पुरुष अकेला "रज" की भांति विकास प्राप्त करता हुआ अपना ही नहीं वरन दूसरों का भी विनाश सम्पादित करने में समर्थ हो सकता है यदि "तम" [स्त्री] से, जो अपने विकास से शक्तियों को छोटा कर एक बिन्दु का रूप दे देता है, उसका सम्मेलन और संयोग न हो जाय। "तम" से ही "रज" प्रस्फुटित होता है और विकास प्राप्त करता है, जैसे पुरुष स्त्री से जन्म पाता है, साथ ही "तामस" को निष्क्रिय, निश्चेष्ट, हीन और कर्तव्यच्युत कर, "राजस" कभी भी अपने पूर्ण विकास को नहीं प्राप्त कर सकता, ठीक जैसे पुरुष स्त्री को गुलाम, दासी, अस्वतन्त्र और हीन रख कर कभी भी अपना विकास नहीं प्राप्त कर सकता। पुरुष को "राजस" और स्त्री को

सचय करना रहता है, जज्ब (absorb) करना रहता है, कुसुमित हो पैदा (Fructify) करना रहता है और इस लिये वह निष्क्रिय हो ही नहीं सकती। वह वास्तव में सचेष्ट (active) होती है और उसके चेतन (Mind) और शरीर (Body) के प्रत्येक रङ्ग और रेशे विद्युतगति से काम करते होते हैं।

स्त्री "निष्क्रिय" (Passive) "तामस" है यह तो हमारी समझ में बिलकुल ही अनर्गल बात है। वैशेष्यात् तु तद्वादस्तद्वाद "अर्थात (Predominant Characteristic) प्रकृति की प्रधान विशेषताएँ ही साधारण रूप से देख ली जाती हैं और इन्हीं के भरोसे लोग निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं। यह सर्वथा भ्रामक भी हो सकता है। वास्तव में हमारी समझ में पुरुष और स्त्री भिन्न नहीं हैं, वे एक ही जीव के दो भिन्न दक्षिण और वाम रूप हैं। इसी लिये स्त्री का नाम "वामा" भी पडा है। प्रकृति में जैसा कि ऊपर कहीं हम लिख चुके हैं उतार चढाव ही है। स्वरों का ही हिसाब है। पुरुष इस तरह से आरोही 'स रे ग म प ध नी' का रूप है और स्त्री अवरोही "स नि ध प म ग रे स" का। सांख्य में तो "पुरुष" को ही निष्क्रिय, निश्चेष्ट द्रष्टामात्र और दृष्टत्वेनैव भोक्ता भी कहा है। साख्य ने "प्रकृति" (स्त्री) को ही क्रियाशील* "नर्तकी" कहा है वेदान्त में पुरुष की प्रकृति, ब्रह्म की माया, परमात्मा की शक्ति दिखला कर दोनों की एकता का साधन किया गया है। "सर्वेन देवा सुरमर्त्यतिर्यङ्" "न स्त्री न षटो न पुमान न जन्तु." । कहा गया है, आत्मा में लिङ्ग भेद ही नहीं, पर "स एकाकी न अरमत" आत्मान द्वेधा व्यभजत," पतिश्च पत्नी चाभवत्†" इत्यादि। अकेले क्रीड़ा नहीं हो सकती इस

---

*प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याध्यास सिद्धः कार्यतस्तत्सिद्धि. चेतनो-द्देशान्नियमः कटकमोक्षवत् अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहवत्।

†बृहदारण्यक चतुर्थ ब्राह्मणः—

"आत्मैवेदमग्रआसीत्पुरुष विधिः . सर्वैनैव रेमे तस्मादेकाकी

लिये एक ही ने क्रीडा, लीला और मन बहलाव के लिए, अपने को दो कर लिया, बिम्ब प्रतिबिम्ब। जैसे आइने में परम समान, सदृश होते हुए भी हम खुद "वाम दक्षिण" के से विरुद्ध दिखाई देते हैं। सच यह है कि "अन्योन्याध्यास" से दोनों के गुण दोनों ही में हैं और स्थान, काल, अवस्था भेद से ही वे भिन्न रूप में केवल दिखाई देते हैं। दुर्गा, काली, चन्डी रूप में समस्त पुरुष देवताओं से अधिक "रज" क्रियाप्रवणता, क्रिया-शीलता, मौजूद है (रजः कर्मणि भारत)

पश्चिमीय (Physiologists) प्राणिवर्ग के विशेषज्ञ तो सभी जीवों को (Hermaphrodite) एक साथ ही नर और मादा उभयलिङ्गी कहते हैं। पुरुषों में स्त्री-चिन्ह स्त्रियों में पुरुष चिन्ह अव्यक्त रूप से मौजूद भी होते हैं। लाख में एक दो में यह प्रकट रूप में दिखाई भी देते हैं। सच तो यह है कि 'अर्धनारीश्वर पौराणिक रूपक ही नहीं है। यह प्राकृतिक तथ्य भी है। "काम शास्त्र" के "पुरुषायित प्रकरण" से भी स्त्री की निश्चेष्टता, निष्क्रियता (Passivity) का अपलाप ही होता है। बर्नार्ड शा ने अपने "Man Superman" "मैन सुपरमैन" में साफ़ साफ़ यही सिद्ध किया है कि Woman is the Persuer man the Persued स्त्री पीछा करने वाली और पुरुष भागने वाला है। अमरीका के जज लिन्डसे ने अपनी "रिवोल्ट आव यूथ" नाम की पुस्तक में लिखा है कि स्कूल और कालेज के युवक युवतियों का भीतरी हाल जानने से यह प्रकट हुआ है कि युवतियाँ ही युवकों को मार्ग-भ्रष्ट करती हैं, युवक केवल उनके हाथ में खिलौने और शिकार मात्र हैं। युवतियाँ प्रेरिका हैं और वे ही प्रेरणा करती हैं।

शैव सम्प्रदाय के एक ग्रन्थ में शिव-पार्वती, अर्धनारीश्वर; दोनों तम प्रधान कहे गये हैं। पुराणों में विष्णु और सरस्वती. सत्व प्रधान,

---

न रमते स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्री पुमांसौ सपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्"

ब्रह्मा और लक्ष्मी रजः प्रधान कहे गये हैं। सच बात यह है कि तीनों ही गुण सत्व, रज तम सर्वथा अपृथक-कार्य हैं। ये साथ ही रहते हैं, कोई अधिक हो, कोई कम, यह बात जुदा है किन्तु तीनों एक दूसरे या तीसरे से अलग किये ही नहीं जा सकते। हम उपर्युक्त इन्हीं कारणों से जर्मन विशेषज्ञ के इस मत को कि स्त्री "तामस" है सर्वथा गलत समझते हैं। केवल इतनी ही है कि पुरुष शरीर में शक्ति के वेग की गति की मात्रा नीचे से ऊपर जाती है और स्त्री में ठहराव की मात्रा अधिक है, क्योंकि उसमें शक्ति के वेग की गति ऊपर से नीचे आती है, साथ ही स्त्री मे इच्छा (Emotion) की मात्रा अधिक है। "इच्छा शक्ति रूपा कुमारी" यह प्राचीन आचार्यों का कथन भी है। जर्मन विशेषज्ञ का कहना यह भी है कि ससार सुख का स्थल नहीं हो सकता और मानव-समाज तब तक सुखी नहीं हो सकता जब तक "तामस" [स्त्री] स्वतन्त्र न हो, उसको पूर्ण विकास प्राप्त करने के लिए पूरा पूरा अवसर न मिले, जब तक तामस [स्त्री] राजस [पुरुष] को घसीट कर फिर उसी केन्द्र पर न ले जाय जहाँ से रज और तम का प्रादुर्भाव हुआ था और जब तक कि राजस [पुरुष] और तामस [स्त्री] सत्व [पवित्रता] के आधार पर, उसके प्रतिविम्ब स्वरूप, अपने अपने ही नहीं वरन् परस्पर के पूर्ण विकास में सहायता पहुँचाने को पूर्ण रूप से स्वतत्र न हो जायँ।

हम जर्मन-विशेषज्ञ की उपर्युक्त बातों का पूर्णरूप से समर्थन करते हैं। मानवसमाज को सुखी और ससार को स्वर्ग का एक टुकड़ा बना देने के लिए हमारी समझ मे यह नितान्त रूप से आवश्यक है कि स्त्री और पुरुष दोनों अपने विकास के लिए पूर्ण स्वतन्त्र हों और दोनों का सम्बन्ध, रज, तम अर्थात् वासना की तृप्ति, निश्चेष्टता और पतिदेवता है (Too much Spiritualism) की भावना पर स्थित न होकर रज और तम के समुचित विकास के लिए "सत्व" और मानवी-स्वत्व, पवित्रता और पूर्ण स्वतत्रता के आधार पर अवलम्बित

हो। दोनों एक दूसरे को जानें, दोनों का सम्बध शरीरों के साथ ही साथ आत्माओं का भी हो और दोनों कम से कम अपने दोनों के ससार में अधिकतर अश में, "मैं और तुम" की स ज्ञा को भूल कर एक जान दो कालिब हो जायॅ—वैवाहिक सम्बध को सुखमय बनाने का हमारी समझ मे मूल मन्त्र यही है, क्योंकि हमारा विश्वास है कि जब तक पुरुप और स्त्री दोनों ही (Gross desires) निकृष्ट वासनाओं से मुक्त और परिष्कृत हो अनन्त के नाभि कमल से "ब्रह्म" की भाँति "सत्व" के रूप में प्रकट नहीं होते स्त्री-पुरुप का सम्बध सुखकर नहीं हो सकता और ससार सुख का स्थल नहीं होगा।

प्रस्तावना क्या यह भी एक छोटी सी पुस्तिका हो गयी और इस लिए पुस्तक के सम्बंध में इतना ही कह कर हम इसे समाप्त करते हैं कि पुस्तक मे नाम सब कल्पित हैं और भाषा और भाव में भी आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन किया गया है क्योंकि "मनोरमा" ने पत्र सब अङ्गरेज़ी में लिखे थे।

पुस्तक के सम्बंध मे एक ही बात हम और कह देना चाहते हैं और वह यह है कि यह पुस्तक कदाचित अभी कुछ दिनों और भी ससार के सामने न आ सकती यदि हमारे स्नेही मित्र, जयपुर निवासी श्री० कुॅवर शिवनाथ सिह जी ने इसके मुद्रण करा देने का भार अपने ऊपर न ले लिया होता।

पुस्तक तैयार कर देना सहज था किन्तु इसका सर्वश्रेष्ठ रूप में प्रकाशन हमारे लिए कठिन था। पुस्तकें हम लिख रहे हैं, इस बात का पता चलते ही, कुॅवर साहब ने अपनी सहज उदारता से, उनको मुद्रण कराने का भार अपने ऊपर लेने के सम्बध मे हम को लिखा। "अन्धा क्या चाहे दो आखें", हम को और चाहिए ही क्या था? हम ने सहर्ष कृतज्ञता-पूर्वक कुॅवर साहब के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। कुॅवर साहब की कृपा से ही इस तरह से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है, इसलिए अगर इससे देश के नव-पतियों और नव नारियोंको

कुछ लाभ हो तो उसका श्रेय हमारे मित्र को ही है और उसके लिए धन्यवाद के पात्र भी वे ही हैं।

अन्त में इतना ही कहना और रह गया है कि "वैवाहिक निवन्धावली" का पाँचवाँ पुष्प "कामनी के पत्र" शीघ्र ही प्रकाशित होगा। "कामिनी" के पति और "कामिनी" में विवाह के एक दो वर्ष बाद ही वैमनस्य हो गया था। एक घर में रहते हुए भी वह पराये हो गये थे और एक दूसरे से वोलते नहीं थे। पति जी एक दूसरी स्त्री के प्रेम में पागल हो उसके दास हो गये थे। "कामिनी" पर उस दूसरी स्त्री का पति जो उससे अलग हो गया था, जान देता था, वह भी कामिनी के पति को विदित हो गया था। कामिनी पवित्र थी, अपने पति से ही वह प्रेम करती थी। गर्भवती दशा में उसने सोचा कि कदाचित उसकी मृत्यु हो जाय। इस भावना से और कदाचित अपनी आत्मा की तुष्टि के लिए उसने अपने पति के नाम दस पत्र लिखे थे। ये पत्र एक दिन दैवी घटना से जिस समय कि "कामिनी" सूतिकागृह में थी, पतिदेव के हाथ लग गये। उन्होंने उनको पढ़ा, उसी समय दूसरी स्त्री से वह अलग हो गये और फिर कामिनी और उसके पति "जड़ और जीव" की भाँति एक होकर सुखी हो गये। उपर्युक्त दस पत्रों का ही "कामिनी के पत्र" में संग्रह है। हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़ कर पति और पत्नी अपने वैवाहिक जीवन को साधारण रूप में सुखमय बना सकते हैं।

पद्म-बाग जसरा,
७-४-२७

कृष्णकान्त मालवीय

प्रेमोपहार

श्रीयुत

}

समर्पण

चि० पद्मकान्त मालवीय

"That whereby the man attains to manhood is woman. It is his power to recognise, appreciate and appropriate her that stamps him physically man......On no plane of being is it good that the Man element be alone, for without Love, Force can but work evil until it be spent.

—"THE PERFECT WAY."

बच्चा,

संसार सुख का स्थल नहीं, यह कर्मक्षेत्र, भोग-भूमि और मानव-परीक्षा का स्थल है। फिर भी संसार में दो स्वर्गीय, सर्व-श्रेष्ठ सुख हैं। पहिला सुख है ईश्वरोपसना, ब्रह्मानन्द तथा ईश्वर के प्राणियों की सेवा। सच्चे हृदय की, सच्ची, व्यापारी नहीं- सार्वजनिक-सेवा में कभी कभी जो आनन्द मिल जाया करता है उसकी तुलना इस संसार के या कल्पित स्वर्ग के किसी दूसरे आनन्द से नहीं की जा सकती। हमारी समझ में मानव-समाज की सच्ची सेवा, सर्व-श्रेष्ठ ईश्वरोपासना है, साथ ही ईश्वर के सानिध्य और सामीक्ष्य का सब से श्रेष्ठ, और सरल साधन भी। तुमको याद होगा एक जमाने में हमने लिखा था—

"वेदो इंजील और कोरॉ से खुदा मिलता नहीं।
उसके बन्दों ही की खिदमत सब से अच्छा काम है॥"

ईश्वरोपासना तथा मानव-समाज-सेवा की कोटि और उसी कक्षा का होते हुए भी, उससे कुछ ही कम आनन्ददायक

दूसरा सुख संसार में सुन्दर, सुयोग्य सहधर्मिणी का प्रेम, संयोग और सहयोग है।

हमने उपर्युक्त दोनों आनन्दों को एक ही कक्षा और कोटि का कहा है। प्राचीन आचार्यों में से भी एक ने स्त्री के सुख को ब्रह्मानन्द-सहोदर के नाम से पुकारा है। कोक्कव अथवा कोक ने भी कहा है:—

"तत् सौख्यं परं तत्त्ववेदन महानन्दोपमं......"

मुसलमान कवियों ने बहुत दिन हुए यह कह कर कि "इश्क मजाज़ी से ही इश्क हक़ीक़ी भी होता है" दोनों की अभिन्नता को प्रकट कर दिया था। एक अङ्गरेज लेखक ने भी अब लिखा है:—

*"परोपकारी और मानव समाज की सेवा करने वाला मनुष्य, मनुष्य जाति का स्नेही है और यह सहानुभूति, स्नेह या प्रेम का उच्चतम रूप है।"

संसार में नजर फेंक कर देखो। जहाँ कहीं जो देश का त्राता, मानव-समाज का हितकर्ता, तुमको दिखाई देगा; उसकी तह में एक स्त्री और बच्चों के प्रेम में मग्न एक व्यक्ति के रूप का भी तुम को दर्शन होगा।

मानव-समाज का यह अभाग्य है कि पशु से ऊपर न उठ सकने के कारण प्रेम के स्वर्गीय-आनन्द को अनुभव करना और उसे थाती की तरह, जान के साथ, जुगह कर संरक्षित रखना उसने बहुत कम जाना है। जान स्टुअर्ट मिल ने लिखा

*"The benevolent and philanthropic personal is a lover of mankind and this form of sympathy is known as the sublimation of the erotic or love instinct"

है—† "संसार में प्रेम के सिवा कोई भी तथ्य वस्तु है ही नहीं"। हेवलाक इलिस का कहना है—‡ "संसार की तथ्य वस्तुओं में प्रेम ही सब से अधिक तथ्य वस्तु है।" किन्तु जैसा हमने ऊपर कहा है यह मानव-समाज का अभाग्य है कि उसने एक सुयोग्य सहधर्मिणी, रमणी के प्रेम, सहयोग और संयोग के सुख को बहुत कम जाना है।

फल स्वरूप, वैवाहिक-जीवन इस विज्ञान, विद्या और कला के युग में भी, स्वर्गीय सुख का नहीं वरन संसार की झंझटों, चिन्ताओं तथा नाकामियों, आनन्द तथा उत्साह-हीन उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों और निरन्तर हाय हाय का केन्द्र हो राहा है।

इसके लिए अधिकतर दोषी हम ही लोग है। एक चतुर नायक और नायिका, पति और पत्नी, अगर उनमें बुद्धि विवेक और संयम हो संसार के समस्त अभावों के रहते हुए भी अपने जीवन को इतना आनन्दमय और सुखी बना सकते हैं कि वे इसी दुःखमय संसार को स्वर्ग का एक टुकड़ा बना लें और कवि की इस उक्ति

"टूट खाट घर टपकत टटियौ टूट
पियवा के बाह उसिसवाँ सुख कै लूट"

को अक्षरशः सत्य सिद्ध कर दें।

हम धनी नहीं कि तुम लोगों के लिए बँगले बनवा देते, जमींदारी या जायदादें खरीद देते या तुम लोगों के लिए संसार के अभावों को दूर कर देते। हम यदि यह सब कर भी सकते तो इससे ही तुम्हारा वैवाहिक-जीवन सुखी हो जाता यह संभव भी नहीं था। हमने इसी लिए तुम्हारे लिए यह पुस्तक तैयार कर दी है।

---

†"There is nothing arel in the world but love"

‡"It is the most solid of realities".

इस पुस्तक में सहस्रों अत्यावश्यक बातें, जिनका ज्ञान किसी भी विवाहित पुरुष या स्त्री को होना चाहिये, नहीं हैं, फिर भी इसमें वे सब बातें सूत्र रूप में किसी न किसी अंश में मौजूद हैं जिनके सहारे कोई भी पति अपने वैवाहिक-जीवन को तनिक विवेक से सुखमय बना सकता है। एक वाक्य में सफल पति बनने का रहस्य वास्तव में इतना ही है कि पुरुष, पत्नी के जीवन के प्रत्येक रग और रेशे को, उसकी हस्ती के प्रत्येक तार को गुञ्जरित कर सके और उसमें से राग पैदा कर सके।

हम आशा करते हैं कि पुस्तक में लिखी हुई बातों को तुम ध्यान में रखोगे और अपनी शक्ति भर अपनी सहधर्मिणी के और अपने वैवाहिक-जीवन को अधिक से अधिक सुखी बनाने का प्रयत्न करोगे।

इन सब बातों के साथ ही साथ एक बात पर और ध्यान रखना। संसार में "भिन्न रुचिर्हि लोकः" के अनुसार मानव-जीवन की सफलता की जाँच के अनेक माप और कसौटियाँ हैं। हमारी राय में उन मापों और कसौटियों में, भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए एक माप या कसौटी और जोड़ देनी चाहिए। हमारा कहना यह है कि संसार के समस्त और कठिन से कठिन, उच्च से उच्च श्रेणी के कामों को करते हुए जो स्त्री और पुरुष अपनी युवावस्था को बनाये ही नहीं, कायम रख सकें उनको ही सफल स्त्री तथा पुरुष समझना चाहिए। स्त्री के लिए वाराङ्गना (वाला+अङ्गना) शब्द के प्रयोग का अर्थ ही यही है। इसकी विधियाँ अनेक हैं किन्तु सब का रहस्य इतना ही है कि व्यायाम नित्य नियम से किया जाय, मस्तिष्क पवित्र विचारों से सदा परिपूर्ण रखा जाय, मास में दो चार दिन नमक न खाया जाय, साथ ही खटाई, मिर्चा, कम से कम खाया जाय। नमक न खाने या कम से कम खाने के माहात्म्य को लोग

भूल गये हैं किन्तु उनको यह ध्यान में रखना चाहिए कि वात्स्यायन, आश्वलायन, गोभिल सभी आचार्यों ने गर्भाधान की विधि में यह आज्ञा प्रचारित की है कि गर्भाधान की कामना रखने वाला पुरुष उस दिन नमक न खाय। बिना किसी तत्व के ऐसी आज्ञा नहीं दी गई यह तुम समझ ही सकते हो। ऊपर से नमक* खाना, खड़ा या पीसा किसी चीज़ के साथ तो बहुत ही हानिकर होता है। सब से अच्छी बात यह है कि पुरुष प्रत्येक सप्ताह में दो एक दिन ताज़े फलों, दुग्ध, भीगा चना, गेहूं, गुड़-धनिया आदि खाकर ही सन्तोष किया करे। युवावस्था को अमर बनाये रखने का सर्वश्रेष्ठ उपाय यह है कि मनसा, वाचा, कर्मणा पुरुष पवित्र और प्रसन्न रहे। पवित्र-विचारा† ही संसार की समस्त पवित्रता के जनक हैं।

तुम से एक बात और कह देना चाहता हूं। "मनः शुद्धि, शरीर शुद्धिः, एकाग्र बुद्धिः, पातिव्रत, पत्नीव्रत, ज्ञानं, शौर्य सर्वं ब्रह्मचर्ये प्रतिष्ठितम्" मनोरमा ने इस बात को अनेकों भांति से अपने पत्रों में समझाया भी है। तुम भार्याव्रती होना और एक पत्नी-व्रत को ही सदा धारण करना। पुरुष सदियों से अपने कुकर्मों, अपने अन्याय, युगों की प्रभुता और स्त्री को बराबर वाली के पद से गिरा कर दास बना देने से, (Polygamous instinct) हरजाई प्रकृति का हो गया है। साथ ही आत्मा-

---

*सेंधा नमक दूसरों से अच्छा है।

†"The action is the desire condensed, the desire is the mind and the mind is the man". You must know that mind guides, mind gives life and therefore mind is above all the important thing and you cannot indulge in the vile intercourse of the mind without hurting your body".

विहीन प्रेम करने लगने और प्रेम तथा काम-वासना की तृप्ति को जीवन की हजारों ही अन्य घटनाओं के समान ही एक साधारण घटना समझ लेने के कारण पुरुष अपनी उच्च साधु प्रकृति से गिर गया है। तुम को इस लिए सचेत और सावधान रहना होगा। तुम्हारे मार्ग में अनेकों प्रलोभन उपस्थित होंगे। एक से एक सुन्दर कोमलांगियों के हाथ तुमको ऊपर उठाने के लिए सामने उपस्थित होंगे, किन्तु मेरी इस बात को सदा याद रखना कि आवेंगे यह सब तुमको ऊपर उठाने के लिए किन्तु इनमें से एक भी तुमको ऊँचा नहीं उठायेगा, ये सब तुम को नीचे ही ले जायंगे और रसातल की ओर ही ढकेलेंगे।

तुम यह भी सदा ध्यान में रखना कि पुरुषों ही के समान, संसार में अनेक, निस्सन्देह ही कम संख्या में, अक्सर स्त्रियाँ भी हरजाई प्रकृति की होती हैं, फर्क दोनों में इतना ही होता है कि पुरुष अधिकतर शरीर से और स्त्रियाँ अधिकतर मस्तिष्क से व्यभिचार करती हैं किन्तु ये पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही असाधारण (abnormal) होती हैं। यह भी ध्यान में रखना कि ये सब स्त्रियाँ सड़कों पर ही नहीं होतीं। ये अक्सर समाज में भी पाई जाती हैं, यद्यपि हमारे देश में उच्चकोटि की वेश्याओं* के समूह के अस्तित्व के कारण, समाज के भीतर इनकी आवश्यकता न थी, और इसी लिए इनकी संख्या समाज में एकदम

---

*पुरुष स्वभाव से ही शिकारी और हरजाई प्रकृति का हो गया है, और इस लिए जब तक उसकी प्रकृति का सुधार नहीं होता, यदि वेश्याओं के जगल से वह दूर रहा तो वह समाज में ही शिकार खेलेगा, और समाज में ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वाराङ्गनाओं को उत्पन्न करेगा। कृ० का० मा०

कम है। रति की, काम वासना की, जीती जागती मूर्तियाँ और कलाएं दोनों ही हैं किन्तु विद्वत्ता, श्रेष्टता आदि को छोड़, दोनों मे फर्क इतना ही है कि समाज की मूर्तियाँ छिप कर, और बाजारू खुल कर सब बातें करती हैं, दूसरा अन्तर एक यह भी है कि बाजारू शरीर और जड़ की पिपासा को अधिक जागृति और शान्त करती हैं, समाज वाली आत्मा, हृदय और मस्तिष्क की तुष्टि को प्रधानता देती हैं, जिसका कारण अवसरों का अभाव भी कहा जा सकता है। तीसरा फर्क दोनों में यह है कि बाजारू रति की मूर्तियों से बच जाना संभव है, उनकी नीचता, स्वार्थ-परता, उनकी प्रकृति, उनकी जलालत, उनका समाज मे हेय होना, उनका स्वयम् बाजारू होना, उनका संसर्ग ही हेय होना, अपनी मर्यादा, अपना आत्म-सम्मान, पुत्र, कलत्र, गृहस्थी, अपना उत्तरदायित्व यह सब उनसे उबरने में सहायक हो जाते हैं किन्तु समाज की मूर्तियों से बच सकना सहज संभव नहीं, इनका अधिकार ही दूसरा होता है, दूसरे इनसे मिलने जुलने, साथ घूमने फिरने में कोई रुकावट हो भी नहीं सकती। समाज में इन स्त्रियों का दमन और इनका संसर्ग त्याग बहुत ही जरूरी है और यह ऐसी बात है जिसके लिए प्रत्येक सद्‌गृहस्थ पुरुष और स्त्री को प्रयत्न करना चाहिए, किसी स्वार्थ से नहीं वरन् मानव-समाज और विशेष कर सती स्त्रियों के समाज और उनकी जाति की रक्षा के लिए, क्योंकि संसार भर में सती स्त्रियों का इनसे बड़ा कोई शत्रु नहीं।

हम इन गरीबों को दोष नहीं देते, ये गरीब भी पुरुष की ही कृपा हैं। पुरुष को काबू मे रखने के लिए ही इन लोगों ने

और वेश्याओं ने भी इसी विषय में अनेक जन्मों मे प्रवीणता लाभ की और अब वह उसी प्रवीणता की शिकार होकर रह गई हैं। पुरुष ने ही इनको इनके पवित्र मंच से नीचे गिराया है इसके कहने की हम ज़रूरत नहीं समझते, किन्तु विचित्रता यह हुई है कि पुरुष मारता खाता, इन पर विजय प्राप्त करते ही, नूतनता के पर्दे के हटते ही, या एक वार रसास्वादन करते ही तथा कभी कभी केवल विजय मात्र से ही सन्तुष्ट हो नर की नैसर्गिक नीचता को प्रकट कर इनको त्याग देता है और यह अपनी ही वासनाओ और कामनाओ की शिकार किसी तरह मरखी जीती जीवन यापन करती हैं।

स्त्रियाँ प्रेम करती हैं या घृणा* इस लिए पुरुप से त्यागी जाने पर केवल नर से अपना बदला चुकाने और कभी कभी अपने पेट की ज्वाला की शान्ति के लिए ये दूसरे नरों को, सत्यानाश मे मिलाने की फिक्र में चूर रहती हैं और पतङ्गों की भांति नर इनके पास इनकी बदले की प्रवृत्ति की दाहाग्नि में

---

* कामयन्ते विरज्यन्ते रञ्जयन्ति त्यजन्ति च
कर्षयन्त्योऽपि सर्वार्थञ्जायन्ते नैवयोपितः"

•Sometimes they love The next time they hate and again become attached and then again leaye their lovers. (वात्स्यायन)

कुछ लोगों का कहना यह भी है कि जिस तरह से पुरुष के साथ उसके मार्ग भ्रष्ट होने पर रियायत की जाती है, समाज न उसे दण्ड देता है, न वह घृणा की दृष्टि से देखा जाता है यदि स्त्री के साथ उतनी नहीं उससे कम भी रियायत की जाय और उसकी भूलें माफ़ कर दी जाँय तो कुछ दिनों मे वेश्याओं की संख्या कम हो जावगी।

कु० का० मा०

भस्म होते रहते हैं। यह मत समझना कि इनके हृदय नहीं होता, या अपनी हीन दशा पर यह विचार नहीं करतीं और अपने प्रति इनको ही घृणा नहीं होती। इनको छोड़कर जो इस कहावत को चरितार्थ करती हैं कि "नीम के कीड़े को नीम ही मीठी लगती है" वास्तव में जितनी घृणा ये अपने प्रति अनुभव करती हैं, पुरुष इनके प्रति अनुभव ही नहीं कर सकते, किन्तु ये जानती हैं कि ये घृण्य हैं, हेय हैं, समाज में इनको स्थान नहीं और इसी लिए ऊपर उठने का ये साहस नहीं करतीं। हेय समझा जाना ही क्या कम है ऊपर से घृण्य और तिरस्कृत होना तो इनकी हत्या ही कर देना है।

एक रहस्य और भी तुमको बतला देते हैं। ये सब स्त्रियाँ, समाज वाली और सड़क वाली भी रति की, वासना की, काम-वासना की जीती जागती कलाएँ और मूर्तियाँ होती हैं। ये अपनी सहधर्मिणी, पत्नी और प्रेमवल्लभा और प्रेम की एकमात्र अधिकारिणी से कहीं अधिक आकर्षक, मनहर, लुभावने वाली प्रतीत होती हैं। कमजोरी के समय, काम के वशीभूत और कामनाओं के शिकार होने के काल में यह स्वर्गीय दिखाई देती हैं, इनके सामने पत्नी की तो संज्ञा ही क्या संसार और समस्त ब्रह्माण्ड हेच, हेय और नगण्य प्रतीत होता है। इनको छूने का तो कहना ही क्या है, इनके पास उठने बैठने, इनकी सेवकाई करने, जहाँ पर यह हों उस भूमि पर खड़े होने और उस भूमि के वायु को श्वास द्वारा हृदय में भरने में भी स्वर्ग का ही आनन्द मिलता है। कभी कभी यह मालूम होता है कि ये ही जीवन की श्वास हैं और इनसे विलग होते ही प्राणवायु निकल जायगा किन्तु यह सब अपने ही मस्तिष्क की कमजोरी तथा अपने ही हृदय और मस्तिष्क का विकार होता है, यह सब अपने ही विकर्मों की माया होती है और वास्तव में एक सती गृहिणी से बढ़ कर इनके पास कुछ भी नहीं होता।

ये रति और कामना की मूर्ति दिखाई देती हैं क्यों कि जीवन के इसी विभाग को यह विशेष रूप से जानती होती हैं और इसी में यह विशेषता प्राप्त किये हुए होती हैं। दिन रात इसी की चिन्ता और इसी की लगन इनको होती है और स्वभावत. इस तरह से जीवन के इस विभाग में यह प्रवीणता-लाभ कर लेती हैं! इसके सिवाय इनका सब से जबर्दस्त आकर्षण, इनका पराई वस्तु होना, स्वतंत्र होना, स्वाधीन होना और पत्नी की समान अपनी सम्पत्ति न होना होता है। इसके विपरीत एक गृहिणी अपनी दासी और सम्पत्ति होती है और इस लिए "घर की मुर्गी टके बराबर"। किन्तु यदि इस विभाग में रति की मूर्तियों की अपेक्षा पत्नी १६, २० ही हो और २१ न हो तब भी जीवन के अनेक अन्य विभागों में पत्नी वाराङ्गनाओं से कहीं बढ़ी हुई होती है। यही नहीं, यदि पत्नी. कम से कम अपने सम्बन्ध की बातों में स्वतंत्र और मालकिन मान ली जाय, यदि पत्नी भी बराबर वाली मान ली जाय, यदि उसकी अप्रसन्नता का भी उसी प्रकार भय हो, यदि उसकी प्रसन्नता की भी हमको उतनी ही फिक्र हो, यदि पति की इच्छा मात्र ही नहीं पत्नी की इच्छा और मंजूरी सहवास के लिए जरूरी मान ली जाय, यदि पत्नी को मना कर, प्रसन्न कर, उससे वर स्वरूप, रति सुख प्राप्त किया जाय तो पत्नी भी वैसी ही सुखदायिनी होगी जैसी कि स्वयम् रति या रति की मूर्तियाँ। सब से बड़ा और महत्त्व का फर्क इन रति की मूर्तियों और गृहिणी में यह होता है कि काम-वासना की मूर्तियाँ पुरुष की कुत्सित प्रवृत्तियों को ही जागृत करती हैं, उसे नर्क ही की ओर ले जाती हैं और पुरुष भी अपने हृदय के नर्क को ले इनके निकट जाते हैं. मस्त शांत रहते हैं और खुश रहते हैं। उनकी दशा होती है "—है कोसत लेकिन उस पै ममसरूर हो रहे है" वे देखते ही नहीं या देख कर भी अन्धे होते हैं क्योंकि उनकी विश्लेषण की

शक्ति भस्म हो चुकी होती है। वह समझते रहते हैं कि उनमे नया जीवन आ रहा है, नई स्फूर्ति उनके शरीर मे प्रवेश कर रही है, नई ज्योति का प्रकाश हृदय मे हो रहा है किन्तु वास्तव मे होता यह रहता है कि उनकी ही कामवासना और कामाग्नि के जोरों से प्रज्वलित हो उठने से, काम की दीप-शिखा उनके जीवन के तैल को जोरों से दोनों छोर से भस्म करती रहती है और इसी के ताप को वह स्फूर्ति और इसी के प्रकाश को वह नूतन ज्योति और नवजीवन का संचार समझते रहते है। इसके विपरीत एक गृहिणी पुरुष की कुत्सित प्रवृत्तियों का नहीं जागृत करती, वह उसके हृदय के नर्क को प्रज्वलित नहीं करती, वह उसके पवित्र भावों को ही जगाती है और पुरुष को नर्क की ओर न ले जाकर, खुद साथ जाकर, जीवित अवस्था का तो कहना ही क्या, मरने पर भी स्वर्ग के द्वार तक पहुंचा आती है।

कामुकता के काल मे एक तमाशा और होता है। जितना अधिक वासना की दाहाग्नि जोर पकड़ती है, कामाग्नि जैसे जैसे पुरुष को भस्म करती है, पुरुष अपनी गृहिणी से उतना ही दूर भागता है, वह उसे घृणा की दृष्टि से देखता है और तनिक तनिक सी बात मे वह उस पर क्रोध प्रकट करता है और कभी कभी उस पर हाथ भी चला देता है। जिस तरह से अन्धकार प्रकाश से भागता है ठीक उसी तरह से कामवासना की अग्नि मे झुलसता हुआ कुत्सित कामनाओं से काला, पति अपनी पत्नी से भागता है। बात यह होती है कि वह (Abnormal state) असाधारण स्थिति और दशा मे उस समय होता है। काम की दीप शिखा के प्रज्वलित होने से उसके शरीर का स्वाभाविक तेज, उसके शरीर की स्वाभाविक गर्मी, जीवन का तैल, सहज तृप्ति, भस्म होती रहती है और इस कमी की पूर्ति के लिए उसे हर घडी अधिक और उससे भी अधिक, अग्नि, ताप और वासना

की तृप्ति की जरूरत होती रहती है। पत्नी बिलकुल इसके विपरीत होती है, वह शान्ति और ठंडक पहुंचाती है। पुरुष चाहता है जलना. मिलती है उसे ठंडक, वह चाहता है अशान्ति-मय शान्ति. जीवन रहित निश्चेष्टता और मोह मिलती है उसे निर्मल निर्वाणमय शान्ति और चेतनता और इसी लिए पत्नी से वह भागता है और उस पर उसे क्रोध भी आता है।

पुरुष स्वभाव से ही कायर और गुंडा (Bully) होता है। अपने पापपुंज के कारण पवित्रता, शान्ति और निर्मलता की ज्योति अपनी गृहिणी से वह भागता है. उसके पाप ही उसे कायर बना देते हैं, किन्तु गुंडा (Bully) होने के कारण अपनी कायरता को अपने पापों को छिपाने के लिए उसे क्रोध के रूप में वह अबला गृहिणी पर प्रकट करता है और अपना पाप छिपाने के लिए पत्नी पर सूता अपना रोब रखना चाहता है, साथ ही अपने पापों का दोष भी अपने ऊपर न लेकर वह पत्नी ही के माथे रखना चाहता है। यह भी ध्यान में रहे कि क्रोध वीरता का नहीं कायरता का चिन्ह है। स्त्री अपने सहज ज्ञान से यह सब समझती रहती है। देवी होने के कारण कुछ दिनों वह क्षमा भी करती रहती है, कुछ सह बिना ही करती रहती है, "आँखें खोलो, देखो और समझलो" किन्तु कुछ दिनों बाद वह भी पति-देव से प्रेम न कर, उनको घृणा की दृष्टि से न देखे तो भी उनसे दूर हो जाती है क्योंकि स्त्री के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा तीनों से ही उसकी वासनाओं का सम्बन्ध होता है और वह या तो प्रेम कर सकती है या घृणा। "नान्यः पन्था विद्यते यनाय।" इस तरह से पति का गार्हस्थ्य जीवन मटिया-मेट हो जाता है और जब पुरुष की आँख खुलती है तो उसे दिखाई देता है कि लक्ष्मी विलीन हो गयी, गृह लक्ष्मी लोप हो गयी, उसकी जीवन नौका "लतापत्तादिकश्चैव वर्तते

तरणौ मम" के ही समान है और वह हाहाकार कर चीख पड़ता है।

गृहिणी की श्रेष्ठता का एक और रहस्य बतलाये देते हैं। कामवासना की तृप्ति हो जाने पर या अशक्त हो जाने पर या वह समय आ जाने पर जब वह वासना को जागृत नहीं कर सकती एक रति की मूर्ति (Flirt) या बाज़ारू स्त्री मे कुछ शेष नहीं रह जाता, पुरुष को शेष में कुछ मिलता भी नहीं और दोनो को एक दूसरे से बाँध रखने की कोई चीज़ रह नहीं जाती। (Flesh cannot live on flesh) जड़, जड़ के आधार पर जीवित ही नहीं रह सकता। इसके विपरीत इस अवस्था के पहुँचने तक एक गृहिणी के पास आकर्पण और बन्धन एक नहीं सहस्रों तैयार हो जाते हैं।

रति की मूर्तियो और सतियो मे एक बड़ा फर्क यह भी है कि रति की मूर्तियो के सहवास से तुष्टि नहीं प्राप्त होती. अतृप्ति ही बनी रहती है। शराब की प्यास की भाँति, पीते जाओ, पीते जाओ, तृप्ति नहीं होती, पुरुष अशक्त हो भले ही ज़मीन पर गिर जाय। इसके सिवाय कितनी ही अच्छी, सुख देने वाली यह क्यो न हों, पुरुप कामान्धता और अपनी इस प्रकृति के कारण कि वह प्रस्तुत वर्तमान (Immediate present) मे सब भूल कर अपने को लय कर देता है, कुछ घड़ियो मोह मे पड़ा रहे किन्तु बाकी अवसरो मे तनिक होश होते ही अपने हृदय, मस्तिष्क और शरीर पर भी एक विचित्र प्रकार के बोझ की भावना सदा बनी रहती है, उनका सुख भी उनका अहसान प्रतीत होता है, और अन्तर वाल बराबर का ही क्यो न हो, दो भिन्न आत्माओ व्यक्तित्वों और स्वार्थों के अस्तित्व का अन्तर सदा दिखाई देता रहता है। इसके विपरीत, पवित्र गृहिणी से तृप्ति और तुष्टि ही प्राप्त

हो सकती है, उससे "एक जान दो कालिब" का भी सहज आनन्द मिल सकता है, शर्त यही है कि वह सखी और सहचरी हो, दासी नहीं, उसके साथ प्रेमिका सा ही व्यवहार होता हो और उसमें बुद्धि और विवेक हो।

स्त्रियों की एक और विशेषता तुमको बतला देते हैं। पुरुष पत्नी से दो हजार मील पर बैठा हुआ मार्ग से भ्रष्ट हो पत्नी को मालूम हो जाता है। कैसे? हम कह नहीं सकते। उनके दैवी, आदि शक्ति होने से या केवल उनके (Institution) सहज-ज्ञान से यह कौन जाने? किन्तु पुरुष के सामने उपस्थित होते ही वह समझ लेती है कि दाल में कुछ काला है, इसमें सन्देह नहीं। इस के विपरीत पत्नी अगर मार्ग से विचलित हो जाय तो पति को सहसा नहीं मालूम होगा या उसी तरह से नहीं मालूम होगा। इस लिए पति का यह समझना कि पत्नी को न मालूम होगा केवल मूर्खता है। पत्नी किसी न किसी तरह जान ही जाती है, और तब पति के जीवन से, बिना कुछ कहे सुने, अपने जीवन को, कच्छप के पैरों की भांति वह सिकोड़ने लगती है और कुछ दिनों बाद उनके जीवन की धारा के विभिन्न पथगामिनी होते ही दोनों का वैवाहिक-जीवन क्षार हो जाता है और फिर सुख स्वप्न में भी नहीं दिखाई देता। एक मनस्विनी स्त्री आँख की भी शरम के पर्दा होते ही पति के जीवन से उसी तरह से दूर भाग जाती है जैसे वृद्धावस्था के आते ही पुरुष के मस्तिष्क से बुद्धि की प्रखरता विदा हो जाती है।

एक बात और भी ध्यान में रखना। प्रेमी बिना प्रेमी के जीवन धारण ही नहीं कर सकता और इस लिए पत्नी को सदा अपने में अनुरक्त और अपनी प्रेमिका बनाये रहने के लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि पति भी सदा प्रेमी, नायक और आशिक

ही बना रहे । याद रहे *अग्नि का अस्तित्व विना धूम के हो सकता है किन्तु विना अग्नि के धुआँ हो नहीं सकता और इस लिए स्त्री का प्रेम चाहने वाले के लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि वह सदा अपने हृदय की पवित्र प्रेमाग्नि से अपनी पत्नी के शरीर और आत्मा को प्रदीप्त रखे ।

"रहीम" खानखाना की स्त्री के इस आदेश

"प्रेम प्रीति को विरवा चल्यौ लगाय,
सींचन की सुधि लीज्यौ मुरझि न जाय ।"

को इस लिए कभी मत विसराना ।

---

*नियतधर्म साहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः

(साख्य-दर्शन)

"we get a hint in the first chapter of Genesis that God conceived of man and woman as originally one being, as man—who held in one person all the male and female qualities, and as such was a perfect ideal of Human nature, that after-wards He divided this one Being into two persons, having similer passions, voliti-ons and appetites but differently conditioned by Sex, that each of these was the complement of the other and fitted to unite with one another, in order that by the mutual play of the divers, qualities of each on the other, the education of both might take place, and that when both through this mutual action on each other, become one, Human nature would be again, as it was at first, complete"

"Stopford Brooks"

(Theology of the English poets)

अन्त में तुमसे इतना ही कह देते हैं—

"धर्मार्थं जीवितं यस्य
सन्तानार्थं च मैथुनम् ।
अहोरात्रञ्च पुण्यार्थम् ॥
तन् देवाः ब्राह्मणं विदुः"

पद्म-बाग, जसरा
८-४-२७

तुम्हारा
बाबू जी

प्रियतमा को प्रसन्न रखने के उपाय

"जये धरित्र्या· पुरमेव सारम्, पुरे गृहं सद्मनि चैकदेशः।
तत्रापि शय्या शयने वरा स्त्री, रत्नोज्ज्वला राज्यसुखस्य सारः॥"
(वराहमिहिर)

मनोरमा-न्यास,
प्रयाग
३-१२-१६१३

प्यारे प्रेम,

तुम्हारा पत्र मिला। यह मालूम हुआ कि तुम्हारा विवाह होने वाला है, और शीघ्र ही तुम वैवाहिक-जीवन आरंभ करने जा रहे हो। मैंने तुम्हारे पत्र को बहुत ही धीरे धीरे फाड़ा और फिर एक मुस्कुराहट और आह के साथ उसे अग्नि में भस्म कर दिया। हँसी इसलिए आई क्योंकि मैं जानती हूं कि तुम कैसे हजरत हो और तुम्हारा शादी का इरादा मुझको एक अजीब लतीफा मालूम हुआ। आह उस पत्र के लिए थी जिसे मैं जलाना नहीं चाहती थी।

मेरा यह अनुभव है कि पत्र गन्ने के रस के समान ताजे ही मजेदार होते हैं और दूसरे दिन पढ़ने में वैसे ही स्वादरहित, फीके और कडुवे प्रतीत होने लगते हैं, किन्तु यह विपर्यान्तर है।

अच्छा, तो तुम विवाह करने जा रहे हो। मैं समझती हूं कि मुझे तुमको हृदयगत बधाई देनी चाहिये और फिर सांसारिक प्रथा के अनुसार यह जोड़ देना चाहिये कि अपनी प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए शब्द ढूंढ़े नहीं मिलते। मैं यह सब जरूर करती, किन्तु तुमसे और तुम्हारे पुरुष-संसार से मैं भले प्रकार परिचित हूं। मैं जानती हूं कि तुम मेरे इस प्रकार के कथन को वेद-वाक्य की तरह सत्य न समझते, साथ ही मेरी ऐसी बातों से तुम प्रसन्न भी न होते।

ईमानदारी से जो कुछ मैं कह सकती हूं और मैं अब इतनी वयस्का हो चुकी हूं कि अ-ईमानदारी, छल कपट से मुझ-को कोई प्रयोजन नहीं—यही है कि मैं आशा करती हूं कि तुम अपने वैवाहिक जीवन को पूर्णरूप से सफल बनाने की पूरी कोशिश करोगे, जिस प्रकार से साधारण पति-पत्नी प्रसन्न रहते हैं उस प्रकार से प्रसन्न रहोगे और अपने दफ्तर में कड़े से कड़ा परिश्रम प्रसन्नतापूर्वक इसलिए करोगे कि तुम अपनी पत्नी के आराम के लिए आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कर सको। अगर तुम उससे वास्तव मे प्रेम करते हो तो यह सब तुमको आनन्द-दायी होगा किन्तु यदि तुम प्रेम नहीं करते या तुम्हारा प्रेम केवल दो दिन का जोश है, तो यह सब तुम्हारे लिए आजन्म कालेपानी के समान होगा।

ऐसी प्रसन्नता की बात कि उसको प्रकट करने के लिए शब्द कोष में ढूंढ़े नही मिलते, तुमही समझो मेरे लिए कैसे सम्भव है। कभी कोई स्त्री इस पर प्रसन्न हुई है कि वह व्यक्ति जिससे वह प्रेम करती थी दूसरी स्त्री की सम्पत्ति हो गया, चाहे उसने स्वयं ही उससे विवाह क्यों न किया हो जिसका इशारा तुमने भी किया है।

किन्तु, प्रेम ! अगर स्त्रियोचित तनिक अभिमान के लिए मुझे क्षमा करो तो मैं तुमसे यह कहना चाहती हूं कि यह तुम्हारी नई प्रियतमा मेरे ही कठिन परिश्रम के सुफलों का रसास्वादन करेगी और मैंने जो बड़े परिश्रम से बोया था उसी को काट कर अपना जीवन सुख से वहन करेगी। मैंने ही तुमको, जो तुम आज हो, कामिल, परिपूर्ण, निपुण, प्रवीण, व्यमत्युन्नपुरुष बनाया है और मैं आशा करती हूं कि तुम्हारी प्रियतमा तुम्हारे उपयुक्त होगी।

प्रेम ! उस दिन की याद है जिस दिन पहिले पहल तुम मेरे पास आये थे ? एक मेरे मित्र ने, जो तुम्हारे भी मित्र थे, हमारा तुम्हारा प्रथम परिचय कराया था। तुम मेरे पास पहुँचने पर हक्का बक्का से रह गये थे। तुम बातें करना चाहते थे, किन्तु तुम बातें कर नहीं सकते थे। तुम्हारी समझ में यहा ंहीं आता था कि क्या कहें और किन शब्दों में कहें। जितनी देर तुम बैठे रहे, तुम्हारी निगाह ज़मीन पर थी या अपने मित्र की ओर। इसके बाद भी वर्षों, जब कभी तुम मेरे पास आते, तुम अधिकतर नीरव ही रहते थे, मुझको ही तुम से बातें करनी पड़ती थीं, किन्तु तुम आज और अब क्या हो ? यह किसकी कृति है ?

बुरा न मानना, जिस समय प्रथम प्रथम मेरी निगाह तुम पर पड़ी थी तुम एक अनगढ़ पत्थर थे। चतुर चितेरे शिल्पकार की भाँति मैंने उसमें काट छाँट कर और उसे गढ़ कर एक सुन्दर सदा मन्द मुस्क्यान वाले, बोलते हुये मनुष्य की मूर्ति उसमें से पैदा करदी। इस परिकृता को पैदा करने में क्या तुम समझते हो मुझको कठिन से कठिन परिश्रम नहीं करना पड़ा था ? अब अगर तुम अपनी प्रियतमा के आने पर, द्वार जाकर खोल दिया करोगे, अगर उसके खड़े होने पर उससे खड़े होकर और टहल टहल कर ही बातें करोगे, उसके श्रमित होने पर अगर उसको कोच पर बैठा कर उसके श्रीचरणों के नीचे कुशन तकिये रखदिया

करोगे, केवल मीठी मीठी बातें कर, उसे हँसा कर उसके श्रम को हर लिया करोगे तो इन सब के लिए उसके धन्यवाद की पात्री मैं ही हूं, किन्तु ईश्वर के लिए उससे यह सब कहने की त्रियम भूल न करना। संसार में कोई भी स्त्री इस बात का विश्वास नहीं करेगी कि पुरुष एक उस स्त्री से, जो उसकी पुरानी आशना हो, शुद्ध, कलसपहीन, पवित्र मित्रता रख सकता है और तुम्हारी नई प्रियतमा जिसने, तुम्हारे वर्णन से प्रतीत होता है, अभी ही युवावस्था में पदार्पण किया है, और जिसमें भावुकता की मात्रा अति विशेष होगी, कभी भी इस बात को नहीं मानेगी। मुझको स्वयं इसमें बहुत कुछ सन्देह था और इसी कारण से मैंने तुमसे मिलना जुलना हमेशा बचाया। यह न भी हो तब भी तुमको जानना चाहिये कि डाह के समान सांपिन को हम स्त्रियां भी पुरुषों के ही समान अपने हृदय में वहन करती हैं, फर्क इतना ही है कि पुरुष इससे दंशित होने पर दानवी रूप धारण करता है, मारता काटता है, हम लोग साधारणतः मानवी रूप धारण करती हैं और केवल ईश्वर का नाम ले चुप हो सब सहन करती हैं।

आज हमको इस बात की प्रसन्नता है कि हम लोगों ने अपने इस माहदे को—कि वर्ष में एक बार एक दूसरे को जरूर पत्र लिखेंगे—क़ायम रक्खा। मैं तो चतुर नहीं परन्तु मुझसे चतुर एक मनुष्य ने एक बार कहा था कि मित्रता को दफनाना एक मित्र को दफ्ना देने से अधिक कष्टकर है। मैं समझा नहीं सकती, किन्तु वर्ष भर में एक बार पत्रों के विनमय ने हम लोगों के मृत-प्रेम में कीड़े नहीं लगने दिये। मेरी यह बात तुम्हारे सम्बन्ध में भावुकता-मय प्रतीत होगी, किन्तु मैं भावुक हूं नहीं।

प्रेम ! तुम एक भयानक छैल-चिकनिये, आशिक़-मिजाज़, मज़ाक़पसन्द भँवरे की प्रकृति के मनुष्य थे और यद्यपि तुमने

तुमसे कभी कहा नहीं किन्तु मैं यह सदा समझती थी कि तुम्हारा हृदय एक अखाड़े के समान है जिस में तुम्हारे हृद्गत-स्वतंत्रता के प्रेम और मेरे प्रति प्रेम में हर समय एक जंग जारी रहती थी और सच मानो इसी कारण से मैंने तुम्हारे साथ विवाह करने के विचार को कभी अपने समीप फटकने नहीं दिया। आशा है तुम इतना खेल कूद चुके होगे, इतनी स्वतंत्रता का उपभोग कर चुके होगे कि इन बातों की इच्छा शेष न होगी और अब तुम वास्तव में घर बसा कर स्थायी-जीवन वहन करना चाहते होगे।

तुम प्रवीण नायक हो, प्रेम करने की कला में पूर्ण दक्ष हो और इस कारण से मुझको विश्वास है कि तुम्हारे वैवाहिक-काल के कलियुग का प्रथम चरण बड़े ही आनन्द और प्रमोद में कटेगा, चारों ओर तुमको सूर्य की सुनहरी किरनें और बहार ही दिखाई देगी, किन्तु भूल कर इस कल्पना में पागल मत होना कि प्रेम, जोश और आनन्द सदा इसी प्रकार बना रहेगा।

प्रेम ! "प्रेम" एक बड़ा ही मनोरंजक, मनमुग्ध-कर, सुहावना और लुभावना स्वप्न है, मगर अन्ततोगत्वा है यह स्वप्न ही, और अगर तुम चाहते हो कि जीवन भर प्रेम और स्नेह की आभा और ज्योति किसी अंश में बनी रहे तो आरम्भ में ही तुमको सचेत होना होगा। प्रेम का लहलहापन, उसकी चकाचौंध पैदा करने वाली तड़क भड़क, उसकी सर्वदिगन्त व्यापिनी सुनहरी रश्मियों का प्रकाश, उसकी मादकता सब दिन या बहुत दिन भी रह नहीं सकती, किन्तु प्रेम फिर भी अच्छी वस्तु है और बुद्धि से काम लेने से मादकता विहिन होने पर भी उसका सुखदायी सुरूर सदा सुरक्षित रखा जा सकता है।

विवाह में एक विचित्र बात यह है कि जो बिना एक दूसरे को देखे जाने और प्रेम से मदोन्मत्त हुए विवाह करते हैं, समय से उन व्यक्तियों में भी एक तरह का प्रेम पैदा हो जाता है। इस दृष्टि

से आधुनिक पश्चिमीय विवाह से आधुनिक भारतीय विवाह अच्छा होता है। मैंने भारतीय के साथ "आधुनिक" विशेषण का प्रयोग इसलिए किया है क्योंकि मेरा विश्वास है कि प्राचीन काल में ऐसे अनजानों का विवाह, साथ ही, ऐसी अनजान अवस्था में ही, नहीं हुआ करता था। जो हो, भारतीय प्रथा की विशेषता यह है कि जब पश्चिमीय-विवाह मे विवाह के बाद ही वैवाहिक-घनिष्टता से प्रेम की मादकता उतार पर होने लगती है, भारतीय-विवाह के बाद प्रेम, स्नेह या निखद्द दर्जे का पशु-प्रेम ही कहो उरूज पर होता है। साथ रहने से विवाह के बाद जो प्रेम पैदा होता है उस प्रेम में निस्सन्देह ही वह अन्धापन और मादकता नहीं होती जिसके वश मे मनुष्य श्रेष्ठ से श्रेष्ठ, साथ ही घृणित काम कर सकता है, किन्तु इस प्रेम के द्वारा भक्ति, श्रद्धा, आदर त्याग के समान वे भाव ज़रूर पैदा हो जाते हैं जिनका उत्पादन ही सर्वश्रेष्ठ-प्रेम का ध्येय और उद्देश्य होना चाहिए।

इस समय में, तुम दोनो को एक दूसरे के भावों, मनोकामनाओं और चित्तवृत्तियों का बहुत लिहाज़ रखना चाहिए। इस बात को सदा ध्यान में रखना कि प्रेम अपना पूरा खिराज वसूल कर लेता है और इन्सान को ज़रूरत से ज्यादा नाज़ुक-मिज़ाज़ बना देता है साथ ही प्रेम कभी कभी निर्दय भी होता है। जहां एक ओर यह है वहीं दूसरी ओर मानो इसी के मावज़े की भांति यह भी है कि वैवाहिक-जीवन मे बहुत सी एक दूसरे की बातें आँखों की ओट कर दी जाती हैं बहुत सी गलतियां साधारण रूप से जो अक्षम्य हुआ करती हैं, यूँ ही माफ़ कर दी जाया करती हैं। अस्तु।

तुमको प्रियतमा को सदा प्रसन्न रखने का एक बहुत ही साधारण और सहज नुसखा भी बतला देती हूं। तुम सदा उस दिन और तारीख़ का उससे ज़िक्र कर सकते हो जिस दिन प्रथम प्रथम तुमने उसे देखा और तुम्हारे हृदय में उसके प्रति प्रेम प्रकट हुआ।

तुम उस समय की अपने हृदय की गति का वर्णन कर उसके सौन्दर्य की प्रशंसा कर सकते हो और अपने असीम, अगाध प्रेम का उसे विश्वास दिलाते रह सकते हो। तुम उस बात को याद रख सकते हो जो प्रथम प्रथम तुम्हारी प्रियतमा और तुम मे हुई हो और उसकी याद उसे दिलाते रह सकते हो। जिस दिन तुम्हारी प्रियतमा ने तुम्हारे प्रेम को नीरव भाषा में स्वीकृत किया हो उस समय की अपने हृदय की स्थिति को भी बढ़ा चढ़ा कर तुम उससे सदा चर्चा कर सकते हो, तुम उसकी जन्म तिथि को याद रख सकते हो और उसके निकट होने पर उसकी चर्चा कर उसके लिए कोई भेंट खरीदने मे व्यस्त हो सकते हो, दूसरे चौथे बाज़ार से गुजरते हुए उसके लिए सदा एक न एक भेंट, जो उसे पसन्द हो, मूल्य मे वह कितने ही कम की क्यों न हो, ला सकते हो और उसे जीवन भर आये दिन इस बात का विश्वास दिलाते रह सकते हो कि तुम उसे बहुत प्रसन्न रखना चाहते हो और तुमको उसकी बहुत फिक्र रहती है। यह सब महा साधारण बातें हैं, परन्तु इन पर सदा ध्यान रखना व्यक्तियों के जीवन को प्रायः अत्यन्त निकट और सुखमय बना देता है।

अब हमारी तुम्हारी प्रेम-कथा क्योंकर अन्त हुई, इसकी चर्चा कर तुमको मैं प्रेम के खाई खड्डों से सचेत कर देना चाहती हूं। यह सत्य है कि प्रेम के मामलों का प्रबन्ध, उनका ऊंच नीच सोचना स्त्री का कर्तव्य है, किन्तु मैं राधा को जानती नहीं। नाम तो अच्छा है, सुना सा भी मालूम होता है, किन्तु सच तो यह है कि मैं उसे जानना चाहती भी नहीं। मैं इसलिए सारा उपदेश तुमको ही दे देना चाहती हूं। कम से कम इसकी, उसकी अपेक्षा, तुमको अधिक ज़रूरत होगी, क्योंकि स्त्री कभी भी पुरुष के समान प्रेम में पूर्णरूप से पागल नहीं होती, उसके मस्तिष्क मे फिर भी कुछ न कुछ विवेक शेष रह ही जाता है। एक मनुष्य अपनी

प्रियतमा के श्री-चरणों में बिना भविष्य की तनिक भी चिन्ता किये, बिना यह सोचे, एक मिनट के लिए भी, कि नतीजा क्या होगा अपना सर्वस्व भेंट कर देगा, बिना एक क्षण के विलम्ब के समस्त संसार को उस पर न्योछावर कर देगा, क्योंकि समय के महान् आनन्द के मद में वह चूर होता है और उसे कुछ दिखाई नहीं देता. किन्तु हम स्त्रियां, यद्यपि हम लोग भी समय के प्रवाह में वेग से बहती रहती हैं, बह नहीं सकतीं। विधि के कोप से व्यावहारिकता और सहज बुद्धि हरदम हमको आगे देखते रहने पर विवश करती रहती है। इसी कारण से हम स्त्रियों को एक अंश और एक दिशा से प्रेम में वही आनन्द नहीं आता जो पुरुषों को आता है। जब कि पुरुष प्रेम के घोड़ों पर सवार, बाग छोड़े हुये, सब कुछ भूला हुआ आकाश में उड़ने में मग्न रहता है हम स्त्रियों की निगोड़ी आँखें गर्द से भरी, गन्दे राजपथ पर गड़ी होती हैं केवल इस फ़िक्र में कि सब ठीक है न, कोई गड़बड़ तो नहीं है। स्त्रियों को पग पग पर सोचना समझना पड़ता है, पुरुषों को केवल अपने व्यवसाय में ही सोचने का काम करना पड़ता है।

इन सब बातों का अर्थ यह न लगा लेना कि स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा प्रेम किसी अंश में कम करती हैं या यह कि प्रेम में वह मत्त नहीं होतीं। इस सम्बन्ध में पुरुषों और स्त्रियों में जो फ़र्क़ है, वह भी स्त्रियों के अभाग्य का ही सूचक है। फ़र्क़ केवल प्रेम की प्रबलता की भिन्न दिशाओं और मात्रा में है। पुरुष, प्रेम में मत्त हो सर्वस्व चरण में अर्पण कर अपने को और संसार को भूल कर एक दम तल्लीन हो अपने पृथक् अस्तित्व के ज्ञान को भी भूल कर प्रेम के सर्वश्रेष्ठ सुख का उपभोग क्षणिक काल तक कर सकता है। सजग रहने की हमारी प्रकृति के कारण स्त्री इस कल्पनातीत सर्वश्रेष्ठ सुख को अनुभव नहीं कर सकती, किन्तु अपना सर्वस्व पुरुष के ही समान प्रेम की बलिवेदी पर अर्पण कर और

जीवन भर के लिए उसी प्रेम की मादकता की शिकार हो प्रेम के कारण जो कष्ट स्त्री को सहन करने पड़ते हैं वह पुरुष को कभी नहीं सहन करने पड़ते। यह स्त्रियों का अभाग्य है कि आनन्द पुरुष अधिक उठाता है, दुःख स्त्रियां अधिक भोगती हैं। साथ ही पुरुष सब कुछ अर्पण करते हुये भी कुछ अर्पण नहीं करता किन्तु स्त्री हृदय पर अधिकार देते ही अपना इहलोक और परलोक दोनों ही दे देती है।

अब तुम्हारी पिछली बातों की याद दिलाकर तुमको भविष्य के लिए तैयार कर देना चाहती हूँ, अगर पसन्द आये तो इनको ध्यान में रखना।

प्रेम! जब तुम मुझ से शुरू में मिलते थे, तुम नीरस, कल्पनाविहीन और गद्यात्मक अधिक थे। तुम में कविता का नाम न था, तुम बहुत ही भोंडे और तनिक तनिक सी बातों में भूल करने वाले मनुष्य थे, और मुझको भय है कि धीरे धीरे तुमने अपनी पुरानी रविश न अख्तियार कर ली हो, इसीलिए मैं फिर दोहराती हूँ कि तुम नीरस, कल्पनाविहीन और गद्यात्मक बहुत थे। तुम तारीफ़ करना, स्तुत्यवाक्य कहना, बढ़ावा देना, चाटुकारिता, खुशामद करना, बातें बनाना जानते ही न थे या जानते थे तो बहुत मुश्किल से करते थे, किन्तु तुमको यह जान लेना चाहिये कि प्रशंसा, खुशामद और बढ़ावा स्त्री के लिए वैसा ही आवश्यक है जैसे कि जीवन के लिए श्वास और अगर तुम सफल नायक बनना चाहते हो तो यह याद करलो कि प्रशंसा, बढ़ावा और खुशामद स्त्री-जीवन के सर्वश्रेष्ठ (Incentive and inspiration) प्रोत्साहक और प्रेरक है।

इस समय जो कुछ राधा करेगी वह तुम्हारे लिए और तुम्हारी ख़ुशी के लिए करेगी। वह अगर दिन में पहिले एक बार बाल बनाती थी, कंघी करती थी तो अब दो बार करेगी, एक से एक

सुहावनी और वढ़िया वस्तुएँ तुम्हारे लिए धारण करेगी, नई रंगविरंगी सारियां पहिनेगी, यह सब तुमको प्रसन्न करने के लिए, तुमको लुभाने के लिए। जो कुछ उसमें गुण होंगे, विशेषताएं होंगी सब में वह वृद्धि करेगी, इसलिए कि तुम्हारी नजरों मे उसका आदर वढ़े, तुम उसकी अधिकाधिक कद्र करो, और स्वभावत. उसका चित्त चाहेगा कि तुम उसकी इन हरएक वातों को वरावर नोट करो, उनकी खूवियों का वखान करो, अपनी प्रसन्नता प्रकट करो और इन सव वातों के लिए उसकी, अकारण, झूठी भी प्रशंसा करो। पुराने ज़माने की तरह यह समझ कर चुप रह जाने की भूल न करना कि यह तो स्वाभाविक ही है, यह तो उसका कर्तव्य ही है।

दूसरी वात यह है कि अपने कपड़ो और वेष पर तुम भी सदा ध्यान रखना। यह न हो कि अचकन के वटन कभी टूटे हैं, कभी ठीक से सिले नहीं—लटके हुये हैं, कभी दो ऊपर लगे हैं सब नीचे खुले हैं, कभी कोई लगे ही नहीं हैं। कभी कमीज़ कुर्ता चार दिनों मैला ही चला जा रहा है। स्त्री अगर अपने सौन्दर्य की चिन्ता करती है, अगर तुम्हारी प्रसन्नता के लिए, उसकी वृद्धि के लिए, वह निरन्तर चेष्टा करती है और अपना शृङ्गार करती है तो उसका अर्थ यह है कि वह सौन्दर्य का मूल्य समझती है और दूसर को भी साफ सुथरा ही देखना पसन्द करती है। कपड़ों का रेशमी या कीमती होना ज़रूरी नहीं, कपड़ो का साफ रहना और उनको पहिनने की तमीज़ होना ज़रूरी है।

इसी के साथ एक वात और भी कहे देती हूं, देखो वुरा मत मानना, स्त्री जब तुम्हारे सामने आने के पहिले दस पाच मिनट शीशे के सामने कंघी ब्रुश ले खड़ी रहती है और यथाशक्ति अपने वालों को सुन्दर से सुन्दर मनहर रूप देने की चेष्टा करती है, टीका देती है तो वह दूसरे से भी कुछ आशा करती है। कम से

कम नई प्रियतमा के लिए तुम भी साफ सुथरे नायक ही बना करना।

वात्सायन का उपदेश है कि—

" स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्यः गृहीतदन्तधावनः, मात्रयानुलेपनम् धूपम् स्नजमिति च गृहीत्वा, दत्वा सिक्थकमलक्तकम् च, दृष्ट्वा दर्शे मुखम्, गृहीत मुखवासताम्बूल कार्याण्यनुतिष्ठेत् ॥ नित्यं स्नान (ओजस्करत्वात्पवित्रत्वाच) द्वितीयकमुत्सादनम्, तृतीयकः फेनकः (Soap साबुन) चतुर्थकमायुष्यम्, पंचमक दशमकं वा प्रत्यायुष्यमित्यहीनम्" आदि आदि

एक चतुर नायक तथा नागरिक सुवह उठकर शौचादि से निवृत हो दतुवन करे, शरीर सुगन्धादि लगावे, शीशे मे अपने को देखते हुए पान खाये, फूल के हारों को धारण करे, सुगन्धमय वस्तुओं और पान को खाते हुए, फिर खाने के लिए इनको अपने पास रख कर धर्म, अर्थ और काम के साधन के लिए अपने नित्य और नैमित्तिक कर्मों में लग जाय। अपने शरीर की सफाई के लिए उसे नित्य स्नान करना चाहिए, हर दूसरे दिन उसे उबटन लगाना चाहिये, तथा मालिश कराना चाहिए, गर्म पानी से स्नान कर बदन को रगड़वाना चाहिए जिससे शरीर का मैल दूर रहे। दाढ़ी बनवाना और क्षौर कर्म कराते रहना चाहिए*.....

---

*He should get up early in the morning and having attended to the calls of nature and brushing his teeth, and by further equipping himself by anointing himself slightly with the Scent and *Dhupa* and adorning himself with a wreath of flowers and betel leaves. looking at himself in a glass, chewing fragrant substances and by taking more of them and also betel leaves for further use, should proceed with his daily duties in the persuit

तुमको अपनी एक सहेली की कथा सुना देना चाहती हूँ। वह एक पुरुष से बहुत प्रेम करती थी, पुरुष भी अनुरक्त था। एक सन्ध्या को किसी पार्टी या तमाशे में सब को जाना था। हमारी सहेली ने अपने प्रेमी से आदेश किया कि वहां ज़रूर मिलना। अभाग्यवश प्रेमी को उस दिन अत्यावश्यक काम बहुत से आगये और आफिस में उसे सर उठाने की भी फुरसत न मिली। शाम हो गई थी, किसी तरह काम खत्म कर, विलम्ब तो हो ही गया था, हाथ मुह धो वह सीधे पार्टी में पहुँचा। लौटते समय हमारी सहेली और उसके मित्र अकेले ही लौटे। रास्ते में या मकान पर पहुँच कर सखी के मित्र ने उसका चुम्बन किया और उस दिन से आज तक सखी उस मित्र से नहीं मिली। वात यह थी कि मित्र ने उस दिन क्षौर (Shave) नहीं किया था। यह सच्ची घटना है। मेरी सखी ने स्वयं ही मुझ से यह वतलाया था। मैंने बहुत समझाने बुझाने की कोशिश की थी, किन्तु उसका एक ही जवाब था और वह यह कि जब मैं इस योग्य भी नहीं कि कम से कम मेरे लिए दाढ़ी बनाने का कष्ट स्वीकार किया जाय तो मैं ऐसे मनुष्य के प्रेम से अपने को प्रसन्नता पूर्वक वंचित रख सकती हूँ। यह अत्यधिक है, बेजा है, अनुचित है यह तुम कह सकते हो और मैं

---

of Trivargas (*Dharma*, *Arth* and *Kama*) He should further attend to his bodily cleanliness, by taking bath daily, every alternate day having recourse to utsadan (shampooing) of the body, he should get his body rubbed after warm bathing and use soap and other cleaning substances in order to remove dirt from the skin The shaving of the chin and trimming of the moustaches should be attended to . .

(एक फ्रेंच टीकाकार का अनुवाद)

भी इस कथन मे तुम्हारा साथ दूँगी, किन्तु इतना न हो तो कम मे कम स्त्री को कुछ तो खयाल हो ही गा, यह तो तुम भी मान सकते हो। सवाल वास्तव में यह है कि तुम उससे इतना प्रेम करते हो या नहीं कि उसके लिए यह सब कष्ट उठाओ और इन समस्त बातों की फिक्र रक्खो।

एक बात और कह दूँ। तुम अपना सारा समय और सारी सन्ध्यायें अपने ही खेल कूद और अपने ही मित्रों में न काटना। तुम अभी से निश्चय करलो कि सप्ताह मे इतनी सन्ध्यायें अपनी बीवी को दोगे। उन शामों को तुम चाहे घर पर ही बीवी के साथ खेलो कूदो, या गप करो, उसे सिनेमा मे ले जाओ या जहाँ उसकी तबियत कहे उसे घुमाने लेजाओ। इससे उसकी तबियत भी बहलेगी, जीवन उसका क़ैदी की भाँति भारी न होगा, साथ ही तुम्हारे साथ घूमने फिरने से उसके मस्तिष्क का भी विकाश होगा। देखो यह एक साधारण सी बात है किन्तु पुरुष इसे ध्यान में कभी नहीं रखते और इससे अक्सर वैवाहिक जीवन पत्नी के लिए कष्ट-कर हो जाता है।

प्रेम ! सोहागरात से लेकर कम से कम पत्नी और पति जब-तक चौपाए से अठपाए और दसपाए नहीं हो जाते वैवाहिक-जीवन की दशा बहुत ही नाज़ुक हुआ करती है। आरंभिक दशा बहुत ही उत्तेजनापूर्ण साथ ही रग रग को परेशान रखने वाली होती है और इसको सुखकर और सफल बनाने के लिए बड़ी ही बुद्धिमत्ता और नीति-निपुणता की आवश्यकता होती है। तुमको यही सिद्ध करने को नहीं रहता कि तुम बुद्धिमान्, धीमान् श्रीमान् या विद्वान् मनुष्य हो और कुटुम्ब का भार वहन कर सकते हो, वास्तव में तुमको यह सिद्ध करना रहता है कि धीमान् और श्रीमान् मनुष्य तो हो ही साथ ही तुम मे सब से अधिक ख़ूबी यह है कि तुम प्रवीण नायक हो, शारीरिक बल के साथ ही

तुम में आत्मबल है, चरित्र-बल है, और तुम दृढ़ विचार वाले मनुष्य हो।

भोंडे शब्दों में साफ साफ बात यह है कि प्रकृति में विवाह सी प्रथा का आयोजन और प्रबन्ध कहीं नहीं है, सच पूछा जाय तो विवाह प्रकृति के विरुद्ध है। प्रकृति ने गर्भाधान और सन्तानोत्पत्ति का ही आयोजन किया था, विवाह और वैवाहिक जीवन मानवी प्रथा और मानवी मस्तिष्क का विकास है और इसलिए इसकी सफलता के लिए मानवी मस्तिष्क की विशेषताएँ अधिक मात्रा में नितान्त आवश्यक हैं। विवाह की प्रथा ने एक और विचित्रता पैदा करदी है। इसने स्त्रियों को अपने को स्थिति के अनुकूल बनाने का पाठ पढ़ा दिया है। स्त्रियाँ स्थिति के अनुकूल अपने को तुरन्त बना लेती हैं। इसी प्रकृति के कारण हम लोगों ने मनुष्य निर्मित एक पति की प्रथा के सामने सर नमा दिया, इस खूबसूरती से कि इसके विपरीत आचरण को हम पाप समझती हैं, किन्तु पुरुष, नियम और प्रथा के नाम पर अपनी प्रकृति पर विजय प्राप्त नहीं कर सका और इतिहास के आदिकाल से आज पर्य्यन्त कोई विरला ही पुरुष एक पत्नीधर्म के अनुकूल आचरण कर सका है।

प्रेम ! मैं स्त्री हूँ और युवा अवस्था में प्रवेश करने के समय से आज तक सभी प्रकार के मनुष्यों से मेरा परिचय हुआ है और इसलिए मैंने जो कुछ कहा है अपने अनुभव से सत्य ही कहा है। मुझको युवा, वृद्ध, दुबले, मोटे, विवाहित, अविवाहित, चतुर, सीधे सभी तरह के मनुष्यों से भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ है, और तुम सच मानो इन सभी ने ही मुझसे प्रेम प्रकट करने की चेष्टा की है, इसलिए नहीं कि मैं कोई बड़ी खूबसूरत थी या मुझमें कोई विशेषता है, वरन् केवल इसलिए कि समय और अवसर अनुकूल होना चाहिए, आकर्षणशक्ति जो हरदम

अपने विपरीत या विरुद्ध को अपनी ओर खींचती रहती है, अपनी प्रभुता दिखाने लगती है।

यह नग्न सत्य है और प्रेम! तुमको इससे सावधान रहना होगा। तुम युवा हो, सुन्दर हो, मार्ग में प्रलोभन अनेक उपस्थित होंगे। विवाह व्यक्तियों की प्रवृत्ति और प्रकृति में अन्तर नही पैदा कर देता, इसलिए मेरी विनीत प्रार्थना तुमसे यही है कि यदि तुम वास्तव मे सुखी होना चाहते हो और वैवाहिक जीवन को सफल बनाना चाहते हो तो समझ लो कि अगर संसार में कोई स्त्री है तो राधा ही है। तुमने शपथ भी ली है, वचन भी दिए हैं, भले आदमी हो और भले आदमी के बेटे हो, अपने वचनों की मर्यादा रक्खो और उनको सत्य ही प्रमाणित करो। राधा अच्छी है तो, खराब है तो, तुमने उसे पसन्द किया, तुमने उसका पाणिग्रहण किया है और इसलिए और कुछ नहीं तो 'बांह गहे की लाज' को सदा ध्यान मे रखना।

याद रक्खो, इस संसार में अनेकों सुन्दरियो के सुन्दर हाथ तुम्हारे सामने उपस्थित होंगे, किन्तु इनमें से एक भी तुमको उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं कर सकेगा। प्रेम! सुखमय वैवाहिक-जीवन एक उत्कृष्ट कला (Art) है और इसके लिए सयम, पवित्रता, जब्र, परहेज़गारी, दमनशक्ति और जितेन्द्रियता की सबसे अधिक ज़रूरत होती है। कला एक बड़ी शक्तिशालिनी मोटर सी वस्तु है, जो बहुत भीड़-भाड़ के बीच चलाई जा रही हो। एक बच्चे की उंगली से हाँकने वाला इसे मंज़िल पर या सत्यानाशी खड्ड मे पहुँचा सकता है। कला-कुशल नायक की विशेषता यह है कि वह इसे स्वतंत्र छोड़ देने और साथ ही इसको एक दम धीरे चलाने मे दक्ष हो। सच तो यह है कि हरजाई प्रकृति का होना विवाह कर लेने की अपेक्षा कहीं अधिक बुरा है। विवाह के पक्ष में एक ही सब से हितकर बात है और

यह यह कि इसके द्वारा पति पत्नी के निरन्तर एक दूसरे के साथ रहने से, कभी प्रेम प्रकट करने और उसमें पागल होने से, कभी खीजने और क्रोधित होने से, कभी प्रसन्न और असन्तुष्ट होने से पुरुप की आवश्यकता से अतिरिक्त शक्ति का व्यय होता रहता है। तुम ईसामसीह के इन शब्दों को कभी मत भूलना "Yea, I say unto you, that whosoever hath looked upon a woman to lust after her, hath committed adultry with her already in his heart." और इसलिए कर्मणा ही नहीं, वाचा और मनसा भी पवित्र रहना जरूरी है।

यह पुरुप-प्रकृति के विरुद्ध होगा, जीवन मे ऐसी मनहर स्त्रियों से तुम्हारी भेंट होगी, जिनके चरणों पर सर्वस्व न्योछावर न कर देना, तुमको पशुता दिखाई देगी, कभी कभी तुम पागल से हो जाओगे, तुम्हारा अपने ऊपर से अधिकार जाता रहेगा, तुम्हारे मस्तिष्क मे विचार उठेगा कि राधा ही संसार में एक स्त्री नहीं है, उसने मुझको खरीद नहीं लिया है, हमारे तनिक इधर उधर होने से उसको क्षति नहीं पहुंचेगी, उसके सुख मे, उसकी फिक्र मे हम कोई कमी नहीं होने देंगे, किन्तु मेरा कहना यही है कि तुम इन विचारों को सदा कुचलने की कोशिश करना। मैं जानती हूं कि प्रकृति से ही पुरुप-हृदय चचल प्रकृति, शीघ्र प्रज्वलित होने वाला और भँवरे की प्रकृति का है। प्रेम करने लगना और विवाह कर लेना पुरुष का सहज स्वभाव है, उसकी प्रकृति इसके लिए उसे विवश करती है, परन्तु मनुष्य को विवाह कर दृढ़ रहने और उसके धर्मयुक्त रीति से निर्वाह के लिए प्रकृति ने कोई आयोजन नहीं किया है।

प्रेम! वैवाहिक आदर्श जीवन, एक पत्नीव्रत ऐसी चीज है जिसके लिए प्रयत्न करना, जीना और मरना भी श्लाघनीय है।

यह ऐसा आदर्श जीवन है, इतना सुखमय और आनन्दप्रद है कि इसके लिए अपनी हरजाई प्रकृति का दमन और उस पर विजय प्राप्त करना देवताओं के लिये भी अनुकरणीय है।

मानव आदर्शों मे यह सर्वश्रेष्ठ और सब से अधिक कष्ट-साध्य है, किन्तु यह सब होते हुए भी मानव जीवन की यह सब से अधिक ईप्सित, मनोहर, मुग्धकर और ईश्वर के निकट लेजाने वाली कामना है।

प्राचीन ऋषियों का कहना है कि—

"आयुः क्षयो विकलताऽप्युपहास्यता च निन्दार्थहानि लघुता विगति. परत्र। स्यादेव · ··रतेन पराङ्गनायाः"

"लंकेश्वरो जनकजा हरणेन बाली तारापहारकतयाऽप्यथ कीचकाख्यः। पान्चालिका ग्रहणतो निधनम् जगाम तच्चेतसाऽपि परदारर रतिम् न काङ्क्षेत" (अनङ्ग रङ्ग)

"सचिन्त्येति समागताम् परवधूम् रत्यर्थिनी स्वेच्छया, गच्छेत क्वापि न सर्वदा सुमतिमानित्याह वात्स्यायनः"

प्रेम ! यद्यपि तुमको अपनी तबीयत की शोखी, अपने छैलेपन और भँवरे की प्रकृति का अभिमान है, फिर भी तुमको इस बात का ख़याल रखना चाहिए कि विवाह का सम्बन्ध स्थापित करना बड़ी जिम्मेदारी की बात है और पहिली शर्त विवाह की यह है कि पति और पत्नी दोनों हर समय एक दूसरे के सामने सर झुका देने के आदी हों। याद रक्खो अगर तुम अपनी स्वतंत्रता मे आवश्यक बंधन बांधने को तैया हो और राधा के प्रति उतनी ही भक्ति, प्रेम और श्रद्धा प्रदर्शित करने को तैयर हो जितनी कि वह तुम्हारे प्रति प्रदर्शित करती है या जितनी कि तुम उससे आशा

करते हो तो यह तुम्हारा वैवाहिक सम्बन्ध तुम दोनों के लिए स्वर्ग-सुख का देने वाला होगा।

खुश रहो और तुम लोगों का वैवाहिक जीवन संसार के समस्त सुखों का भंडार हो मेरी कामना यही है।

तुम्हारी—

मनोरमा

सन्तान-निग्रह

मनोरमा-वास
प्रयाग
६–१२–१६१३

प्रेम !

तुमको एक पत्र तुम्हारे वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में लिख चुकी हूं। इस समय बैठे बैठे फिर तुम्हारा खयाल आगया, हृदय ने कहा तुमसे कुछ बातें करूं और इसीलिए यह पत्र तुमको लिख रही हूं। वैवाहिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए अनेक बातें है, किन्तु सब से साधारण भूल, और जिससे साधारण से साधारण मनुष्य अपने को बचा सकता है, यह है कि वह इस बात का ध्यान नहीं रखता कि गृहस्थी रूप मशीन बिना खट पट और शारगुल के आनन्द से चलती रहे, उसके प्रत्येक पुरजे साफ सुथरे हों, उनमें तेल भी समय से पहुँचता रहे और वह बिना प्रयास के अपना काम सुचारु-रूप से करती रहे। वैवाहिक जीवन की यह सबसे सहज और साथ ही एक महत्वपूर्ण बात है, किन्तु इसकी ओर समुचित ध्यान और इसकी सुव्यवस्था न होने से कितने ही कुटुम्ब अशान्ति और दुःख के समुद्र बन जाते हैं। सब से पहिली बात जो इस सम्बन्ध में याद रखने की है वह यह है "Cut your coat according to your cloth" जितना कपड़ा

हो उसी के अनुसार कोट की काट, स्टाइल और ब्योंत भी होना चाहिए। आय अगर दो सौ की है तो खर्च दो सौ के भीतर ही होना चाहिए, साथ ही कुछ बचा भी लिया जाय ज़रूर, चाहे पाच ही रुपया हो, इसलिए कि गाढ़े में किसी समय काम दे। यह ज़रूरी है, साथ ही बहुत अच्छा भी। गृहस्थी में क्या आवश्यक है, कितने की साधारण रूप से प्रत्येक मास ज़रूरत होती है यह छिपा नहीं रहता। संसार की समस्त और बड़ी से बड़ी बातों की अवहेलना कर सर्वप्रथम इन सब का प्रबन्ध हो जाना चाहिए। इन सबका रुपया, इसके पहिले कि रुपया किसी और काम के लिए लिया जाय, अलग पत्नी के हाथ में दे देना चाहिये। गृहस्थी में समस्त आवश्यक वस्तुओं के आजाने का काम बिना किसी प्रयास के मशीन की रफ्तार की भांति सदा होना चाहिये। साथ ही यह बात भी होनी चाहिये कि आवश्यक वस्तु एक पैसे की भी उधार न आवे। रुपया मौजूद है, कल दे देंगे या चेक काट कर भेज देंगे या नहीं है तो फिर चला जायगा, आगे चल कर गृहस्थी के सुखों का नाश कर देने वाला हो जाता है। एक छोटी सी बात पर और ध्यान रखना चाहिये, वह यह है कि भोजन का समय बिलकुल निश्चित होना चाहिये और घड़ी की सुई के अनुसार ठीक समय पर होजाना चाहिये। इस सम्बन्ध में एक साधारण सी बात और है। अपने मित्रों या किसी को भी अगर भोजन के लिए निमंत्रित किया गया है तो उसकी सूचना पहिले ही से घर की मालकिन को ज़रूर हो जानी चाहिये। पत्नी को बिना पहिले से सूचना मिले किसी मेहमान को खिलाना, विशेष कर जब वह एक से अधिक हों, बहुत कष्टकर होता है। भोजन का प्रबन्ध स्त्री का विभाग है और इससे उसका घना सम्बन्ध रहता है। स्वभावत. स्त्री अच्छा से अच्छा भोजन मेहमान को खिलाना चाहती है, अपने विभाग का सुन्दर से सुन्दर प्रबन्ध दूसरों को दिखाना

चाहती है, उसको इस बात में बहुत आनन्द आता है कि उसके घर में आये हुये लोगों को सुन्दर से सुन्दर भोजन मिले जिसमें वह मन ही मन उसके कार्यकुशल होने की प्रशंसा करें किन्तु एक दम, मिनट भर पहिले, सूचना मिलने से वह कुछ नहीं कर सकती और उसे इससे हार्दिक कष्ट होता है। दूसरे गृहस्थी की भीतरी बातों की अधिकारिणी स्त्री है, उसके सुन्दर प्रबन्ध का उत्तरदायित्व उस पर है, उसको अच्छी या बुरी बातों के लिए नेकनामी या बदनामी उसकी होती है, इनके लिए पति को कोई दोष नहीं देता, हंसी स्त्री की होती है इसलिए पति देवता को यह उचित नहीं कि अपनी लापरवाही, भूल और गलती से वह किसी दूसरे की बदनामी कराये।

जब गृहस्थी की प्रबन्ध की बातें कर रही हूं, तब एक बात और कह देना चाहती हूँ, जिस प्रकार से जितना ओढ़ना हो उतना ही पैर पसारना चाहिये, ठीक उसी तरह से जितने बच्चों के लिए हम अच्छा से अच्छा प्रबन्ध, शिक्षा, दीक्षा और आराम से रहने का प्रबंध कर सकें उतने बच्चों को ही जन्म भी देना चाहिये। एक माता, एक भी हृष्ट पुष्ट, सुन्दर, सुशील, योग्य पुत्र से माता और सुतवती हो सकती है और जीवन में अधिक से अधिक सुख प्राप्त कर सकती है। एक सुयोग्य पुत्र को जन्म दे वह अपनी कीर्ति को अमर कर सकती है, किन्तु दस पांच निखिद, रोगी, आलसी, निकम्मे, निखट्टू पुत्रों को जन्म दे वह समस्त संसार के सुखों से, श्रेष्ठ होती हुई भी, अपने को वंचित कर सकती है। इस सम्बन्ध में मुझको अधिक कहने का अधिकार नहीं, किन्तु इतना मैं जरूर कह देना चाहती हूँ कि "किसी माता या पिता को, किसी ईश्वरी या मानवी नियम से यह अधिकार नहीं है कि वह अपने विलास के कारण, अपनी मूर्खता, बुद्धिहीनता या चापल्य से या अपनी प्रकृति या इन्द्रियों को वश में न रख सकने के

कारण एक भी जीव को, जिसकी देख भाल, पूर्णरूप से शिक्षा और पालन का प्रबन्ध वह नहीं कर सकता, इस स्वार्थ से भरे हुए संसार में—जहां बली निर्बल के माथे जीते हैं, जहां श्रेष्ठतम की विजय' का दौर दौरा है—लाये। जो माता पिता दीन या कमज़ोर बच्चों को पैदा करते हैं, जो रोगियों को जन्म देते हैं या जो हृष्ठ पुष्ट को पैदा करते हैं किन्तु उनकी समुचित देख रेख और शिक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकते, उनको अच्छा से अच्छा सुख नहीं दे सकते, जो जीवन-संग्राम की लडाई लड़ने और उनमें विजय प्राप्त करने के लिए उनको सम्पन्न नहीं कर सकते, जो जीवन की मझधार में उनको निस्सहाय छोड़ देते हैं, वे भीषण अत्याचार करते हैं और उसी दंड के अधिकारी हैं जो उस मनुष्य या स्त्री को मिलना चाहिये जो एक निस्सहाय, सजीव, हंसते बोलते बच्चे को कठिन से कठिन शीत में कैलाश पर्वत की वर्फ से ढकी चट्टानों पर छोड़ देती है, जो एक मन्द मुस्क्यान वाले खेलते हुए नन्हे बच्चे को अग्निकुण्ड में फेंक देती है या जो सब कुछ जानते हुए भी होश हवास में एक बच्चे को जहर दे देती है"।

सन्तान-निग्रह देश, समाज और कुटुम्बों की वर्तमान स्थिति में कुटुम्ब को सुखी रखने के लिए नितान्त आवश्यक है। यह न पाप ही है और न धर्म के विरुद्ध ही है। पतिपत्नी के सम्बन्ध में तो पाप और व्यभिचार की परिभाषा ही मेरी राय में दूसरी होनी चाहिये। पाप होना चाहिये "बिना प्रेम के मातृत्व या पितृत्व," व्यभिचार होना चाहिये "उत्तरदायित्वहीन पितृत्व या मातृत्व तथा हीन माता पिताओं का पुत्रोत्पादन" और पाप समझा जाना चाहिये "जानकर बच्चे न पैदा करना या अकारण जबरदस्ती कामेच्छा की शांति"।

"तेते पांव पसारिये जेती लांबी सौर" की शिक्षा को इसलिए हरएक पति-पत्नी को ध्यान में रखना चाहिये। पूर्वकाल में और आधुनिक समय में भी, जब तक पाशविक शक्ति ही सब कुछ थी, गुलामी का इस तरह का दौरदौरा न था, जब बहुतायत थी, दरिद्रता का नाम ही लोग सुना करते थे, जब आवश्यकताएं कम थीं या उनकी पूर्ति सहज में हो जाया करती थी, बड़ा कुटुम्ब बड़े भाग्य का सूचक था। थोड़ासा काम बहुत से आदमी मिलकर कर लेते थे, कोई खेतों में खाद की फिक्र रखता था, कोई मवेशियों को चराने की, कोई अन्य कामों की। इससे भी अधिक महत्व का काम यह निकलता था कि कोई पड़ोसी या ग़ैर आक्रमण करने या लड़ने का साहस नहीं कर सकता था। बड़े कुटुम्ब की धाक रहती थी, जितना ही बड़ा, अधिक प्राणियों वाला और ज़बर्दस्त कुटुम्ब होता था उतना ही वह शक्तिशाली और सम्पन्न होता था। अब युग दूसरा है, अब केन्द्रीकरण का युग है, कल और कलाओं का युग है, अब सौ मनुष्यों का काम एक मनुष्य मशीन से कर लेता है। पाशविक शक्ति नहीं अब बुद्धि का युग है। इसलिए कुटुम्ब शक्तिशाली और प्रभावशाली वह होगा जिसमें बुद्धि और विवेक की बहुतायत होगी। संख्या नहीं अब शक्ति और योग्यता का साम्राज्य है। मनुष्यों की संख्या की नहीं अब मस्तिष्क की विजय है। इसलिए संख्या में अधिक पुत्रों के जन्म से लाभ नहीं, वे कुटुम्ब की कीर्ति को कायम नहीं रख सकेंगे। रहने को उतना स्थान नहीं, खाने के लिए उतना सामान नहीं, आवश्यकताएं, जिनकी पूर्ति के लिये पैसा चाहिए, नितप्रति बढ़ती जा रही हैं, वस्तुओं का मूल्य बढ़ता जा रहा है, पैसों की खरीदने की शक्ति कम होती जा रही है, आय कम होती जा रही है, इसलिए जरूरी यह है कि बच्चे कम हों किन्तु हों धीमान्, श्रीमान्, वीर, यशस्वी, जो अकेले दस और सौ का काम कर सकें, जो

अपने कुटुम्ब की उतनी ही नहीं, उससे अधिक सेवा कर सकें जितनी दश बीस पुत्र किया करते थे। मेरी राय में एक पुत्र और एक पुत्री एक माता पिता के जीवन को सुखी बनाने के लिए काफी हैं। एक छोटे भाई का और होना अच्छा हुआ करता है, यदि माता पिता सब के लालन पालन का सुन्दर प्रबन्ध कर सकें, क्योंकि दो या तीन बच्चे जब एक ही माता पिता के हों तो उनको उन्नति करने के लिए बहुतसी बातें आप से आप ऐसी मौजूद हो जाया करती हैं जो माता पिता के अकेले बच्चे को, उस पर कितना ही क्यों न खर्च किया जाय, नसीब नहीं हो सकतीं। किन्तु यह सब स्वप्न तभी देखना चाहिये जब पैसे की किसी प्रकार की कमी न हो, नहीं तो एक पुत्र काफी समझा जाना चाहिये। अस्तु।

पत्र काफी बड़ा होगया और जो कुछ मुझको कहना था मैं कह भी चुकी, फिर भी एक बात और कहने के बाद ही इस पत्र को समाप्त करूंगी। अभी ही बैठे बैठे कुतूहल-वश मैं एक हिन्दी लेखक के सन्तान-निग्रह सम्बन्धी लेखों को पढ़ रही थी। लेख डाक्टर मेरी स्टोप्स की प्रचलित पुस्तकों के आधार पर लिखे गये हैं। जहांतक मालूम होता है लेख लिखने के पहिले लेखक महोदय ने इस विषय के बड़े बडे प्रतिष्ठित ग्रन्थों के पढ़ने का कष्ट नहीं उठाया। उनको कदाचित् यह भी नहीं मालूम होगा कि डा० मेरी स्टोप्स शरीर और स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाली डाक्टर नहीं हैं। जब लेखक को यही नहीं मालूम होगा तो फिर यह कैसे मालूम हो सकता है कि डा० मेरी स्टोप्स की पुस्तकें अच्छी होती हुई भी भूलों से खाली नहीं हैं- दो एक स्थानों पर तो उनमें भद्दी भूलें हैं, अस्तु। प्रस्तुत लेख में लेखक महोदय ने संसार भर के उपायों की हीनता दिखाकर डा० मेरी स्टोप्स के एक उपाय को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। यह देश के अभाग्य की बात

है कि लेखक महोदय को कदाचित् यह नहीं मालूम कि जो उपाय उन्होंने बताया है वह भी सर्वश्रेष्ठ साथ ही हानि-विहीन नहीं है। हमारे लेखक गण देश भर के नर नारियों के विधाता है, फिर भी यह इतना आवश्यक नहीं समझते कि जिस विषय पर वे लेखनी उठाते हैं कम से कम उस सम्बन्ध में विशिष्टविद्वानों के मत से तो परिचय प्राप्त कर लिया करें। मुझको कहने का अधिकार ही क्या, और कहना चाहूं भी तो कैसे और किससे कहूं, कलम उठाने का साहस भी करू तो स्त्री हूं, लोग क्या कहेंगे, और यह भी असंभव नहीं कि कोई महानुभाव एंड़ी वेड़ी ही सुना दें, किन्तु यदि देश के पुरुष-स्त्री सम्बन्धी विषयों के लिखनेवाले लेखकों से कहीं मेरा परिचय होता तो मैं उनसे सविनय निवेदन करती कि अपनी आंखों को बन्द कर किसी एक के पीछे उसी के सहारे भागना संकटमय हो सकता है। साथ ही यह कि ऐसे विषयों की चर्चा बड़ी जिम्मेदारी का काम है। यह भी कहती कि लेखक, वक्ता और नेता देश को बना और बिगाड़ सकते हैं, इसलिए साधारण पुरुषों की अपेक्षा इन लोगों को अपने उत्तरदायित्व का अधिक लिहाज रखना चाहिये, और बिना अच्छी तरह मनन किये हुए कोई बात जबान या क़लम से बाहर नहीं करनी चाहिए। मैं जानती हूं कि कम से कम मुझ से डा० मेरी स्टोप्स जरूर लायक हैं, कम से कम मुझसे अधिक अधिकार उनको इस सम्बन्ध की बातों के कहने का है, फिर भी कुछ बकने की अधिकारिणी मैं अपने को समझती हूँ, इसका कारण यह है कि डा० मेरी स्टोप्स की पुस्तकों के खंडन के अर्थ जो पुस्तकें प्रकाशित हुई है उनको भी मैंने पढ़ा है। मैंने डा० मेरी स्टोप्स की तथा उनके विरोधियों—दोनों ही की बातों को अपनी हीन बुद्धि की तराजू पर तोला है और मुझको किसी एक बात में डा० मेरी स्टोप्स और

किसी दूसरी में दूसरे गलत प्रतीत हुए हैं, और दोनों ही की सब बातें सर्वथा ठीक नहीं हैं। सब से अधिक जिस बात पर मैं ज़ोर देती वह तो यह है कि अपने घर मे भी देखो, यह असंभव नहीं कि अपने घर में ही निधि मिल जाय। इन बातों से भी अधिक जिस बात पर मैं ज़ोर देती और जिस बात को भिक्षा-स्वरूप उनसे प्राप्त करने के लिए उनके चरणों मे अपना सर नवा देती वह यह है कि हमारे पथप्रदर्शक कम से कम इस बात को सदा ध्यान में रक्खें कि वे अपने पाठक और पाठिकाओं की कामवासना की वृद्धि तो नहीं कर रहे हैं, वे उनको अधिक कामुक तो नहीं बना रहे हैं। कामुकता की वृद्धि से ही आज मानव-समाज इतना असुखी हो गया है। सुन्दर से सुन्दर पुष्पों का चयन श्रेयस्कर है, अपनी मातृभाषा में संसार के ज्ञान को देना हमारा प्रथम कर्तव्य है, किन्तु पुष्पों के चयन के समय हमको इस पर निगाह रखनी चाहिये कि किसी सुन्दर पुष्प के पीछे तक्षक नाग तो नहीं छिपा बैठा है। हमको इसपर सदा ध्यान रखना चाहिये कि अपनी भूल से, जान में या अनजान मे, किसी स्वार्थ या बुद्धि-हीनता से हम अपने भोले पाठक और पाठिकाओं को उनके पवित्र मंच से नीचे तो नहीं खींच रहे हैं, कहीं उनको गलत रास्ते पर तो नहीं लेजा-रहे हैं। मैं उनसे कहती कि पाठक और पाठिकाओं तथा किसी का नैतिक-पतन करना संसार मे सब से जघन्य पाप है, किन्तु कहूं तो किससे और कैसे ? सिर में इतने बाल कहां हैं ? साहस करूँ भी तो पहिले सहस्रों ही कुवाक्यों को सहन करने की शक्ति अपने में पैदा करलूं तब तो। अस्तु। तुमसे इतना ही कहना है कि तुम बुद्धि से काम लेना और "जिन खोजा तिन पाइयाँ" के ही सिद्धान्त को अधिक महत्व देना, किन्तु इतना सदा ध्यान में रखना कि सर्वश्रेष्ठ उपाय संसार में समस्त सुखों के देने वाला संयम के सिवा और कुछ नहीं है।

पत्र समाप्त करते समय एक बात और याद आ गई। देखो घर में पत्नी के आते ही तुम प्रभु का पार्ट न खेलने लगना, तुम सदा उसका आदर करना, उसकी इच्छा और उसकी मर्जी को ही ऊपर रखना, और बिना उसकी मर्जी के कम से कम उससे सम्बन्ध रखने वाली कोई बात न करना। वह तुम्हारी ज़रूर है किन्तु तुम याद रखना कि वह जड़ नहीं है उसके भी हृदय और मस्तिष्क है और यदि तुम उसे बराबर की सहचरी और अपने वैवाहिक जीवन को सुखी बनाना चाहते हो तो उसकी इच्छाओं, कामनाओं और भावनाओं का सदा लहाज रखना तुम्हारे लिये परमावश्यक है।

एक बात और याद रखना तुम उससे उसी तरह से व्यवहार करना जैसा कि तुम उसके साथ करते, अगर तुम्हारी वह पत्नी न होकर कोई कुमारी होती और विवाह के अर्थ तुम अपने प्रेम में उसे मत्त करना चाहते। वैवाहिक-जीवन को आनन्दमय बनाने का रहस्य यह है कि तुम नित्यप्रति चतुर प्रेमी नायक ही बने रहो, प्रत्येक मिनट उसके हृदय पर अपने प्रेम से अधिका-धिक अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करते रहो, और उसको अपने प्रेम समुद्र में प्रसन्नतापूर्वक उतारते रहने का ऐसा आदी बनालो कि तनिक भी तुम से दूर होने पर वह जल-विहीन मछली की भाँति छटपटाने लगे।

अन्त में तुमसे इतना ही कहना है कि अगर तुम मेरी इन बातों को सदा ध्यान में रक्खोगे तो मेरा विश्वास है कि तुम्हारा वैवाहिक-जीवन कल्पवृक्ष के समान तुमको सब कुछ देने वाला हो जायगा।

तुम्हारी—
मनोरमा

प्रेम का नशा उतर जाता है

मनोरमा-वास,
प्रयाग
१२-५-१६१५

प्रिय गोरी,

क्या तुम बतला सकते हो कि इस समय अपनी एक पुरानी सेफ (आलमारी) से मैंने क्या ढूंढ निकाला ? एक तुम्हारे प्रेम-पत्रों का बंडल। इनमें से अधिकतर प्राय: आठ दस वर्ष हुए लिखे गये थे, और मैं समझती हूं, इनको इस प्रकार जुगह कर रख छोड़ने में मैंने भूल की थी। भावुकता-वश मैंने इनको संच कर रक्खा हो यह बात नहीं है, साथ ही तुम पर अंकुश रखने की नीयत से ये रक्खे गये हों सो भी नहीं है। इनके रक्खे रह जाने का एकमात्र कारण यह है कि पत्रों को नष्ट कर देना मैं कभी भी सहन नहीं कर सकती थी विशेष कर जब कि वह तुम्हारे लिखे हुए प्रेमपत्र थे। बंडल खोलते हुए मुझे ध्यान में आया कि बंडल उसी ऊन में बंधा हुआ है जो तुम्हारी हमको प्रथम भेंट थी और जिसे तुम मेरे जम्पर बनाने के लिए लाये थे। मैं एक घंटे से आग के पास बैठी हुई इस फिक्र में लगी हूं कि तुम्हारे समस्त शब्दों को भस्म कर दूं। तुमको सुन कर आश्चर्य होगा यदि संसार में कोई ऐसी स्त्री भी हो जो एक स्नेही प्रेमी के प्रेमपत्र को बिना पढ़े हुए

अग्नि में भस्म कर दे। जहांतक मैं समझती हूं ऐसी हृदयहीन कल्पना विहीन कदाचित् ही कोई स्त्री हो।

मैंने अभी ही तुम्हारे उस पत्र को पढ़ा है जो तुम्हारा अन्तिम पत्र था और जिसके बाद तुमने मुझको लिखने का कष्ट स्वीकार नहीं किया। गोपी ! इस पत्र को मैं रक्खूंगी, यद्यपि अन्य सब पत्र, मुझ में इनको भस्म कर देने योग्य नैतिक साहस के होते ही, राख हो जायँगे।

यह तुम्हारा पत्र मेरे पास इसलिए रहेगा, क्योंकि यह मेरे इस सिद्धान्त को सत्य सिद्ध करेगा कि समय समस्त घावों का पूरक है; साधारण चोटों का ही नहीं, वरन् हृदय के नस्तरों का भी और यह कि आत्महत्या मूर्खों का काम है, क्योंकि आकस्मिक घटनाओं, दैवीगतियों और इत्तफाक का देवता सदा कोने अतरे में खड़ा हुआ, जीवितों की सहायता के लिए प्रस्तुत रहता है, किन्तु मृतकों से वह कोई सरोकार नहीं रखता।

इस अपने अन्तिम पत्र में तुमने बड़ी गम्भीरता से लिखा था कि तुम भविष्य में किसी से प्रेम करने का साहस न करोगे। तुमने लिखा था—

"तुम्हें चाहा न पाया, अब किसी को और क्या चाहें !
मुहब्ब क्या निभेगी फिर, भला टूटे हुए दिल से" !

तुमने अपनी प्रभावशालिनी, रसिक-हृदय वाली भाषा में बड़े मार्मिक शब्दों में लिखा था कि मैंने तुम्हारा स्त्रियों में से सदा के लिए विश्वास उठा दिया, और तुम शीघ्र से शीघ्र संसार से दूर चले जाओगे। क्षमा करना, किन्तु इस समय इन पंक्तियों को पढ़-कर बिना मुस्कराये मैं न रह सकी, क्योंकि मुझको याद आया कि पत्र लिखने के दूसरे ही दिन तुम कालेज की टावर पर चढ़ गये थे और वहा मित्रों से इस बात पर बहस कर रहे थे कि वहा से

पतंग उड़ाई जाय तो कितने ऊंचे वह हवा मे पहुँच सकेगी। जो तुमने लिखा था उसका यह मतलव न था, हां तंज़ और ताने की वात ही दूसरी है।

गोपी! कोई भी मनुष्य स्त्रियों फिर विश्वास करने लग सकता है, अगर केवल वह आत्महत्या जल्दी न कर डाले। तुमको याद है या नहीं कि तुम्हारे हमारे सम्बन्ध के टूटने के एक महीने वाद ही तुम एक दूसरी स्त्री से प्रेम करने लगे थे और उससे विवाह करने को उत्सुक थे। हमको विश्वास है कि उससे तुमको शांति मिली थी, और उससे तुम संतुष्ट भी थे, यद्यपि छुट्टी के दिनों मे घर जाने पर तुमने कहा था कि तुम ईश्वर को धन्यवाद देते हो, कि उसने वजाय तुमसे तुम्हारे एक मित्र मे विवाह कर लिया। कदाचित् तुम उससे वास्तव मे प्रेम नही करते थे, किन्तु तुम समझते थे कि तुम उससे प्रेम करते हो, और यह कोई अनहोनी वात भी नहीं, क्योंकि प्रेम ठीक उसी प्रकार से मस्तिष्क की वीमारी है जैसे कि वह हृदय की।

तुम्हारे उसके प्रेम में फँसने से मुझको जैसा कष्ट होना चाहिए था, नहीं हुआ, क्योंकि मैंने देखा कि कम से कम मैंने तुम्हारा स्त्रियों मे से विश्वास उठा नहीं दिया है, यह एक सुखदायनी वात थी, इसे तुम भी मानोगे।

गोपी! मैं तुम्हारे जीवन को नष्ट कर देना सहन नहीं कर सकती थी और ऐसा करने पर मैं अपने को कभी क्षमा न कर सकती। तुम ऐसे आदरणीय, स्नेहभाजन, आदर्शवादी और अपने स्वप्नों में लीन रहने वाले मनुष्य थे कि तुमको दुःखी कर मैं सुखी नहीं हो सकती थी, किन्तु तुमसे विवाह करने पर हम दोनों को कभी सुख न मिलता। इस समय जव मैं यह सब सोचती हूं तो तुमको वतला देना चाहती हूं कि केवल तुम्हारी एक प्रकृति के कारण मैं

तुमसे विवाह करने को राज़ी नहीं हुई। मुझको सदा यह भय रहता था कि तुम्हारी विचार-निद्रा मे कहीं मैं तुमको जगा न दूं।

मेरे भोले गोरी! स्त्रियां पुरुषों के समान कभी स्वप्न देखने-वाली और पूर्ण आदर्शवादिनी नहीं हुआ करतीं। विवाह की दूषित प्रथा, यह ख्याल कि जिस घर में पली हैं उसको छोड़ना है, माता पिता के श्रीचरणों से भी विदा होना है, नूतन घर बसाना है, नये कुल को अपना कुल बनाना है, हममें भावुकता की वृद्धि न कर हमको व्यावहारिक होने की शिक्षा दिया करता है। यह ख्याल सदा हम लोगों को सजग रखता है और कहता रहता है कि विवाह से हमको क्या क्या आशा रखनी चाहिए, क्या फल उससे फलेंगे, कौन कौन सी कठिनायों का सामना करना पड़ेगा और अन्त में होना क्या है। विवाह की प्रथा इस तरह भावुकता नहीं वरन् व्यावहारिक जीवन के लिए हमको तैयार करती है। यद्यपि अपने हृदय मे मैं तुमको अपना सदा का साथी बना लेना चाहती थी, किन्तु मैं यह देख रही थी और समझती थी कि तुम्हारा मेरे लिए जो प्रेम है वह वैवाहिक-घनिष्टता को वहन नहीं कर सकेगा और विवाह के बाद ही काफ़ूर हो जायगा।

प्रेम की मधुमिश्रित घड़ियों में जब हम तुम एक साथ बैठते थे, बातें करते थे, खाते, पीते, खेलते थे या यमुना की सैर किया करते थे, हम लोग अपनी त्रुटियों को सहज में ही एक दूसरे से छिपा सकते थे। तुमने मुझको कभी क्रुद्ध, अन्यमनस्क, चिड़चिड़ी नहीं देखा, सदा हँसती हुई, खुश ही तुमने मुझको पाया। मैं तुमसे मिलती या तुम्हारे साथ घूमने जाती थी, किन्तु सदा ही जब मैं भरपूर खुश at my best होती, उस समय जब कि मैं अपनी सर्वश्रेष्ट स्थिति में होती और बुरा न मानना, तुम भी यही करते थे। एक प्रेमी ख़ुशमिजाज़, भावुक, सहनशील और अपना

सर्वस्व त्याग कर अपनी प्रियतमा को प्रसन्न रखने वाला व्यक्ति होता है, किन्तु पति-पत्नी दूसरे ही जीव होते हैं। वह सदा साथ रहते हैं, दु:ख में सुख मे, वसन्त मे निदाघ मे, सुअवसरों मे कुअवसरों मे, सुकाल मे और अकाल मे। तात्पर्य्य यह कि किसी समय मे इन दोनों को एक दूसरे से नजात नहीं मिलती और यह एक दूसरे की निगाहों से कुछ घड़ियों के लिए भी दूर नहीं रह सकते, दोनों मानों एक पिंजरे में कैद हो जाते हैं, जहां नियम यह है कि हरवक्त साथ रहें और एक मिनट के लिए भी कोई किसी की उपस्थिति से अपनी रक्षा न कर सके।

तुम्हारे हृदय को किसी तरह से भी चोट पहुँचाने के लिए मैं नहीं कहती, किन्तु सोचो, तम कवि थे, चित्रकार थे, तुम कला कौशल के प्रेमी थे, तुम कल्पना के ही समुद्र में सदा स्नान करना चाहते थे। गृहस्थी के कामों में लीन—कभी तरकारी बनाते, कभी झाड़ू बुहारू का प्रबन्ध करते, कभी अचार और मुरब्बों की फिक्र करते, आटा सानते दिखाई देने पर मैं तुम्हारी नज़रों में और ही दिखाई देती। कविहृदय,संसार की इन नितान्त आवश्यक किन्तु कविता, कल्पना और कलाविहीन बातों मे मुझको संलग्न देख, मुझसे दूर भागता और तुम्हारा प्रेम-सूर्य अस्ताचलगामी हो जाता। यह भी स्मरण रहे की उस समय तुम्हारी आय कम थी, यह संभव न था कि मैं बहुत से दास दासियों को रख लेती, वह सब इन कामों को करते और मैं रंगबिरंगी सारियां पहिने, तुम्हारे चित्रकार मस्तिष्क की पिपासा की शांति के लिए हंसती बोलती, मनहर चित्र के समान तुम्हारे सामने रहती, तुम्हारे मनोरंजन के लिए बोलने हसने और गाने वाली गुड़िया बनी रहती। गोपी! मेरे लिए और भी कठिनाइया थीं। तुम आदर्शवादी हो तुम इसके मर्म को नहीं समझोगे, किन्तु संसार का तथ्य सत्य यही है कि आवश्यकताएं बनी ही नहीं वरन् बढ़ती रहती हैं, किन्तु प्रेम काफूर की भांति

दिन दिन आयु में लीन होता रहता है। प्रेम काफूर होता रहता है किन्तु आवश्यकताएं शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कलाओं के समान बढ़ती रहती हैं। पैसेकी कमी, दिन रात उसके लिए, खींचतान और उसके लिए माथापच्ची किसी भी मनुष्य के समस्त गुणों का धीरे धीरे ह्रास कर देती है। रुपये की चमकती आभा और उसके प्रकाश से चरित्र में हजारों छिद्र होते हुए छिपे भी रहते हैं। पैसे का विकाश और प्रकास दोनों ही कुछ विचित्र हैं। पैसे में बड़ी करामात है। पैसेकी कमी ऐसी तथ्य वस्तु है कि कल्पना और उससे पोषित संसार के समस्त सर्वश्रेष्ट गुणों को सहज ही में नष्ट कर देती है। संसार का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य, यदि उसका अधिकतर समय अपनी रोटी के लिए रोज पैसा जमा करने की फ़िक्र में कटे, कुछ ही समय बाद निकम्मा मनुष्य हो जायगा।

अब इसकी चर्चा व्यर्थ है। हमारी तुम्हारी कथा कभी की अन्त हो गई। सम्भव तो नहीं किन्तु असम्भव भी नहीं कि तुम्हारे मस्तिष्क के किसी बिसराए हुए विस्मृत कोने में भी मेरा अब निवास न हो, किन्तु मैं बैठे बैठे कभी कभी पुरानी बातों को सोचा करती हूं और एक प्रकार से सत्य और तथ्य बातों पर मनन किया करती हूं। ईश्वर ही जानता है कि मैं लखपती विवाह के इच्छुक लोगों की परवाह न कर तुमको, तुम दरिद्र भी होते तो, वर लेती, चक्की पीस और दूसरों का जूंठन उठा तुम्हारी सेवा करते हुए अपने को सौभाग्यवती समझती, किन्तु गोपी! विवाह के लिए तुम्हारी सृष्टि ही नहीं हुई थी, तुम विवाह के उपयुक्त न थे।

संसार में बहुत से मनुष्य एक एक कर अपने मायामय स्वप्नों और सुखमय-भ्रान्तियों का अन्त देख अधीर नहीं होते, वे अपने सुख-स्वप्नों को तथ्य संसार की बलवेदी पर बलिदान होते देख विचलित नहीं होते, वे धीरे धीरे क्रमशः मायामय स्वप्नों को नीरस, मायाहीन संसार की तथ्य बातों में बदलते देख अशान्त न

होकर धीरज धारण कर सकते हैं, और कुछ न सही तो गृहस्थी के नाम पर, बाल बच्चों के नाम पर, कल्पित सुख-स्वप्नों से विहीन वैवाहिक-जीवन को वहन कर लेते हैं किन्तु तुम यह न कर सकते तुम्हारे लिये यह सब घुल घुल कर मरने के समान होता और मैं इन सारी तथ्य, पुकार पुकार कर अपने अस्तित्व का ज्ञान कराने वाली, बातों को आंखों की ओट नहीं कर सकती थी। विवाह की उत्सुकता, कौतुहलता, उसकी नूतनता, विवाह का जोश, विवाह के कल्पित सुख-स्वप्न, गौने की ज्योनार के साथ ही या दो चार दिन बाद में अपने अस्तित्व को खो बैठते हैं और उसका खमीयाजा ही रह जाता है। तुम आदर्शवादी हो, स्वप्नों के संसार में उड़नेवाले हो, तुम चाहे न मानो संसार का एक बड़ा जबर्दस्त सत्य यह है कि विवाह की प्रसन्नता और जोश बहुत जल्द समाप्त हो जाता है, विशेष कर स्त्री के सम्बन्ध में।

विवाह, एक प्रेमी को, जब वह पति का बाना पहिनता है— is the end of illusion and the end of romance, सुख-भ्रान्तियों का अन्त कर देता है, क्योंकि विवाह के कुछ ही दिनों बाद प्रेम का नशा उतर जाता है। हां, साधारण मनुष्यों के लिए, जो विवाह से बहुत आशा नहीं रखते या उसकी नींव पर सुख-स्वप्नों का महल नहीं खड़ा किये होते या जो पत्नी को विवाह के पहिले जानते ही नहीं या जो विवाह को एक धार्मिक दृष्टि से देखते हैं और उसे कर्तव्य और गृहस्थधर्म पालन का एक आवश्यक अंग समझते हैं, या जिनका Courtship प्रेमालाप प्रेमियों की भांति विवाह के बाद आरंभ होता है, विवाह के बाद भी कुछ काल तक उसके मायामय स्वप्नों को बुदबुद के समान पैदा होते देख सकते हैं और प्रसन्न रह सकते हैं। किन्तु अफ़सोस तुम्हारी गणना इन पीछे की श्रेणी के मनुष्यों में नहीं हो सकती थी।

गोपी! बार बार मैंने तुम्हारी दूसरी प्रेमिका के तुम्हारे मित्र के साथ विवाह कर लेने पर विचार किया है। मैं यह सोचा करती थी कि क्या दूसरी ने भी तुमको उतनी ही पीड़ा पहुँचाई जितनी कि मैंने, मैं तुम्हारे कष्ट के समय में, तुम्हारा हाथ पकड़ कर तुमको सान्त्वना देना चाहती थी, किन्तु यह सब बहुत पुरानी बातें हैं। अस्तु।

अगर पिछले वर्षों में अपने हृदय की समस्त कविता को तुमने देश-निकाला नहीं दे दिया है तो मुझको भय है कि अभी तक जीवन में कई बार इसी तरह से ठोकरें खाओगे। तुम निकम्मी स्त्रियों के प्रेम में अन्धे होकर उनके आदर्श-देवी होने का स्वप्न देखा करोगे, तुम उनकी सहायता कर अपने आदर्शों की सिद्धि का स्वप्न देखा करोगे और आंख खुलने पर विधि को कोसोगे।

हम स्त्रियां वास्तव में पुरुषों की भाँति इन बातोंमें बहुत कम ठोकरें खाया करती हैं, सिर्फ इसी कारण से कि हम लोग पुरुषों को, प्रकृति, स्वाभाविक ज्ञान, पशुबुद्धि, तात्कालिक ज्ञान, सहज अन्तर्ज्ञान या इसी तरह की बातों से जान लेती हैं, किन्तु इसके विपरीत पुरुष स्त्री को अनुभव के बाद ही जानता है। प्राकृतिक ज्ञान की अपेक्षा अनुभव का ज्ञान अधिक समय चाहता है और कष्टकर है यह तुम भी मानोगे। यही वजह है कि स्त्रियों की राय पुरुषों के सम्बन्ध में उतनी अनुदार नहीं है जितनी कि पुरुषों की राय स्त्रियों के सम्बन्ध में है। हम लोग बिना विलम्ब के एक निकम्मे, हीन, छली, कपटी पुरुष को पहिचान लेती हैं और उससे फिर कोई सरोकार नहीं रखतीं, किन्तु पुरुष एक निकम्मी स्त्री को अनुभव के बाद और उससे बुरी तरह से कष्ट पहुँचाये जाने पर ही पहिचान पाता है और तब उसका सहज बाल-हृदय चीत्कार कर कहने लगता है "स्त्रियाँ चंचल होती

हैं, विश्वास के योग्य नहीं होती, अस्थिर होती हैं, अव्यवस्थित-चित्ता होती हैं और सभी स्त्रियाँ एक समान हैं"।

प्यारे गोपी ! यह मर्दों का फैसला बिलकुल गलत, अन्यायपूर्ण और बेबुनियाद है। अगर स्त्रियाँ, पुरुषों की माताएं, ऐसी होतीं तो आज पुरुषसमाज इस योग्य न होता कि जल,अग्नि और वायु पर भी वह अपना प्रभुत्व जमा सकता। प्रत्येक स्त्री अन्य स्त्रियों से ठीक उसी तरह से भिन्न होती है जैसे कि प्रत्येक पुरुष अन्य पुरुषों से भिन्न होता है किन्तु यह होते हुए भी समस्त स्त्रियों में एक समानता होती है और वह यह है कि हम में से प्रत्येक, पुरुषों के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ स्वप्नों की आदर्श और आराध्य देवी बनने की पूर्ण क्षमता रखती है। हम में से प्रत्येक किसी भी पुरुष के कल्पनातीत सुख-स्वप्नों को चरितार्थ करने वाली हो सकती है, केवल यदि पुरुष हम में विश्वास रक्खें और अपने सुख-स्वप्नों, आदर्शों और सिद्धान्तों को कल्पना के रुपहले, चमकते हुए सूत्रों से ग्रन्थित न कर, मानव-हृदय के अस्थिर, क्षीण, क्षणभंगुर, नाज़ुक, फ़ानी और निर्बल तन्तुओं से ग्रन्थित करें।

गोपी ! यह हम लोगों का अभाग्य है, क़ुसूर नहीं कि हम लोग तुम्हारे सदृश पुरुष के लिए भी सांसारिक तथ्य जीवन से इन्द्र सभा की कहानियां नहीं बना सकतीं। पांच ही वर्ष के वैवाहिक जीवन के बाद, पत्नी का चुम्बन करते हुए भी अगर पुरुष अपने हृदय के प्रत्येक स्पन्दन को सुनता रह सकता है और गिन सकता है और अगर अन्धकार में से अपनी पत्नी की आवाज़ सुन उसके पेट में दर्द होने लगता है तो इस सब के लिए विधि और सृष्टि के प्रबन्धकों को ही उसे दोष देना चाहिये। इश्क़, मोहब्बत, प्रेम, ठंडी-गर्म-सर्द आहें, हृदय की मीठी मीठी, दुखदायी, साथ ही रसीली, रसभरी, मनमुग्धकारी, मज़ा देती हुई पीड़ा और इसी तरह के अन्य घातक किन्तु मज़ेदार कष्ट वास्तव में वे उपाय हैं जिनसे प्रकृति

अपने शिकार को बलिवेदी पर लाकर उपस्थित करती है, और यह सब करने के थोड़े दिनों ही बाद, उसकी आंखों से प्रेम के जादू का पर्दा उठा उससे कह देती है—"अब देखो तुम क्या हो और तुमने क्या किया है !"

गोपी ! कुछ दिनों बाद सुन्दर से सुन्दर सर्वश्रेष्ठ मुखड़ा आभाहीन हो जाता है। समय ने अगर उसकी श्री को नहीं हर लिया, जो कि असंभव है, तो भी हर घड़ी के सहवास के कारण उसकी विशेषताएं लोप हो जाती हैं और वह साधारण दिखाई देने लगता है। प्रियतम की सर्वश्रेष्ठ हृदय की मृदुलता और आत्मा की मधुरता को लोग स्वाभाविक और प्राकृतिक समझने लगते हैं, उसकी भी विशेषता के लिए वे अपने को बड़भागी नहीं समझते और धीरे धीरे रक्त बिम्बाधरों का चुम्बन, जो एक समय मे शरीर में विद्युत का संचार करता था, जो मधु नहीं अमृत मिश्रित था, जिस पर संसार, सर्वस्व और भविष्य सहज ही में वार दिया जा सकता था, फीका और नीरस मालूम होने लगता है। यह प्रकृति का ही एक नियम है कि इन्द्रियां निरन्तर के रसास्वदन से अपनी स्वादन-शक्ति खो देती हैं । तुम एक सुगन्धमय फूल को सूंघ सकते हो, किन्तु सूंघते सूंघते एक समय आ जाता है, जब उसका पास रहना भी सहन नहीं कर सकते, तुम उससे ऊबसे जाते हो। साथ ही बहुत से ऐसे इत्र हैं जो दूर से दूसरों के पास रहते हुए ही मस्तिष्क पर अधिकार कर सकते और मजा दे सकते हैं। संसार का यह एक बहुत ही दुःखदायी सत्य है जिसके सामने मानव मस्तिष्क को सर झुकाना पड़ता है, और मेरा यह विश्वास है कि आज भी प्रथम प्रथम इस सत्य के सामने सर झुकाने के लिए कहने वाले व्यक्ति को तुम माफ नहीं कर सकते। मैंने इस व्यक्ति के होने के लिए इसीलिए साहस नहीं किया।

मुझको कुछ इसी तरह की बातों का सदा भय रहता था। देखो यह एक पत्र का अंश है जो एक विवाहित मनुष्य ने अपने एक अविवाहित मित्र को लिखा था और जो मेरे हाथ कहीं से लग गया था—

"... ... ...कभी कभी मुझको बोर्डिङ्ग के कमरे की याद आती है जब हम भी तुम्हारे पास होते थे, जब घूमने, फिरने, सैर सपाटे में एक बहार सी थी, जब जीवन एक मादक वस्तु के समान था और अधिकाधिक हम उसमें मग्न और मस्त हो सकते थे। जब प्रत्येक स्त्री एक Challenge (चुनौती) के समान थी और उसके हृदय पर अपना प्रभाव जमाने की इच्छा हृदय को मदोन्मत्त कर देती थी, जब उनसे बातें करने में और मस्तिष्क की सूक्ष्म से सूक्ष्म गति के प्रदर्शन में एक आनन्द सा आता था। अब तो तृप्ति और सन्तोष की भावना ने मालूम पड़ता है, शरीर और मस्तिष्क के तीखेपन को ही नष्ट कर दिया है। मुझे कोई कष्ट नहीं है, सुख ही है, मेरी इच्छाओं की पूर्ति, इससे पहिले कि मैं उनका ख्याल भी करूं, हो जाती है। फिर भी वह सुख नहीं है। एक अजीब Dullness (उदासीनता, अकर्मण्यता, काहिली, अशक्तता) सी छा गई है और एक घड़ी की भांति जीवन की घड़ियों को मैं गिनता जा रहा हूं। तुम कब आ रहे हो? तुमसे पुराने स्वतंत्र चिन्ता विहीन दिनों की बातें कर, वर्तमान या भविष्य में नहीं, भूत में स्नान कर कुछ समय के लिए फिर युवा और प्रसन्न होना चाहता हूँ...... कामिनी अच्छी है, सुशीला और मिष्टभाषिणी भी है, प्रत्येक मिनट उसको हमारी फिक्र रहती है, किन्तु दोस्त, अजीब बात है, अब उसकी बातों में हमें वह सुख नहीं मिलता जो उस समय मिला करता था, जब वह अविवाहिता थी और हमारी स्त्री न थी। वह तो वही है, पहिले से कहीं अधिक वह हमको प्रसन्न रखने की फिक्र

करती रहती है, किन्तु मालूम नहीं उसकी वह मादकता, अब उसमें क्यों नहीं है • ”

गोपी ! तुमने उपर्युक्त पत्र को सावधानी से पढ़ा ? तुम्हारे साथ विवाह कर तुम्हारे हृदय में अपनी ओर से ऐसे भावों को उदित करना मेरे लिए असह्य होता, इसीलिए तुम्हारे हजार अच्छे होते हुए भी मैंने तुमसे विवाह करना स्वीकार नहीं किया।

एक फ्रांसीसी लेखक ने विवाह की चर्चा करते हुए लिखा है “It is a sweet society of life, full of constancy, trust and infinite number of useful and solid services and full of mutual obligations”

“यह जीवन की सरस, सुमधुर संगत है, जो स्थिरता, दृढ़-भक्ति, परस्पर विश्वास, अगणित उपयोगी तथा सार्थक सेवाओं और पारस्परिक कर्त्तव्यों से परिपूर्ण है।”

गोपी ! कहां उपर्युक्त बातें और कहां युवा अवस्था के मद में हम लोग तारे भरी रातों और दिलवर के शौक और मोहब्बत का स्वप्न देखा करते थे, हम लोग समझा करते थे कि जीवन की इन घड़ियों का शौक, लुत्फ और हमारा जोश कभी कम ही नहीं होगा।

क्या तुम अब भी नहीं समझ सकते कि हमारे तुम्हारे लिए वैवाहिक सम्बन्ध कितना असम्भव था !

मैं अब तुम से विदा लेती हूं, जैसा कि मैंने पहिले कभी तुमको छोड़ा था, और विदा लेते समय इतना ही कहना चाहती हूं कि तुम प्रसन्न और सुखी रहो और तुम्हारे स्वप्न सदा नवजीवन का सचार करनेवाले हों।

तुम्हारी—

मनोरमा

पति-पत्नी के झगड़े

मनोरमा-बाग,
प्रयाग
१२-१२-१६२७

"Discord is likely to arise in marriage when partners forget that affection—is like a fire which needs frequent replenishing it withers in the cold blast of indifference and neglect."

रसिक प्यारे,

लिफाफे पर मालूम नहीं कितने वर्षों बाद मेरे अक्षर देख तुमको आश्चर्य हुआ होगा, यह भी सम्भव है कि तुमने उनको पहिचाना भी न हो, यद्यपि इस बात को मेरा हृदय मानने को तैयार नहीं कि जब एक समय में तुम मेरी ही आंखों से देखते थे, मेरे ही कानों से सुनते थे, मैं ही तुम्हारी नयन-ज्योति और कौमुदी थी, मैं ही तुम्हारे जीवन की स्वांस थी, तब तुम मुझको इस प्रकार भूल सकते हो कि मेरे अक्षरों को देख कर उनको पहिचान भी न सको। खैर, लिखने का कारण यह है कि आज प्रियम्वदा और उसके बच्चों को चायपानी के लिए बुलाया था। बच्चे बगीचे में खेलने लग गए और पुरानी सखियां, बाग में इसी

कदम्ब के नीचे, जिसके नीचे कभी हम तुम वैठा करते थे और जिसके नीचे नित्य वैठ कर और तुमसे वाते कर मै तुम्हारे प्रेम मे पागल सी होगई थी, और अपनी सुधवुध खो वैठी थी, वातो मे लीन होगई। वातो वातों में प्रियम्वदा ने तुम्हारा और तुम्हारी स्त्री का ज़िक्र किया। उसको क्या मालूम कि किसी ज़माने मे हम तुम क्या थे। तुम्हारा जिक्र होने से स्वभावत. मुझको उसमे दिलचस्पी होगई, मैंने खोद खोद कर सव पूछा और जाना। प्रियम्वदा वातो में लीन थी किन्तु मेरे सामने सहसा तुम्हारा वह चित्र नाच रहा था जव तुम कभी अत्यन्त दु.खी और कष्ट मे होने पर मेरे पास आकर ,नीरव वैठ गये थे और मैं तुम्हारे दु:ख को दूर करने के लिए संसार की वहुमूल्य से वहुमूल्य वस्तु किसी भी मनुष्य को दे सकती थी जो तुम्हारे दु:ख को दूर कर तुमको सुखी और सदा सुखी वना देता। अपनी प्रशंसा नहीं करती, अव तुम पर-पुरुष हो, किन्तु प्रियम्वदा की वातें सुन मेरी दशा फिर उसी दिन की सी हो गई थी। तुम दु:खी हो, यह सुन कर हृदय-तन्तु टूटने से लगे थे, ऐसा मालूम होता था मानो कोई गृद्ध हृदय पर वैठ कर अपनी चोंचों से मेरे हृदय की रक्त-नाड़ियों को खींच रहा है। अगर उस समय तुम मेरे पास या सामने होते तो पर नारी औरासच मानो सपने मे भी पर-पुरुष की इच्छा न रखने वाली होती हुई भी मैं तुमको प्रसन्न करने की उसी तरह से उतनी ही फिक्र करती जितनी कि मैंने कभी की थी या किसी जमाने में किया करती थी। आज पत्र लिखने का कारण भी यही हुआ है। तुम्हारी स्त्री निरुपमा नाख़ुश हो मायके चली गई है, गोद की लड़की उसके साथ है, वच्चा तुम्हारे पास है।

मैं तुम्हारी प्रकृति से भले प्रकार परिचित हूँ, मै जानती हूं कि तुम सोच रहे होगे कि अगर किसी को यह सव मालूम होने के

पहिले घटनी फट गई होती और तुम उसमें सना गए होवे तो अच्छा था। मैं जानती हूँ कि तुमने ऐसी कोई घटना न घटे इसके लिए प्रयत्न भी भरसक किया होगा, पर भावी प्रबल। इस समय तुम अत्यन्त दुःखी होगे, तुम्हारी आदर्शवादिनी भावुकता और कोमल प्रकृति तुम्हारे दुःख के बोझ को और भी असहनीय बना रही होगी, किन्तु मुझको विश्वास है कि तुम कोई बात, बिना समझे बूझे, जल्दी में नहीं कर डालोगे। तुम त्यागी, सहनशील और दूसरों के सुख के लिए सुख से दुःख सहन करनेवाले हो, तुम्हारी प्रकृति सरल है, तुम स्वप्न में भी किसी का अप्रिय नहीं चाहते और न किसी को कष्ट ही पहुँचाना चाहते हो ऐसी दशा में मेरी समझ में नहीं आता कि तुमने क्या किया, कैसे मतभेद इतना बढ़ गया और यहाँ तक नौबत कैसे पहुंच गई। तुम जब-तक सारी बातों को न बताओ मैं अधिक नहीं जान सकती। प्रियम्वदा से जो मालूम हुआ वह एक दृष्टि से पर्याप्त होता हुआ भी अपर्याप्त है, फिर भी मैं तुमको जानती हूं, तुमसे अच्छी तरह से परिचित हूँ इसलिए मैं बहुत कुछ अनुमान कर सकती हूँ और आज इसी अनुमान के बल पर, अपने पुराने नाते से, तुम्हारे दुःख में दुःखी होने को, साथ ही तुम्हारा उसमें उद्धार कराने को यह पत्र लिख रही हूँ।

प्यारे रसिक! इसके पहिले कि मैं कुछ और कहूं मैं यह कह देना चाहती हूँ कि तुम्हारा वैवाहिक जीवन फिर उसी आनन्द के साथ आरंभ हो सकता है, और इस तरह से कि जो हुआ है उसकी कभी जीवन में छायाभी दृष्टिगोचर न हो और वर्तमान घटना दुःखदायी न होकर, प्रेमवृद्धिकर हो जाय और सदा के लिए तुम लोगों के जीवन में एक हंसने और मखौल करने की बात रह जाय। इस समय की मनोवृत्ति में तुमको यह असम्भव प्रतीत होगा किन्तु मानव प्रकृति का मुझको कुछ ज्ञान है, साथ ही

मैं स्त्री हूँ और तुम पुरुषों की अपेक्षा अधिक व्यवहारिक हूँ और इसलिए इन बातों के सम्बन्ध में एक स्त्री की बात अधिक विश्वसनीय होनी चाहिए। सच मानो रसिक!

"बड़ा मज़ा उस मिलाप का है
जो सुलह होजाय जंग होकर"

क्या हमारी तुम्हारी कभी लड़ाई नहीं हुई थी, क्या जब हम तुम मिला करते थे क्या हमने या तुमने अत्यन्त दु:खी हो कभी यह नहीं सोचा कि बस अब अन्त हो गया, असम्भव है और हम दो फिर एक नहीं हो सकते, हम लोग एक दूसरे के साथ सुखी नहीं हो सकते, दोनों की प्रकृति में, दोनों के आदर्शों में और दोनों की चित्तवृत्ति और स्वभाव में बड़ा अन्तर है। और क्या यह सब होने के बाद, दो, चार, दस दिन एक दूसरे से दूर रह कर हम दोनों फिर एक नहीं हो गए और सब भूल कर ऐसे सुखी नहीं हुए जैसे कभी कोई अप्रिय बात कभी हुई ही नहीं थी। ठीक इसी तरह से तुम और निरुपमा फिर एक हो सकते हो और जो हुआ है उस पर ज़िन्दगी भर क़हक़हे लगा सकते हो, अगर तुम मेरी बातों को मानो और विश्वास कर मेरे उपायों से काम लो। मुझमें तो तुम्हारा विश्वास होना चाहिए।

तुम्हारे जीवन में ऐसी घटनाएँ घटेंगी, तुम जिस पर हज़ार जान से निसार रहो वह भी तुमसे असतुष्ट हो सकेगी, यह मेरा पहिले से ही अनुमान था और सच मानो इस विश्वास के कारण ही मैं तुमसे जीवन भरका सम्बन्ध करने को सहमत नहीं हुई थी। मेरे नाहीं करने पर तुम बहुत दु:खी हुए थे, तुम्हारे दु:ख को मैं अनुभव करती थी, मैं भी उससे दु:खी थी, किन्तु यह सब होते हुए भी मैं तुमसे विवाह कर जो आज हुआ है वह देखना नहीं चाहती थी और न आज की निरुपमा की स्थिति में अपने को रखने का मैं आयोजन ही कर सकती थी।

बुरा न मानना, तुम समझ सकते हो कि तुम्हारे इस दुःख में चोट पहुँचाने की मेरी इच्छा कभी नहीं हो सकती, मैंने यह लिख दिया केवल इसलिए कि तुमको दिखला सकूं कि तुम्हारे चरित्र में कौन सी ऐसी बातें हैं जिनसे जो हुआ उसका होना संभव था। मैं निरुपमा को अच्छी तरह से नहीं जानती, दो चार बार, इधर उधर ब्याह शादियों या महिला समिति की बैठकों में उसे देखा है, किन्तु मैं उससे कभी अधिक मिली जुली नहीं, एक तो इसलिए कि वह मुझसे अधिक खूबसूरत थी, लोग ऐसा कहते थे, उसे इसका ज्ञान था और इसे वह दिखाती भी थी, दूसरे वह अपने को हरसमय लिए दिए रहती थी साथ ही उसे कुछ अपने धन का भी अभिमान था। अगर उससे सखी भाव होता और मेरे हस्तक्षेप या दिलचस्पी लेने को वह अनधिकारचेष्टा और अनुचित न समझती तो मैं प्रियम्वदा से सब बातें सुनने पर तुरन्त उसके पास जाती और उसे समझा बुझा कर मना लेती और तुम्हारे नजर कर देती, किन्तु यह सम्भव नहीं है, दूसरे मेरा ख्याल यह भी है कि ऐसे झगड़े पति पत्नियों में कभी होने नहीं चाहिएँ और हो जायँ तो आपस में ही तय होने चाहिएँ। अगर पति और पत्नी तनिक भी अक्ल रखते हों तो बातें इतनी बढ़नी ही नहीं चाहिएँ, यूँ मतभेद और कभी मनमुटाव का हो जाना सम्भव ही नहीं, स्वाभाविक है, क्योंकि जो हो, हैं तो दो व्यक्ति, एक तो नहीं। निरुपमा से मेरा कभी स्नेह न था, इसलिए नहीं, किन्तु मेरा ख्याल है कि किसी भी स्थिति में जब तक वह ऐसी न हो जाय कि वह ला-इलाज हो किसी स्त्री को भी अपने पति की शरण छोड़ कर उसके गृह से किसी दूसरी जगह हट कर नहीं जाना चाहिए, दूसरी जगह कितनी ही अपनी क्यों न हो, विशेष कर जब पति पत्नी ही साथ रहते हों नन्द, जेठानी या सासका झगड़ा न हो।

खासी लड़ाई होजाने के बाद भी "वात्स्यायन" का उपदेश यही है कि पत्नी गृह के द्वार के बाहर पैर न निकाले। "अतिक्रुद्धापि तु न द्वारदेशाद्भूयो गच्छेत्"। एक लड़ाई का सीन वात्स्यायन ने इस प्रकार खींचा है—तत्र सुभृशः कलहो रुदितमायासः शिरोरुहाणामवताडनम् प्रहणनमासनाच्छयनाद्वा मह्यां पतनम् माल्यभूषणावमोक्षो भूमौ शय्या च। तस्य च वचनमुत्तरेण योजयन्ती विवृद्धक्रोधा सकचग्रहमस्यास्यमुन्नमय्य पादेन बाहौ शिरसि वक्षसि पृष्ठे वा सकृद्द्विस्त्रिरवहन्यात्। द्वारदेशम् गच्छेत्। तत्रोपविश्याश्रुकरणमिति। अतिक्रुद्धापि तु न द्वारदेशाद्भूयो गच्छेत्। दोषवत्त्वात्। इति दत्तकः। तत्र युक्तितोऽनुनीयमाना प्रसादमाकांक्षेत्। प्रसन्नापि तु सकषायैरेव वाक्यैरेनम् तुदतीव प्रसन्नरतिकांक्षिणी नायकेन परिरम्भेत्।*

उपर्युक्त सभी बातों से मैं सहमत नहीं मैं द्वार देश तक जाने के भी खिलाफ हूं, यह प्रेम की लड़ाई का दृश्य है और मेरी समझ

---

* पत्नी अत्यन्त अधिक कलह करे, वह बुरी तरह रोवे, बालों को खींच डाले, सिर छाती आदि को हाथों से कूटे, पृथ्वी पर सिर पटके अपने आसन या शय्या से (जिस पर बैठी हुई थी) पृथ्वी पर गिर पड़े। माला भूषण आदि को दूर फेंक दे, तथा पृथ्वी पर लोट जाय। पत्नी और भी अधिक क्रुद्ध होकर पति की बातों का उत्तर देती हुई उसके बालों को पकड़ कर, मुख को ऊपर उठा कर पैर से उसके बाहुओं में, छाती में और शिर में एक बार, दो बार तीन बार मारे। घर से निकलने की धमकी देती हुई द्वार तक चली जाय। वहां बैठ कर आँसू बहाए, किन्तु अच्छे कुल की स्त्री बहुत क्रुद्ध होने पर भी द्वार से बाहर कभी न जाय, क्योंकि यदि वह द्वार देश से बाहर जायगी तो लोग उसको "व्यभिचारिणी" कहेंगे। दत्तक आचार्य का भी यही मत है। पति के युक्तिपूर्वक मनाने पर प्रसन्न होकर कड़े शब्द कहती हुई भी पति से प्रेम करने की इच्छा से आलिङ्गन करने को तैयार हो जाय .....

में द्वार देश का अर्थ शयन के कमरे का दरवाजा ही है। घर के दरवाजे पर जाना अनर्थ होगा क्योंकि यदि पति भी क्रोधित हुआ और उसने अनुनय विनय कर बुलाने की फिक्र न की तो या तो माननी का मान भङ्ग होगा जो हानिकर है या उसे अपने मान की रक्षा के निमित्त ही घर से बाहर निकलना जरूरी जान पड़ेगा। द्वार देश पर बैठ कर रोने या चीत्कार करने के भी मैं विरुद्ध हूं। साथ ही पति की इस प्रकार पूजा की जाय या लड़ाई इस तरह की हो, इसे भी मैं पसन्द नहीं करती। पति का हाथ पैर चलाना या पत्नी का दोनो ही हेय और बुरा है।

ससार मे कोई पति पत्नी नहीं हो सकते और न कोई दो प्राणी ही हो सकते हैं, जो निरन्तर एक दूसरे से खुश ही रहें जिनमें भूल कर भी मतभेद या क्षणिक अनबन न हो। मतभेद, कभी की छेड़छाड़ तनिक अस्थायी अनबन, प्रेम की मोर्चा लगी या गोठिल तलवार को और पैनी और तेज कर देती है, वह कभी कभी तेल की बनी चीजों की भांति, शौक को बढ़ानेवाली, मजेदार, चरपरी, सुस्वादु और हितकर होती है। घी और तेल की तरह मेल और अनबन भी है, किन्तु जो हो, हमारा अपना ख्याल यह है कि पति-पत्नी के झगड़ो मे दबने वाला या यूं कहिये कि मेल के लिए पहिले हाथ बढ़ाने- वाला सदा बाजी मारता है इससे मान मर्यादा मे बट्टा नहीं लगता और वे मूर्ख हैं, चाहे पुरुष हो या स्त्री, जो यह समझते हैं कि एक दो दिन मुंह फुलाये रहने से या एक दूसरे से न बोलने से, कोई लाभ होता है या पहिले, दूसरे के अनुनय विनय करने से पहिले न बोलने वाले का मान बढ़ जाता है।

मेरा अपना अनुभव यह है और मैं तुमको विश्वास दिलाती हूं कि यह बिलकुल ठीक है कि मेल के लिए अग्रसर होने वाले का मान दूसरे की नजर में फौरन बढ़ जाता है और जबान से कुछ

कहे या नहीं उसका हृदय कृतज्ञता के भाव से भर जाता है। स्त्री अगर चतुर हो तो उसे सदा ऐसी स्थितियों में अग्रसर होना चाहिए, क्योंकि इससे वह प्रियतम के हृदय पर शीघ्र अच्छा अधिकार जमा लेगी*। स्त्री की भूल हो तो कोई बात ही नहीं, किन्तु अगर उसकी भूल तनिक भी न हो सरासर अन्याय पति का ही हो तब भी चतुर स्त्री को मेल का हाथ बढ़ाना चाहिए और यह जानते हुए कि ग़लती उसकी नहीं है, यही दर्शाना चाहिये मानो ग़लती उसी ने की हो और उसके लिए वह दुःखी हो। पुरुप, अगर वह पुरुप है यह देख कर कि उसकी भूल पर भी पत्नी परदा डाल रही है और स्वयम् क़ुसूर अपने माथे ले रही है, पत्नी की इस पर्दापोशी से मन ही मन प्रसन्न होगा और पत्नी का आदर उसके हृदय में बढ़ जायगा।

किन्तु निरुपमा से मुझे कोई मतलब नहीं, न मैं उसे जानना चाहती हूँ और न उसे किसी तरह की सीख ही देना चाहती हूं, जिसमें उसके समान तुमको संसार में कोई स्त्री न दिखाई दे और मेरी स्मृति भी जाती रहे। मैं तुमको ही बतलाना चाहती हूँ और इसलिए एक स्त्री पर अधिकार जमाने का एक सरल गुर तुमको बतलाये देती हूँ। स्त्री का कर्तव्य क्या है यह मैं ऊपर ही कह चुकी, किन्तु यदि पुरुप चतुर हो, और उसमें रसिकता की तनिक भी मात्रा हो तो ऐसे अवसरों से पुरुष को सदा लाभ उठाना चाहिए। सर्वथा दोपी स्त्री हो तब भी माफी और क्षमा पुरुप को ही मांगनी चाहिए, यह स्त्री का हक है, और मेल

---

*किन्तु मनस्विनी को आत्माभिमान का भी सदा ख्याल रखना चाहिए। आत्माभिमान और स्त्रियोचित अधिकार और सत्वों की बातों में एक मनस्विनी स्त्री को सदा अकड़ी ही रहना चाहिए। —कृ० का० मा०

के लिए पुरुष को ही अग्रसर होना चाहिए। वात्स्यायन ने तो पत्नी को प्रसन्न करने के लिए पति को ऐसा भी उपदेश दिया है—

"तत्र शुचरूपेण साम्ना पादपतेन वा प्रसन्नमनास्तामनुनय-न्नुक्रम्य शयनमारोहयेत्"। ❀

हम लोगों में स्त्री की हकीकत क्या है, जैसी रहन सहन है, उसमें सच पूछा जाय, कहा चाहे जो जाय, तो वह पैर की जूती के समान है, पुरुष से रूठ कर वह कर ही क्या सकती है, अपनी टिकुली और टीके तक के लिए भी तो वह पति के आश्रित होती है।† वह क्या मान कर सकती है, कितने दिन रूठी रह सकती है, कितने घंटे न बोल कर वह अपना गुजारा कर सकती है? पुरुष, जिसमें रसिकता हो, जो स्त्री के हृदय में सदा आदर का स्थान चाहता हो, उसे सदा ध्यान में रखना चाहिए कि स्त्री को अपनी इस हीनदशा का ध्यान कभी न होने दे, उसके मान को कभी भग न होने दे,'सदा उसकी नजरों में उसका मान बनाये रहे और भूल चाहे स्त्री की हो, किन्तु माफी मांगने के लिए खुद सदा अग्रसर रहे और सदा खुद ही क्षमा मांग कर उसे मना लिया करे, बाद में, कुछ समय के बाद, उसकी भूल उसको बता देना, बातों के मिस, बिना झगड़े की बातों को सामने लाये हुए यह चतुर नायक का कर्तव्य है।

❀ ऐसे समय में पति पत्नी को शान्तिप्रद शब्दों से समझावे और उसके रोने आदि को बन्द कराने के लिए उसके पाव में भी पड़े और उसे प्रसन्न कर पलङ्ग पर उठालाये।

†प्राचीन भारत में स्त्रियों के पास निजी सम्पत्ति स्त्री-धन, वृत्ति या शुल्क स्वरूप में हुआ करती थी। इस सम्पत्ति पर स्त्रियों का ही एकमात्र अधिकार होता था, ठीक उसी तरह से जैसे कि देन-मेहर आदि पर मुस्लिम स्त्रियों का अधिकार होता है!

मैं तुमसे स्त्री-हृदय का राज वतलाती हूं और वह यह है कि ऐसी वातों से वह वहुत जल्द अपना अधिकार अपने ऊपर से खो वैठती है। मेरे पंडितजी यही किया करते हैं। भूल मैं करती हूं, कभी कभी तो जवर्दस्ती, अन्याय मेरा होता है, किन्तु मैं क्या वतलाऊं किस किस तरह से वह मना लेते हैं, यही नहीं मालूम होता कि मैं उनके टुकड़ों से जीती हूं, उनके टुकड़ों पर पड़ी हूं, यही मालूम होता है कि मैं कोई देवी हूं और वह प्रगाढ़ भक्ति और स्नेह से प्रेरित भक्त। या कि मैं एक नासमझ वालिका हूं और वह एक परम स्नेही समझदार मित्र। मैं नहीं कह सकती कि इन वातों से मैं कैसी उनकी सच्ची दासी हो गई हूं यद्यपि कहने के लिए वह मुझको ही मालकिन वनाये हुए हैं। वात यह है कि रसिकता इस वात की अपेक्षा करती है कि प्रियतमा को अपने आश्रित होने और हीनावस्था का ज्ञान न हो, वह अपने को सदा वरावर वाली ही समझती रहे या इसका उस पर फरेव रहे, उसे यह न मालूम हो कि वह वरावर वाली नहीं है और इसलिए उसे दवना पड़ता है, चाहे कुसूर उसका हो या नहीं। तुम नाम से तो रसिक हो, पर क्या तुममें इतनी रसिकता नहीं कि सूक्ष्म में जो कुछ मैंने कहा है, रसिकहृदय से उसका विस्तार कर उसके चमत्कार और महत्व को देखो और फिर उसकी चांदनी मे अपनी निरुपमा की मूर्ति की कल्पना करो ? सच कहो कितना सुखमय जीवन हो सकता है ?

पतिपत्नी की दृष्टि से ही नहीं, वालवच्चों और संसार की दृष्टि से भी ऐसे झगड़े दोनों के सिवाय तीसरे को नहीं मालूम होने चाहिए। पति-पत्नी के झगड़े की अवधि एक रात्रि होनी चाहिए या एक रात्रि और एक दिन, और वह भी उतनी ही देर के लिए जव तक कि पत्नी पति के कमरे से निकल कर दूसरों के सामने नहीं जाती। कमरे से निकलने के पहिले ही मेल हो जाना चाहिए,

चाहे वह मेल सोने के पहिले हो या सुबह के पहिले हो, यदि कोई न सोये, तात्पर्य यह है कि पतिपत्नी में मतभेद की बात न बच्चों को मालूम होनी चाहिए, न घर वाले बड़े छोटों को और न नौकरों और नौकरानियों को। अच्छी बात तो यह है कि मत-भेद होने पर या बहुत नाराज़ी होने पर भी सत्याग्रह किया जाय किन्तु ज़बान से एक भी कड़ुवा या बेजा शब्द न निकले और पत्नी की मर्यादा का और इसका कि वह अपनी स्त्री है, अपने बच्चों की माता है, कुटुम्ब को अधिष्ठात्री देवी और दास दासियों की मालकिन है, प्रत्येक क्षण लिहाज़ रखा जाय। न बोलना, अन-मना हो बैठजाना, न सोना या भोजन न करना, स्वयं कष्ट उठाना, यही दूसरे को, अगर उसमें शिक्षा, शिष्टता और भलमनसाहत है, रास्ते पर लाने के लिए काफी है।

एक दिन की अपनी बात तुमको सुनाती हूं। कुछ दिनों से मैं नित्य ही पंडितजी से लड़ा करती थी। बात यह थी कि वह मुझको तनिक भी समय नहीं दिया करते थे। सुबह उठे, बाहर गये, नित्य क्रिया से फारिग हो, स्नानादि कर दफ्तर में बैठ, मुअक्किलों से बातें कीं, दस बजा, कचहरी भागे, शाम को आये, फिर मुअ-क्किलों ने आ घेरा या दोस्त आ गये, गप-शप होने लगी, भीतर मेरे पास पहुचने तक की नौबत ही नहीं आई। रात्रि हुई, फिर मुअक्किल या दोस्त डट गये, खाने का वक्त हुआ, दोस्त हुए, थालिया बाहर उनके कमरे मे गईं, अगर मुअक्किल हुए तो भीतर कमरे मे आये, मुझको भी दर्शनों का और पांच मिनट बातें करने का सौभाग्य मिला। ब्यालू कर, फिर दफ्तर मे चले गये, मुअ-क्किल सर खा रहे हैं, कागजात दिमाग चाट रहे हैं या दोस्त बैठे हैं, कहीं लेक्चर और मिटिंग का प्रबन्ध हो रहा हे और मैं अपने कमरे में बैठी बैठी सड़ रही हूं, अगर कोई महत्वपूर्ण मुकदमा दूसरे दिन जाते ही कचहरी मे हुआ तो पंडितजी मुकदमे

की तैयारी में लीन ग्यारह बजे तशरीफ कमरे में लाते हैं और मैं छत की कड़ियां गिन रही हूं या आस्मान के तारे। मुझे कालिज की परीक्षा तो देनी नहीं, न मुकद्मा ही तैयार करना है कि पढ़ने ही में अधिकतर समय लग जाया करे। अब पंडितजी ग्यारह बजे जब थके मांदे आये तो फिर मुझे वक्त देने की उनको ताब कहां? वह तो गुलगुले गद्दे और तकिये चाहते और चाहते निद्रादेवी का आलिङ्गन। आते ही बोलते, अभी आप जग ही रही हैं, मेरा जागरण भी खल जाता, बातें करना और उस वक्त मुझको वक्त देना एक बला ही दिखाई देती। मेरी इच्छा यह होती थी कि अब चौबीस घंटे बाद मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, कुछ मुझसे भी बातें करे, मेरी दुःख दर्द की कथा पूछें, मुझसे हँसे बोलें, मुझको सेवा करने का अवसर दें, मुझको भी प्रसन्न करने की चेष्टा करें, वहां इसकी फुर्सत कहां, आते ही पलङ्ग और सभाओं तथा मुकद्मों के स्वप्न में लीन हो जाना। मुझको यह बहुत खलता था, मैं यह सोचा करती थी कि दुनिया की दौलत और वैभव लेकर मैं क्या करूंगी, अगर मेरा पति ही मेरा पति नहीं है। दिन भर मैं उनके आराम की फिक्र करती, समय से भोजन तैयार हो जाय, चाय पानी का प्रबन्ध रहे, ज़रा बराबर उनको किसी बात की तकलीफ न हो, उनकी शान, आन बान में नाम को भी धक्का न लगे। उनके दोस्त आवें, उनकी ख़ातिर का भी पूरा प्रबन्ध रहे। घर और गृहस्थी की झंझट का उनको पता भी न लगे, घर साफ सुथरा रहे, कहीं गर्द गुबार न हो, मक्खियों का नाम ही न हो, नौकरों को भी ठीक वक्त से खाना मिल जाय, सब खुश रहे, जिसमें हज़ार ज़बान से पंडितजी की चारों ओर प्रशंसा ही होती रहे और इन तमाम झंझटों और कोशिशों का पुरष्कार यह कि मुझसे ही एक मिनट बातें न की जायं, मेरी खुशी का प्रबन्ध और प्रयत्न न किया जाय, मैं एक आत्मा और हृदयहीन गुड़िया जिसको प्रचुर धन, बसन

और गहनों की केवल जरूरत है, समझ ली जाऊ । इन्ही बातो के लिए मै जब पडितजी पलङ्ग पर लेट, आखें बन्द करना चाहते मैं झगड़ा करती । धीरे धीरे यह झगडा इतना बढ़ा कि एक दो दिन उनको रात्रि भर मैने सोने ही नही दिया, दूसरे दिन कचहरी में दिन खराब रहा, और मुअक्किलो के माथे गई । पडितजी के पक्ष की बातो को मैं समझती थी, मैं उनकी असमर्थता को अनुभव करती थी, मैं यह जानती थी कि हृदय मे वह मुझसे प्रेम करते हैं, संसार मे मैं ही एक स्त्री उनके लिए हू, मैं जानती थी कि मेरे झगडने से उनको कष्ट बहुत होता है, मैं उसको अनुभव भी करती थी, मैं हृदय से इन सब बातों के लिए दु खी भी होती थी, किन्तु मेरे सामने प्रश्न पति और पति प्रेम का था । यही नही, मैं यह भी सोचती थी कि अगर इसी तरह से धीरे धीरे वह मेरी ओर से उदासीन हो गये तो मेरा जीवन, प्रियतमा का जीवन, तो नष्ट हो ही जायगा, किन्तु इसके साथ ही साथ पडितजी के चरित्र की बहुतसी ख़ूबिया लुप्त हो जायॅगी और उनके आत्मा के सुन्दर विकास में भी कमी झलकने लगेगी, यद्यपि मुझको यह स्वीकार करने मे लज्जा नही है कि परमार्थ की अपेक्षा अधिकतर मैं स्वार्थ से ही प्रेरित थी । मैं यह सोचा करती थी कि मुझको जीवन मे मिला क्या ? पति का मत्त करने वाला प्रेम नही, वयस्क, स्नेही, सच्चे शुभचिन्तक के दयामय स्नेह का साम्राज्य और धन, जन और गहनों का राज्य । खैर मैं इन बातो को तूल नहीं देना चाहती । सूक्ष्म मे यह कहना चाहती हूं कि मैंने त्रियाचरित्र की शरण ली । मैंने यह करना शुरू किया कि जब वह पलङ्ग पर आकर लेटते तब भी मैं फ़र्श पर ही बैठी रह जाती । यह मैं बतला देना चाहती हू कि हम लोग एक ही पलग पर सोते है । दुनिया के विद्वान् इसे स्वास्थ्य के लिए हानिकर कहते हैं और सर्वथा ठीक भी है, पति और पत्नी जो सदा सुखी और

स्वस्थ रहना चाहते हों उनको सदा अलग ही सोना चाहिए, विशेषज्ञों की राय मे दो कमरे तक जरूरी हैं, किन्तु मैंने इसे रवा कभी नही रखा। खैर तो, क़िस्सा यह कि मैं फर्श ही पर बैठी रह जाती। स्नेहवश, दया के नाम पर, मनुष्य होने की हैसियत से, इनसानियत के तक़ाजे वे भी पलङ्ग से नीचे आजाते और मुझको मनाने और खुश करने की चेष्टा करते और इस तरह से घन्टे आध घन्टे मुझसे बातें करते, मुझको प्रसन्न करते और मेरी आत्मा की पिपासा शान्त हो जाती। फिर भी मुझको इन बातों मे पूर्ण प्रसन्नता न होती, क्योंकि मै देख सकती थी कि जो कुछ वह करते थे वह प्रेम के हृदय से प्रेरित न था, वह था सब सभ्यता के नाम पर, मेरे स्त्री होने के नाम पर, अपनी शिक्षा और शिष्टता के नाम पर, एक स्नेही मनुष्य के कृपा की पात्र ललना के प्रति कर्तव्य के नाम पर, और गृह की देवी को किसी तरह का कष्ट न हो इस भावना के नाम पर। एक दो वार, मेरे प्रसन्न न होने पर, वह भी फर्श पर ही खीज कर, दुःखी होकर और थककर पड़जाते और उनकी इस वेदना को सहन न कर सकने के कारण मैं शान्त हो जाती, तकिया वगैरह लगा देती, रोने लगती, पैर दबाने लगती और फिर प्रसन्न होकर हम लोग उठकर पलङ्ग पर चले जाते। यहां पर इतना और बतला देना चाहती हूं, कि पंडितजी कभी यह सहन नहीं कर सकते कि मैं उनके पैर छूऊं या दबाऊं, उनकी राय मे स्त्रियो से ऐसी सेवा लेना ठीक नहीं जब तक कि एक पुरुष भी, पति नहीं, प्रेमी की हैसियत से अपनी पत्नी के पैर दबाने को तैयार न हो। खैर, इस तरह मतभेद बढ़ता ही रहा, वह दिन भर के थके मांदे आते और सोना ही उनको सूझता, मैं उनसे बाते करना चाहती। एक रात्रि में मैं रूठी, उन्होंने मनाने की कोशिश की, बारह बज गए थे, मुकदमों के काग़ज देख कर आये थे, बहुत थके थे, मिजाज भी

शायद कुछ वरहम था, कुछ देर उन्होंने समझाने मनाने की कोशिश की, पलङ्ग से उतर कर आये, पास बैठे, थोड़ी देर बैठे भी रहे और अन्त में मेरे किसी तरह से सन्तुष्ट न होने पर वे उस दिन फर्श पर लेटे या बैठे नहीं, खीज कर सीधे पलङ्ग पर चले गए और दो ही मिनट मे सो गये। मैं उस रात्रि मे बहुत रोई, मुझको बड़ी वेदना हुई, आंसू मेरे थमते ही नहीं थे, मैं उनके चरणों के पास पलङ्ग के नीचे बैठ कर रोती रही, पैर भी दबाये किन्तु वह ऐसे सो गये थे कि उनकी नींद न खुली। जितने ही सुख से वह सो रहे थे, उतने ही दु:ख से मैं रो रही थी। रात्रि भर मैंने इसी तरह से विताई, सुबह उनके जाने से पहिले ही मैं कमरे के बाहर हो स्नानादि की फ़िक्र में लग गई। रोज़ उठने पर हम लोग दस बीस मिनट, आधे घंटे तक कभी कभी, बातें करते थे, और कमरे के बाहर होने के पहिले पंडितजी नित्य नेम के तौर पर मुझको प्यार कर ही बाहर जाते थे। लोग इस साधारण सी बात के महत्त्व को नहीं जानते, किन्तु वैवाहिक-जीवन को सुखमय और चमत्कारपूर्ण बनाये रखने की यह कीमिया है। दिन प्यार और चुम्बन से आरंभ करना और दिन को प्यार और चुम्बन (सोने के पहिले) से समाप्त करना और एक दूसरे को सुला कर सोना। जो दम्पति इस सरल से नियम की अवहेलना नहीं करते वे सदा सुखी रहेंगे। मैं जानती हू कितने ही दम्पतियों का जीवन विषमय हो गया केवल इस कारण से कि पति देवता सो गये और पत्नी छत की धन्नियां गिन रहीं है और उसकी आंखो में निद्रा नहीं है। पति को जो नायक हो और चतुर हो सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रियतमा को भी नींद आगई। इस बात में कुछ रहस्य है, मैं इसे खोल कर कह भी नहीं सकती और यह विषयान्तर भी है, इससे इसे यहीं समाप्त कर

देती हूँ। हॉ, तो सवेरे ही उठ मैं कमरे से निकल स्नान ध्यान और गृह के प्रवन्ध मे लग गई, पंडितजी उठे और दिन चढ़ा देख, जल्दी जल्दी अपने गुसुलखाने में चले गये और फिर दफ्तर मे मुअक्किलों की सुनने लगे। पंडित जी को मेरा ख्याल न आया, उन्होंने रात्रि में मेरी फिक्र न की, सुवह उठने पर भी उन्होंने मेरी याद न की, यह भी न सोचा कि सोई या नहीं सोई, इस तरह वेसुध सोये कि इसका भी ज्ञान न रहा कि मैं पलङ्ग पर हूँ या नहीं ? इस सब से मेरा दुःख और भी वढ़ गया। दास दासियों के सामने मैं कहती और करती क्या, किन्तु मेरे आंसू थमते नहीं थे और उनको छिपाने के लिए मैं वार वार अपने कमरे से भाग जाती थी। किस्मत की मार से उस दिन यह भी हो गया कि पंडितजी के एक वकील दोस्त किसी मशविरे के लिए आगये, कचहरी उनको भी जल्दी पहुंचना था और इसका नतीजा यह हुआ कि पंडितजी ने झटपट तैयार हो खाना वाहर ही मंगा भेजा। रोज खाने के समय दो चार वातें हो जाती थीं, वह भी न हो सकीं, वे कुछ रात्रि की वाते कहते, कुछ सान्त्वना मिलती, और मैं प्रसन्न हो जाती सो भी न हो सका। पंडितजी कचहरी गये और मुझ पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। मैं अपने को सम्हाल न सकी धड़ाम से जाकर पलङ्ग पर गिर गई, जितना रो सकती थी रोई। दासियां जो खाने के लिए वुलाने आई, मेरी दशा देख अवाक रह गईं, मैंने यही कह दिया पेट में वहुत दर्द है खाना नहीं खाऊंगी। दिन भर मैं कमरे के वाहर नहीं निकली, चार वजे के समय वड़ी उत्सुकता से नीचे गई, चाय पानी का प्रवन्ध करने लगी, सोच रही थी अव आते होंगे, चरणों मे सिर दे खूब रोऊंगी, क्षमा मांगूंगी किन्तु विधाता वाम था, कचहरी से गाड़ी खाली आई, पंडितजी उधर ही से अपने

एक आदरास्पद वकील मित्र के यहां किसी जरूरी मशविरे के लिए चले गये थे। काटो तो खून नहीं, खबर सुन मैं सन्न रह गई, क्या करती। पंडितजी उस दिन नव बजे रात्रि को आये, और खाना खाकर आये। पंडितजी सहसा कभी कहीं खाना नहीं खाया करते थे, उनको कहीं खाना खाने में कष्ट होता था, कहीं दावत होने पर दो-चार दिन उनको इसी की चिन्ता रहती थी कि यह क्या है, न जाना पड़े तो अच्छा, किन्तु आज जिस मित्र के यहां गये थे, वह बड़े थे, और पंडितजी उनको आदर की दृष्टि से देखते थे। उनके कहने पर नाहीं कैसे करते, संकोच भी बहुत, दूसरे वह व्यालू आठ बजे करते थे, पानी पड़े या पत्थर, ब्याह हो, शादी हो कुछ हो, वक्त में फर्क नहीं पड़ता था। वह समझे भी नहीं थे कि इतनी देर मित्र के यहां हो जायगी और इसलिए उन्होंने कुछ कहलाया भी न था। मैं इन बातों को क्या जानती थी, मैं यही सोच रही थी कि रात्रि को अवहेलना की, सुबह को याद नहीं किया, कचहरी के वक्त भोजन बाहर गया, जाते वक्त भीतर भी नहीं आये, चाय बाहर पी, और खाना भी बाहर खा आये और फिर मुकद्दमे के कागज हैं और वह हैं। मेरी व्यथा और भी बढ़ गई और मैंने महाराजिन से कह दिया कि मैं खाना नहीं खाऊंगी, तुम लोग खाना खा लो और नौकरों को भी दिलवा दो, मेरी तबियत अच्छी नहीं है, मैं सोने जाती हूं। यह कह मैं ऊपर चली गई। दिन भर की भूखी, पेट अपनी ओर चीत्कार मचा रहा था, हृदय के दर्द से आंसू दूसरी ओर भादों की वर्षा की झड़ी लगा रहे थे, मैं फर्श पर एक किनारे पड़ गई।

उस रात्रि में पंडितजी जल्दी ही ऊपर आये, कारण यह था कि नौकरों की आंख से कुछ छिपाना कठिन ही नहीं असम्भव है, वे कुछ जान तो सके नहीं थे, किन्तु उनको कुछ शक

होगया था। इसी कारण से पंडितजी जिस समय दफ्तर से उठकर किसी काम से भीतर कमरे मे गये तो उनके नौकर ने जो बहुत पुराना नौकर भी है, उनसे कहा कि आज बहूजी की तबियत कुछ खराब है, उन्होंने सुबह भी खाना नही खाया, चाय भी नहीं पी, और इस वक्त भी बिना भोजन किये हुए ही ऊपर चली गई हैं। यह सब पंडितजी से हमको बाद मे मालूम हुआ। यह सुनते ही पंडितजी मुकदमे की फाइल को अलग रख, तुरन्त ऊपर आगये। उनको सब बाते रात की याद आगई और कमरे मे फर्श पर एक कोने मुझे पड़ा देख वे तुरन्त ही मेरे पास चले आये। उनके पास बैठते ही मेरी आंखों से सावन भादों की झड़ी लग गई और आंसुओं की धारा और भी वेग से बहने लगी। फिर तो उन्होंने बहुत अनुनय विनय की, यहां तक कि मेरे पैरों पर उन्होने अपना सर रख दिया और एक अपराधी की भांति रोने से लगे। मै क्या करती, मेरा समस्त क्रोध काफूर होगया। मुझको ही उनको शान्त करने की फिक्र हो गई। "वात्स्यायन" ने कहा ही है '—

"व्रीडायुक्तापि योषिदत्यन्तक्रुद्धापि न पादपतनमतिवर्तते"※

मर्द के पैर पर सर रख देने से एक अच्छी स्त्री का क्रोध,

"Women, though in extreme anger would not disregard their lover falling at their feet This is common experience, says Vatsyan"

※"लज्जानिमग्नहृदया यदि वा रुष्टा महापराधेन
तां विक्रामति सुमुखी चरणनिपतनं क्षणं यून"

लज्जाशीला मानवती स्त्री कितनी रुष्ट क्यों न हो, क्षणमात्र के लिए यदि नायक उसके पैरों पर अपना सर नत कर दे तो वह शान्त और प्रसन्न हो जाती है। कु० का० मा०

वह कैसा ही क्यों न हो, शान्त होजाता है मैं लज्जा से नत, गद्‌गद्‌ हो उनके पैरों पर सर रख उनसे क्षमा मांगने लगी, फिर तो एक प्रेमी की भांति ही उन्होंने मनाया, खाना तो मंगा नहीं सकते थे, नौकरों को क्या ख्याल होता, मगर जो कुछ वहां सामान था, दूध, मलाई, मिठाई, उसे उन्होंने जबर्दस्ती हंसा हँसा कर मुंह में खिलाया और मैं बड़ी प्रसन्न हो गई। देखा जाय तो ज्यादती मेरी थी, न्यायोचित होते हुए भी मेरी मांग उनकी स्थिति को देखते हुए अन्यायपूर्ण थी, किन्तु उनकी बातों मे यही मालूम हुआ मानो सारा कुसूर उनका ही था और उन्होंने इस तरह से मुझे प्रसन्न किया मानो अनबन एक मिनट के लिए भी उनसे हुई ही नहीं थी। तात्पर्य यह है कि पति-पत्नी के झगड़ों और मतभेदों का शीघ्र मे शीघ्र फैसला हो जाना चाहिए, इसमे देर करना, गांठ पड़ने देना या कुदूरत बढ़ने देना ठीक नहीं हुआ करता। दूसरी बात यह भी है कि पत्नी कितनी ही अप्रसन्न क्यों न हो, गुस्से में उसने चाहे कुछ भी कहा या किया क्यों न हो, स्त्री होने के कारण वह व्यवहारिक होती है, कुछ ही समय में वह स्थिति को साफ देखने लगती है और क्रोध शांत होते ही वह मन ही मन पछताती है, किन्तु फिर वश उसका या किसी का भी कुछ नहीं रहता।

हृदय से पछतावा ईश्वर की दृष्टि में किसी भी प्राणधारी को बड़े से बड़े पाप के दण्ड से मुक्त कर देता है, ऐसी दशा मे चतुर नायक का कर्तव्य यह है कि स्त्री का यह और भी पतन न होने दे, उसे विवश होकर हाथ जोड़ क्षमा मांगने का अवसर न दे, और उसे स्वयम्‌ ही मना ले। उसके पतन से, उसके यह समझने से कि वह कुछ नहीं है, पापोश है, झखमार कर पति की इच्छा के अनुसार उसे चलना ही होगा, उसके आत्मसम्मान और आत्माभिमान से कमी आती है और इसका असर दिन दिन नायक के सुख पर पड़ता है।

निरुपमा अपनी माँ के पास चली गई है, उसने यह भद्दी भूल की है, किन्तु वह सदा की अभिमानिनी है और फिर अभी छोकरी ही है। वह सुवह ही गई है, देर काफी होगई है, फिर जो हो गया सो हो गया अब देर उचित नहीं, तुम इस पत्र को पाते ही उसके पास जाओ और उसे सादर लिवा लाओ। जाकर रसिक-हृदय से, एक रसिक की भाषा मे ही उससे कहो—

"क़ता कीजे न ताल्लुक हमसे
कुछ न सही तो अदावत ही सही"

कहो.—

"तुमको आता है प्यार पर गुस्सा
मुझको गुस्से पै प्यार आता है"

"घर तो तुम्हारा है, हमारा नहीं, गृहिणी से ही घर होता है तुमही गृह की देवी हो, तुमसे ही और तुम्हारे लिए ही घर होता है, पुरुप तो जंगल मे पेड़ के नीचे भी पड़ा रह सकता है। स्त्री के लिए घर की जरूरत है और घर इसलिए उसी का है। तुम चलो अपने घर मे रहो, वह तुम्हारा ही है, अगर हमारा उसमे रहना तुमको कष्टकर हो तो हमको हुक्म देना हम ही उसे छोड़कर अन्यत्र रहेगे, किन्तु तुमतो चलकर उसमे रहो ही।"

उसको मान करने का हक है, उसका मान तुम्हारे ही भरोसे है, और फिर तुमसे न करे तो क्या किसी गैर से वह मान करेगी ?

आचार्यों ने कहा भी है—

"स्वस्य प्रीतौ हेतुर्मान निदानम् च मानशीलानाम्"*

"कन्दर्पचूड़ामणि"

---

* मानीजन जिनसे प्रसन्न होते हैं, जिन से उनको प्रेम होता है उन से ही उनको मान भी होता है। कृ० का० मा०

मेरी प्रार्थना सुन और कम से कम अपने से अधिक सांसारिक बातों में मुझको चतुर समझ तुम बिना तनिक भी सोचे हुए, जैसे बैठे हो, वैसे ही उठकर उसके पास जाओ। और उसे लिवा लाओ। विश्वास रखो अगर स्त्री है, मानवी है, दानवी या राक्षसी नहीं तो वहां वह कोई झगड़ा नहीं करेगी, और हंसते हुए तुम्हारे साथ सम्मानपूर्वक चली आवेगी। रात्रि अधिक हो गई है, पंडितजी बार बार करवट बदलते पूछ रहे हैं, आज किसका जन्म-पत्र तैयार हो रहा है, अब मैं सोने जाती हूं, सुबह होते ही मेरा आदमी यह पत्र तुम्हारे पास पहुँचा देगा। कल ही नहीं, परसों या नरसों दूसरा पत्र तुमको इसी सम्बन्ध में फिर लिखूंगी तब तुमको बतलाऊंगी कि तुम्हारे में क्या त्रुटियां हैं, जिनके कारण ऐसी घटनाओं का घटना सम्भव हुआ। बस अब नमस्कार, निरुपमा को कल खुद जाकर पहिले लिवा लाना, इसमें भूल न हो, नहीं तो फिर तुमको कभी कुछ नहीं लिखूंगी।

तुम्हारी—
मनोरमा

झगड़ों को अन्त करने की कला

मनोरमा-बाग़,
प्रयाग
१४-१२-१९१७

It has been said that man is the only animal that shows violence to the opposite sex,"

प्यारे रसिकलाल,

मैं यह जानने को बहुत उत्सुक थी कि तुमने क्या किया, मेरी प्रार्थना और सलाह पर तुमने ध्यान दिया या नहीं, क्योंकि आजकल (Advice Gratis) मुफ्त में मिलने वाली सलाह की कोई वकत नहीं हुआ करती। तुमने मेरे पत्र का कोई जवाब नहीं दिया था फिर भी मैं पता ले रही थी और मेरे पत्र मिलने के थोड़ी देर बाद ही तुम स्वयम् जाकर आदर पूर्वक निरुपमा को ले आये, यह सुनकर मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं तुमको तुम्हारे इस कर्तव्य-पालन पर बधाई देती हूं। इससे जो सुफल फलेंगे और उनका जो सुस्वाद होगा उसका आनन्द तुम्हीं भोगोगे, मन ही मन कदाचित् तुम मुझको धन्यवाद भी दो, किन्तु जिसे तुमसे अधिक इस मेल से आनन्द हो और जिसके धन्यवाद की वास्तव में मैं पात्री हूं उसको इसका पता भी न होगा कि उसके महद् आनन्द का कारण मैं हूं। तुम भी भूल कर मेरे पत्र का जिक्र निरुपमा से न करना, उसे या किसी स्त्री

को भी यह जानकर, कि किसी स्त्री की सलाह से तुम उसे बुलाने गये, प्रसन्नता न होगी, यही नहीं इससे उसे कष्ट होगा और यह भी असम्भव नहीं कि वह मुझसे बुरा मानने लगे केवल इस कारण से कि उसके जाने का हाल मुझे मालूम हो गया और मेरे कहने से तुम उसे लिवा लाये। सिवाय इसके उस पर यही असर रहना कि तुम ही अपनी खुशी से, प्रेमवश उस माननी को बुलाने गये, तुम्हारे और उसके वैवाहिक जीवन के लिए श्रेयस्कर है। लोग कहते हैं कि पति पत्नी में कोई पर्दा न होना चाहिए, दोनों एक दूसरे के लिए आइने के समान होने चाहिएं, फरेब और झूठ का भूलकर भी दोनों के बीच व्यवहार नहीं होना चाहिए, किन्तु मैं तुमसे कहती हूं कि यह कोरे पंडितों और ज्ञानशून्य अव्यावहारिक लोगो की बातें हैं। मैंने तुम्हारे संबन्ध की बातें लिखने का वादा किया था, तुमने मेरी सलाह मानी और अपने वादे के अनुसार मैं यह पत्र लिखने बैठी हूं इसलिए अन्य बातों का इसमें समावेश नहीं करना चाहती, फिर भी इतना कह देना चाहती हूं कि पतिपत्नी के लिए चाहे किसी तरह का पर्दा जरूरी न हो, किन्तु प्रेमी और प्रियतमा, नायक और नायिका के सुखमय जीवन के लिए यह नितान्त आवश्यक है। केवल पर्दा ही नहीं, कभी कभी फ़रेब भी, हां, फरेब या झूठ इस तरह का नहीं होना चाहिए कि उससे किसी को ऐसा धोखा दिया जाय, जिससे तनिक भी उसे शारीरिक या मानसिक क्षति पहुँचने की संभावना हो। फ़रेब और झूठ धोखा देने या किसी तरह की हानि पहुँचाने के लिए नहीं, वरन् प्रेम के मेघ को और भी सघन करने के लिए ही होना चाहिए और उसी अर्थ मे, और उसी अर्थ का होना चाहिए जिस अर्थ में "अकबर" साहब ने कह रखा है :—

"हूँ फरेबे सितमे यार का क़ायल अकबर,
मरते मरते न खुला यह कि जफ़ा होती है"।

फरेब की व्याख्या धोखेके बजाय जादू करली जाय तो अच्छा। ख़ैर, अपनी बातें सुनो, इन पर गौर करो, मैं साफ़ साफ़ कहूंगी, बुरा न मानना, क्योंकि तुम जानते हो उद्देश्य तुम्हारी भलाई है न कि बुराई।

तुमको याद है प्रथम बार तुम मुझसे कहां और कैसे मिले थे ? संभव तो नहीं कि ऐसी बातें कोई भूल सके किन्तु तुम इतने सुबसुलने लापरवाह और सदा स्वप्न देखने में लीन रहने वाले हो कि तुम्हारा भूल जाना असम्भव भी नहीं। मेरी राय तुम्हारे सम्बन्ध में क्या है, इसे तुमको पहिले ही सुना देना चाहती हूं, तुम स्वयं देख लो कि तुम क्या हो। सम्भव है जो बातें मैं कहूंगी तुम्हारे दिमाग़ में भी कभी न आई हो, क्योंकि यह हम सब लोगों का अभाग्य है कि हम लोग भूलकर भी अपने सम्बन्ध में स्वयं विचार नहीं करते। "अपने को जानो"* का हम लोगों ने पाठ ही नहीं पढ़ा। हम लोग कभी अपने को उलट पुलट कर, भीतर बाहर, नहीं देखते, दूसरों के सम्बन्ध में जिस बारीकी से विचार करते हैं वैसे ही या उसी ढंग से अपने को हम कभी तराजू पर नहीं तौलते। इसके कहने की तो कोई जरूरत ही नहीं कि अपने सम्बन्ध में हम सब की कसौटी बहुत ही उदार होती है। रसिक ! तुम एक बहुत ही सीधे, बड़े अच्छे हृदय के, उदार, अच्छी भावनाओं वाले मनुष्य हो। संसार में तुम किसी का भी बुरा नहीं चाहते, यही नहीं कष्ट सहन कर भी अगर तुम किसी का भी भला कर सकते हो तो बिना विचार, पशोपेश या ताम्मुल के तुम कर दोगे, तुम्हारा हृदय स्वच्छ, विकार-रहित, भावनाएँ आदर्शवादनी, चरित्र निर्मल, परोपकार रत, त्यागी और विनम्र है। प्रकृति तुम्हारी सरल,

---

*"Know thyself"

भावुक, एक मिनट में ही आकाश में उड़ने वाली और सर्वस्व न्योछावर कर देनी वाली और दूसरे मिनट में एक दम पाताल में गिर, दुःख अनुभव करने वाली है। तुम ना करना भी नहीं जानते, अप्रिय बातों को कहना पसन्द नहीं करते, इसी कारण से तुम कभी बड़े संकट में पड़ जाते हो और मित्र अकारण ही तुम को दोषी समझ लेते हैं, उनको तुम में शक होने लगता है; केवल इसलिए कि साफ अप्रिय बातों को तुम कह नहीं दिया करते। तुममें जितनी विशेषताएँ हैं इसकी आधी भी विशेषताएँ किसी भी पुरुष को श्रेष्ठ पुरुष या नरपुंगव बना सकती हैं, किन्तु यह सब होते हुए भी तुम सफल पुरुष नहीं हो सके, इसका कारण यह है कि तुम में त्रुटियाँ हैं जो तुम में नहीं होनी चाहिए थीं। सब से पहिले तुम में चरित्र की कठोरता नहीं है जिसका किसी भी पुरुष में होना जरूरी है। कठोरता शब्द बहुत उपयुक्त नहीं है, किन्तु मेरे तात्पर्य को तुम समझ गए होगे। अङ्गरेजी के (Strength of character) चरित्रबल की भावना रखते हुए भी यह किसी अँश में उससे भी भिन्न है। तुम कमजोर प्रकृति के हो, मनुष्य की कठोरता के स्थान पर तुममे स्त्रियोचित कोमलता है। आदर्शवादी इतने हो कि तुम यह नहीं देखते कि तुम दुनिया मे रह रहे हो, जहाँ स्वार्थसिद्धि, अपने उद्देश्यों का पीछा और उनकी ही सिद्धि प्रधान है। तुम स्वप्न देखने और आदर्श की पूजा में दुनिया की घुड़दौड़ मे अपने दुनिया-साज चतुर मित्रों से पीछे रह जाते हो। तुम्हारी सरल प्रकृति से वह लाभ उठाते हैं, तुम्हारे ही माथे, तुम्हारी ही प्रशंसा कर, तुम्हारे अभिमान की रग को गुदगुदा और जागृत कर, तुमको सारहीन स्वप्नों में लीन कर वह आगे बढ़ जाते हैं, तुम पीछे रह जाते हो। तुम अपना सा सरल सच्चा, उदार दूसरों को भी समझते हो, दूसरे ऐसे नहीं। आँख खुलने पर तुम देखते हो कि दूसरे ऐसे हैं, उन्होंने बेजा किया,

धोखा दिया, उनको यह नहीं करना चाहिए था, वह नहीं करना चाहिए था, वह आदर्श से नीचे गिर गए और तुम समझ लेते हो कि वह छोटे मनुष्य हैं, हीन हैं, तुम बड़े हो, अच्छे हो। तुम इन विचारों से अपने को बोध दे लेते हो, अपने को बड़ा और ऊँचा समझ संतोष कर लेते हो, किन्तु दुनिया में वह आगे बढ़ जाते हैं, तुमसे बाज़ी मार लेते हैं और तुम कल्पना के संसार में अपने को अच्छा समझ पीछे पड़े रह जाते हो, कष्ट उठाते हो और कुछ कर भी नहीं सकते। पुरुषोचित कठोरता का अभाव और प्रकृति की कोमलता इस सब का प्रधान कारण है। जब तुम मेरे पास आया करते थे, और भी तुम्हारे अनेक मित्र हुआ करते थे, तुम्हारी सरलता, उच्च आदर्शों की पूजा और प्रकृति की निर्मलता से वह कितना लाभ उठाया करते थे यह मैं देखा करती थी और सच मानो तुम्हारी अनेक विशेषताओं पर मुग्ध होती हुई भी तुम्हारी यह दशा मुझको खटके में डाल दिया करती थी। तुम ऐसे कोमल प्रकृति के थे कि कोई भी दृढ़ संकल्प* और विचारों वाला तुम्हारा मित्र तुमको घुमा फिरा सकता था। मैंने यह भी देखा था और तुमने भी एक दो बार मुझ से कहा था कि कभी कभी यह जानते हुए भी कि दूसरे तुमको बेवक़ूफ़ बना कर अपना इष्ट सिद्ध करना चाहते हैं, तुमने उनकी सी बातें करदीं, जान बूझ कर और सब कुछ समझते हुए केवल इस ख्याल में कि तुम्हारी कोई हानि नहीं, तुम कोई बेजा काम करते नहीं, किन्तु यदि एक साधारण किसी महत्वहीन बात से दूसरे का भला होता है तो होजाय। विचारपूर्वक देखो यह जो सब मैं कह रही हूं ठीक है या नहीं? इन बातों का अधिक विस्तार न कर मैं इतना ही कहदेना चाहती हूँ कि पुरुष के लिए यह त्रुटियाँ हानिकर

---

*Strong will.

चाहे कम हों, किन्तु एक नायक के लिए यह त्रुटियाँ विष के समान हैं।

तुम से यह छिपा न होना चाहिए कि सृष्टि ने पुरुष और स्त्री को किसी उद्देश्य से निर्माण किया है। दोनों में कुछ खास विशेषताएं हैं और दोनों में कुछ खास त्रुटियाँ हैं। एक की विशेषताओं से दूसरे की त्रुटियों की पूर्ति होती है, किन्तु यदि दूसरे में भी वही त्रुटियाँ हों जो पहले मे मौजूद हैं, यदि दूसरे में उसी बात का अभाव हो, जिसके सहारे ही पहिले की जीवन-नौका अग्रसर हो सकती है तो दोनों का मेल या सम्मेलन ठीक न होगा, जोड़ा सुखकर न होगा और दोनों को जीवन में कठिनाइयों का सामना करना होगा।

एक बात और भी बतला देती हूँ। दुनिया का यह ख्याल कि स्त्री और पुरुष एक ही समान जीव है, सर्वथा गलत है। मेरी समझ में स्त्री और पुरुष दो भिन्न प्रकार के जीव हैं, यद्यपि दोनों की बनावट सूरत और सीरत प्रायः एकसी दिखाई देती है। एक के पूर्ण विकास के लिए दूसरे का होना नितान्त आवश्यक और निहायत जरूरी है। बिना एक के दूसरे के उद्देश्य की सिद्धि हो ही नहीं सकती, एक की पूर्ति के लिये ही दूसरे की सृष्टि हुई किन्तु फिर भी स्त्री और पुरुष वैसे ही भिन्न हैं जैसे पृथ्वी और आकाश।

स्त्रियाँ स्वयं कोमल प्रकृति, सरल स्वभाव और उच्चाभिलाषिणी होती हैं। वे पुरुषों में कोमलता नहीं ढूंढ़तीं। मैं स्त्री हूँ और एक स्त्री की हैसियत से और अपने बहिनों के स्वभाव, प्रकृति और आवश्यकताओं से पूर्ण रूप से परिचित होने के कारण, तुमको यह रहस्य बतला देना चाहती हूँ कि स्त्री स्वयं कोमल और कमजोर होने के कारण पुरुष में कठोरता, दृढ़ता और पाशविक शक्ति चाहती है। पुरुष की इन विशेषताओं का स्त्री के हृदय में अधिक आदर और मान रहता है। स्त्री, पुरुष में,

नायिका, नायक में, और पत्नी, पति मे हर तरफ और तरह का वल ही चाहती हैं। (१) शारीरिक वल पहले, फिर (२) मानसिक वल, तदनन्तर (३) चरित्र वल और (४) अन्त में किन्तु अधिक अंश में वह संकल्प-वल या विचारों की दृढ़ता* चाहती है। स्त्री, धन, दौलत, गहने जवाहारात, और संसार के वैभव को केवल एक हृदयहीन, कठोर पाशविक शक्ति पर न्योछावर कर देती है, एक पहाड़ की सी शक्ति के कदमों को चूमने और उन पर खेलने के लिए वह संसार के ऐश्वर्य और आदर्शवाद को लात मार सकती है। स्त्री उस पुरुष का क्या मान करे जो उसे गोद में उठा दौड़ नहीं सकता, जो उसी के समान नाजुक है, जिसके विचार, उसी के विचारों के समान, हवा से हिल जाया करते हैं, जो उसी के समान डामाडोल है, जो दुनियादार और दुनिया-साज नहीं, जो संसार मे स्त्रियों के ही समान पग पग पर धोखा और ठोकर खा सकता है, जो न अपनी रक्षा कर सकता है, न जिनमे दूसरों की रक्षा करने की क्षमता है और न है जिसमें शासन, दमन और अपने को ही काबू मे रखने की शक्ति।

कवि "वायरन" स्त्री-चरीत्र से खूब ही परिचित था और उसने स्त्रियों के चरित्र को समझने की कुंजी को निम्न लिखित दो पद्यों मे वन्द कर दिया है:—

नारी उत्पादित करती हैं नर के मन मे मद और प्यार,
आत्मताप से उत्पीड़ित वह पतितोन्मुखी प्रेम की धार।

---

*(1) Strength of Body
(2) Strength of mind.
(3) Strength of Character
(4) Strength of will.

सदा खोजती उस मनुष्य में जिससे रखती है वह प्रेम,
　　रक्षा करने की क्षमता औ सुदृढ़ शक्ति सच्चा नव नेम।

×　　　　×　　　　×

नहीं खोजती दयाभाव वह सीधे सुन्दर सद् व्यवहार.
　　ज्ञात उन्हें इनकी महिमा है इन का अनुभव भले प्रकार।
उन्हें चाहिए सिद्ध पुरुष वह हो जो सुदृढ़ तथा निश्चल,
　　जिसे न विचलित आँधी करती जो करती उनको चञ्चल।*

(प० का० मा०)

सच बात यह है कि समस्त विकास के बाद स्त्री अब भी प्राचीन काल की ही स्त्री है उसे आज भी उसी (cave-man) प्राचीन पूर्व, जंगली, आदि-पुरुष की आवश्यकता है, जो उसके लिए पहाड़ को काट कर उसमें उसके निवास के लिए झोपड़ा बना देता था, जो पेड़ों को गिरा कर, डालों को काट कर, झोपड़े को वर्षा से सुरक्षित कर देता था, जो जानवरों को मार कर उसके बच्चों की रोटियों का प्रबन्ध कर देता था, जो आसपास की जंगली जातियों के आक्रमण के समय उसकी, उसके बाल बच्चों और उसकी कुटी की रक्षा वीरता से, अपनी जान हथेली पर रख कर

---

*"and women—things that love and move,
　　Mined by the fever of the soul—
They seek to find in those they love
　　Stern strength and promise of control.

+　　　　+　　　　+

They ask not kindness, gentle ways
　　These they themselves have tried and known
They ask a soul that never sways
　　With the blind gusts that shake their own."

करता था, जिसके बाक़पन और मर्दानगी को देख उसकी स्त्री की ओर कोई निगाह उठा कर नहीं देख सकता था और जिसकी भुजच्छाया में वह सुख से सो रहती थी और दुनिया का झंझट और भय उससे दूर रहता था।

आधुनिक विकास और शिक्षा का प्राभव इतना ज़रूर होगया है कि स्त्री, पति या नायक में बुद्धि, विवेक, चातुर्य, रसिकता, चेतनता और संसार के समस्त सुखों को संग्रह कर देने की शक्ति चाहती है, किन्तु यह सब होते हुए भी वह स्त्री के हृदय की आदि छाप को अपने हृदय-पटल पर से अब भी नहीं मिटा सकी है और अब भी कितने ही सुन्दर आच्छादनों से सत्य क्यों न ढक दिया जाय, सच्ची बात यही है कि वह जिसको हृदय देती है, जिसे अपने बच्चों का जनक बनाना चाहती है उसमें वह शक्ति ही शक्ति हर पहलू में और हर रंग में देखना चाहती है और इसी को वह हर समय मे उसमें ढूंढती है।

स्त्री, विकास की सीढ़ियों पर तेज़ी से पऊर चढ़ती जा रही है, सम्भव है कुछ दिनों में वह ऐसे शिखर पर स्वयं पहुँच जाय जहां अपनी कोमलता को, अपनी कमज़ोरी को, वह धो बहाये, शक्ति की वह स्वयं ही खान हो जाय और निरी पाशविक-शक्ति का आदर उसके हृदय से जाता रहे, किन्तु अभी इसके लिए सैकड़ों नहीं; हज़ारों वर्षों की आवश्यकता है। भविष्य को कौन जाने, किन्तु अभी कम से कम सैकड़ो वर्ष तक स्त्री, पुरुष में शक्ति, शासक और प्रभु ही ढूंढती रहेगी। एक चतुर नायक को इसलिए अपनी इन विशेषताओं की सदा वृद्धि करते रहना चाहिए, साथ ही समय की आवश्यकता के अनुसार इसका प्रदर्शन भी उसे करते रहना चाहिए।

तनिक आंख खोल कर चारों ओर देखो, आज कल स्त्रियां क्या नहीं कर रही हैं ? किस क्षेत्र मे वह मनुष्यो से पीछे हैं ?

पुरुषों को रोटी, कपड़ा, दफ़्तर, नौकरी, धनोपार्जन आदि का बड़ा अभिमान था, अब स्त्रियां यह सब कर लेती हैं। रोटी कपड़े के लिए, पेट की ज्वाला शांत करने के लिए, गहने जवाहरात के लिए, तौक, कड़ों, करधनियों और बेड़ियों के लिए पुरुषों की शरण जाने की उनको न पहिले आवश्यकता थी और न अब है। अब तो उन्होंने यह भी दिखा दिया है कि इन सब का प्रबन्ध वह पुरुषों से अच्छा नहीं तो उनके समान ही कर सकती हैं, किन्तु फिर भी वह पुरुषों की भुजच्छाया के लिए लालायित रहती हैं, पुरुषों का आश्रय ढूंढती रहती हैं। क्यों ? केवल उसकी पूर्ति के लिए जो उनमें नहीं है। केवल पाशविक बल, पाशविक वीरता की प्रशंसक होने के कारण और केवल इस आनन्द में मुग्ध हो, पागल होने के लिए कि पहाड़ सी शक्ति वाला मनुष्य चरणों के पास बैठा हुआ विस्फारित मदमस्त नेत्रों से कह रहा है:—

"देहि में पदपल्लव मुरारे"

और अपना सर्वस्व, अपना वर्तमान और भविष्य दें, चरणों को चूम कर ही अपने को धन्य धन्य समझने को उत्सुक है। एक स्त्री एक पुरुष पर संसार की दौलत और अपना सर्वस्व सुख से बलिहार कर देती है, केवल इस सुख में मग्न होने के लिए कि मुझ अबला को फूंक से उड़ा देने में समर्थ, यह सृष्टि का सरताज मेरे सामने कातर खड़ा प्रणय-भिक्षा मांग रहा है और एक मेरी कृपा और मन्द मुस्क्यान के बदले में त्रैलोक्य के राज को ठुकरा देने को तैयार है। एक बात और भी बतलाती हूं, संसार में अभी उस स्त्री का जन्म ही नहीं हुआ है जो पुरुष के इस प्रकार के प्रेम को देख कर, उसके मुख से सच्चे प्रेम की भाषा को सुन कर और उसके हृदय की प्रेम की ज्वाला से तप्त होने पर हिल न जाय और अपने सिंहासन से नीचे उतर उसके सामने हाथ जोड़ कर न खड़ी हो जाय।

मालूम नहीं, "रसिक" स्त्री-हृदय के इन भावों की मधुरता, कमनीयता, गम्भीरता, अतुल-नीयता, सुन्दरता, ओतप्रोतता और मादकता को तुम समझ सकते हो या नहीं ? सच बात तो यह है कि स्त्री के चरित्र और उसके प्रेम को समझ सकना किसी बड़-भागी को ही नसीब हुआ करता है, नहीं तो सच मानो आदि शक्ति और सृष्टि के कर्त्ता के समान ही स्त्री भी आनन्द और अज्ञेय है और उसके लिए भी-मनुष्यों द्वारा वही कहा जाना चाहिये जो वेदान्ती ईश्वर की खोज में विह्वल हो, घबरा कर, "नेति नेति" के शब्दों में कह बैठते हैं।

मैं भी कहाँ की कहाँ चली गई, क्या कह रही थी क्या कहने लगी। खैर, जो कुछ पुरुष के लिए नितान्त आवश्यक गुण मैंने ऊपर बताये हैं, तुम मे उनमें से अधिकतर गुणों का अभाव है। तुम स्त्री की भाँति ही जल्दी सब का विश्वास कर लेते हो, बेवकूफ बनते हो, धोखा खाते हो कहो सत्य है न ? स्त्री की भाँति ही तुम अपने हृदय में बात नहीं रख सकते। तुमसे बहुत आसानी से, तनिक सहानुभूति दिखा कर या तुम्हारा मित्र बन कर तुम्हारे हृदय की सात तह के नीचे से कोई भी बात निकाल सकता है। ठीक है न ? तुममें हठ है ही नहीं या है भी तो दो चार मिनट का, दस बीस घंटे या दस बीस दिन का भी नहीं। वह मनुष्य क्या जिसमें हठ न हो, छोटेपन या बुरे तरीके का नहीं, किन्तु मनुष्योचित और मर्दानगी का ? स्त्री सर्वोपरि एक नायक, जिसका अर्थ (Commander) शासक है, चाहती है। तुम स्वयं ही किसी के आश्रित, अधीन रहना पसन्द करते हो। स्त्री पर-मुखापेक्षी रहने में सुख अनुभव करती है, वह नायक की सेविका बन और नायक मे प्रभुत्व देख गद्‌गद् होती है, तुम स्वयं दूसरे के पीछे पीछे चलने के लिए अपनी आंखों को भी

बिछा देने को तैयार रहते हो। यह सच है या नहीं और मैंने तुम्हारे चारित्र को ठीक समझा है या नहीं ?

तुम्हारी दशा तो यह है, ऐसी दशा मे तुमको तुम्हारे जीवन की सफलता के और सुख के लिए स्त्री ऐसी मिलनी चाहिए थी जो तुम्हारे अभावों की पूर्ति करती, जिसमे वे बातें, वे गुण मौजूद होते जो तुममे नहीं हैं। तुमको ऐसी स्त्री मिलनी चाहिए थी जिसमें गम्भीरता अधिक होती, जो चतुर चालाक होती, जो दृढ़ विचारों वाली होती, जिसमे स्वयं (Command) शासन और नियमन की शक्ति होती, जो, बुरा न मानना, माता, सहोदर भाई, पथप्रदर्शक, मित्र, सखी और साथ ही प्रियतमा का आवश्यकतानुसार समय पड़ने पर काम देती। दुनिया, पत्नी के महत्व को समझती ही नहीं है। माता वास्तव में पूजनीय, आदरणीय, स्नेह और भक्ति की सर्वश्रेष्ठ पात्री है, किन्तु पत्नी इसलिए माता से भी अधिक महत्व की वस्तु है, क्योंकि पत्नी तो वह है ही, किन्तु इसके साथ ही साथ वह माता है, सखी है, मित्र है और नायिका भी है।

वेदव्यास ने कह रखा है: —

" आत्मात्मनैव जनितः पुत्र इत्युच्यते बुधैः।
तस्माद्भार्याम् नरः पश्येन्मातृवत्पुत्रमातरम्" ॥

निरुपमा मे यह बातें नहीं हैं। उसमें हठ और अभिमान की मात्रा अत्यधिक है। चतुर कोचवान नूतन जानवर को सँभाल पुचकार कर हांकता है। हंटर दिखाने को पास रहता है, किन्तु उसकी चोट वह देता नहीं, निरुपमा पहिले ही ऐड़ लगाने लगी। सँभालना और रास्ता दिखाना तुम्हारा काम था सो तुम थे कमजोर प्रकृति के, तुमको स्वयं एक सहारे की जरूरत थी। तुम में (will) दृढ़ता, दृढ़ विचारों और दुनियासाजी का अभाव

था। प्रकृति की तुम्हारी कोमलता को उसने कमजोरी समझा। तुम आदर्श के दीवाने, भावुक थे, तुम उसकी बातों को ही प्रधान रखना रसिकता समझते थे, उसने इसे अपना जन्मजात अधिकार समझ लिया और इस तरह से वह अपने मन की, निरंकुश और प्रभुत्व की आदी होगयी। तुम एक कोने मे रहगये और उसकी इच्छा कानून वन गयी। इस तरह से आदि से ही तुम लोगो की प्रकृति की दो प्रकार की धाराएं दो ओर वहने लगी। चाहिए यह था कि दोनों का संगम होता, एक दूसरे से मिलजुल दो धाराएं एक हो वहतीं, किन्तु यह हो नहीं सका। तुम मन ही मन दु.खी रहने लगे, असंतुष्ट रहने लगे और तुम्हारे सुख-स्वप्न विलीन हुए। तुम फटे फटे रहने लगे और इस तरह निरुपमा के भी सुखो मे कमी आरंभ हुई। अगर दोनो मे एक भी चतुर होता तो स्थिति पर विचार कर सुधार सहज था किन्तु वह हठी, अभिमानिनी, अपने अभिमान मे चूर रही तुम इसलिए चुपरहे कि तुम देखते थे कि तुम्हारे कहने सुनने का असर ही उल्टा होता है। साथ ही तुममे यह माद्दा कहां कि दूसरे को अपनी मर्जी के अनुसार चला सको, और फिर तुम्हारी तो प्रकृति ही है कि दूसरों से कुछ न कहकर कष्ट सहन करते हो और चाहते हो कि तुम्हारे कष्ट को देखकर सहानुभूति से प्रेरित हो दूसरा ठीक रास्ते पर आजाय। अगर एक दूसरे से तुम लोग अपने हृदय की व्यथा का वखान करते, दोनो एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश करते तो कोई न कोई हल निकल ही आता किन्तु तुम लोगो ने इसकी फिक्र न की, अपनी धुन मे वहते रहे और इस तरह से नित्यप्रति एक दूसरे से दूर होते गये। ऐसी स्थिति मे तुम्हारी प्रकृति की मधुरता और कोमलता जाती रही, तुम्हारी सहनशीलता काफूर होगयी और शारीरिक और मानसिक कमज़ोरी का तुम परिचय देने लगे।

तुम्हारा मिजाज चिड़चिड़ा होगया, वात वात में तुमको क्रोध आने लगा। तनिक विपरीत वात होने से, तनिक मानसिक शांति का भंग होने से तुम्हारी निगाहें चढ़ जातीं। धीरे धीरे तुम्हारी जवान पर से भी तुम्हारा इस तरह से काबू जाता रहा। सच मानो अगर निरुपमा उन दिनों अपनी किसी सखी या सहेली को पत्र लिखती तो एक न एक दिन उसके पत्र में निम्नलिखित पंक्तियां जरूर होतीं:—

"झिड़की तो मुद्दत से मसावात होगयी
गाली कभी न दी थी सो अब बात होगयी,
बाक़ी है मारखाना सो आजकल के बीच,
सुन लोगी उसे तुम भी कि औकात होगयी"

वह भी वड़े वाप की वेटी थी, और फिर हठीली, उसे वर्दाश्त कहां, भी वह जवाब देने लगी। स्थिति और भी विगड़ी और इस समय में तुमने वहुत वड़ी गलती की, तुमने वर्वर (Cave Man) जंगली आदि-पुरुप को निकृष्ट प्रकृति का परिचय दिया। तुम्हारी भावुकता, कोमलता, सरलता, सव हवा होगयी और तुमने एक दिन खीज कर उसपर हाथ चला दिया। तुम्हारी कमजोरी का यह सव से वड़ा सुबूत था। आदि पुरुष (Cave Man) के मुग्धकर श्रेठ गुणों का परिचय ऊपर मैं दे चुकी हूं। उनको तो तुम प्रदर्शित नहीं कर सके, तुमने किया वह जिससे स्त्री के हृदय में तुरन्त ही घृणा उदय होती है। नतीजा वही हुआ जो होना चाहिए था। धीरे धीरे उसके हृदय से रहा सहा तुम्हारा मान और भय जाता रहा। उसकी लज्जा को भी तुम्हारी इन करतूतों ने धीरे धीरे धो वहाया और उस दिन तुम्हारे हाथ चलाने से ही कुलकामनी की लज्जा का त्याग कर वह अपने मा के घर चली गई।

रसिक ! तुम मेरी बात को सदा के लिए अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लो और अपने ही समान पुरुषों में यह घोषित कर दो कि स्त्री के हृदय से जो अपना मान, आदर सम्मान, भय और प्रेम एकदम मिटा देना चाहता हो और जो इसके साथ ही साथ यह चाहता हो कि स्त्री निर्लज्ज, मुँहफट, जवाब देने वाली और निडर हो जाय, उसके लिए सब से सहज नुस्खा यही है कि वह उस पर हाथ चलाने लगे, किन्तु इस प्रकृति के लोगों को मेरी इस बात को वेदवाक्य ही समझना चाहिए कि मार से स्त्री दासी भी नहीं बनी रह सकती, प्रियतमा का तो सवाल ही कहां है।

हाथ चलाने के तत्व और मर्म को देख लो और स्मरणशक्ति काम देती हो तो अपनी स्थिति से मिलान कर तुलना कर लो। पहिले पहल जिस दिन तुमने निरुपमा पर हाथ चलाया होगा, वह दुःख और लज्जा से अवाक् रह गयी होगी और धरती में मन ही मन समा जाने की बात सोचती रही होगी। उसको सबसे अधिक इसकी चिन्ता रही होगी कि कोई जाने नहीं। दूसरी बार उसके आंसू भी निकले होंगे और उसके मुँह से हुन फुन की आवाज़ भी निकली होगी। धीरे धीरे उसे इस बात का ज्ञान भी दुःख देने लगा होगा कि दास दासियों या कुटुम्बियों से यह छिपा नहीं रहा। तीसरी बार यह समझ कर कि मार का भी असर नहीं होता, वह काबू में नहीं आती, तुमने अधिक जोर से और अधिक मारा होगा। वेदना से, साथ ही साथ इस ख्याल से कि अब तो लोगों से यह छिपा नहीं रहा और इस आशा से कि कुटुम्बी हस्तक्षेप करें, चाहे वह घर की दासी ही क्यों न हो वह जोर से रोई और चिल्लाई होगी। तुम्हारी बातों को ज़ोर से और करकश स्वरों में उसने जवाब भी दिया होगा। भीतर ही भीतर मार की हीनता, निस्सारता और निकृष्टता सिद्ध करने के लिए उसने यह

भी निश्चय किया होगा—चलो मारो देखें कितना मारते हो, मैं भी नहीं सुनूंगी, "तुम काटो मेरी नाक और कान मैं न छोड़ूँ अपनी बान"। तुमने चुप कराने के लिए और भी सख्ती की होगी और उसके जवाब-स्वरूप यह इतने जोर से रोई और चिल्लाई होगी कि पड़ोसियों के घर भी गूंजने लगे होंगे और इसकी चर्चा भी उनमें हुई होगी। उसके रोक का यही प्रतिबन्ध था, जिस दिन यह टूटा और उसने यह समझ लिया कि अब किसी से भी कुछ छिपा नहीं रहा, वह शेर होगयी, इस मानी मे कि उसकी लज्जा जाती रही, उसका शील जाता रहा। इसी का नतीजा यह हुआ कि लज्जा का परित्याग कर और किसी की परवाह न कर वह उस दिन चादर ओढ़ अपने मायके चली गयी।

तुमसे यह सब कैसे हुआ, समझ मे नही आता। अक्सर अपढ़, मूर्ख, अपने समय में मार खाई हुई सासुएँ, स्वयं बहू से लड़ाई होने पर, उसे सताने, दंड देने और अपने काबू में करने के लिए अपने पुत्रों को शिक्षा देती हैं—"मार के आगे भूत नाचता है, मार तो देखूं कैसे नहीं सीधी होती"। अक्सर अपनी माता के तानों से खीज कर उनको शांत करने के लिए पतिदेवता हाथ चला दिया करते हैं, किन्तु इन सब बातों का नतीजा एक ही हुआ करता है और वह यही कि गृहस्थी दु ख और दरिद्र का केन्द्र बन जाती है।

प्रियम्वदा से कुछ बातें मैंने सुनी थी, उनके सहारे और कुछ अपने अनुमान और तुम्हारे चरित्र के ज्ञान से मैंने यह सब लिख डाला है। यह सब ठीक है या गलत, इसपर तुम स्वयं विचार कर लो, किन्तु अगर इन बातों का चतुर्थांश भी ठीक हो तो तुम निरुपमा से अपने हृदय के दु खों को कहो, प्रसन्न कर, राजी कर, फुसला कर, उससे भी उसके हृदय के दु ख की बातो को पूछो और बूझो, दोनों एक दूसरे की बातों पर विचार करो

और तब एक दूसरे के दृष्टि-कोण को हृदयंगम कर और यह संकल्प कर कि जीवन को अधिक से अधिक सुखमय बनाओगे, दोनों ही संकल्प की सिद्धि में लीन हो जाओ और हर समय एक दूसरे को समझने, प्रसन्न करने की चेष्टा में लीन रहो। कुछ ही दिनों मे तुम दोनों ही देखोगे कि तुम्हारा गृह इन्द्र का कानन हो गया, और उसकी दीवारें भी हर वक्त हंसती रहती हैं।

अन्त मे अब इतना ही कहना बाकी रह गया है कि तुम्हारी सिधाई, सरलता और कोमलता का मुझको ज्ञान था, तुम्हारी कमजोर प्रकृति से भी मैं परिचित थी, फिर भला तुमसे विवाह करने को मे कैसे राजी होती। मैं विवाह कर स्वामी चाहती थी, शासक चाहती थी, पुजारी, भक्त और सेवक नहीं। मैं चाहती थी मालिक, जिसके हुक्म मे मैं रहूँ, जो मुझको निःसन्देह ही मेरी भावनावों और कामनाओं को सदा आदर से देखते हुए, जैसी उसकी इच्छा हो घुमाये फिराये और परिचालित करे। मैं विवाह कर चाहती थी कि एक वृहद् वृक्षरूपी पति जिसकी शाखारूपी भुजाओं मे लता सी लिपटी हुई मैं शोभा पाती, साथ ही जो मेरे हिलने डुलने से स्वयं न हिल जाता और जो संसार की झंझटों रूपी प्रचंडावात में स्थिर खड़ा रहता और मेरी रक्षा करता, किन्तु तुमसे समम्बन्ध कर यह सब मेरे मन की मन ही मे रह जाती, तुम से मुझको यह सब न मिलता, उलटे इन सब बातों का भार मुझ ग़रीब अबला पर ही होता। मैं स्त्री थी, मालिक बनने में मुझको सुख न मिलता, साथ ही मेरा विकास मारा जाता, मैं अपने व्यक्तित्व की अभिवृद्धि जैसी चाहिए न कर सकती क्योंकि स्त्री-जीवन का उद्देश्य और आदर्श सेवा है और सेवा करने में ही उसे स्वर्ग-सुख मिलता है।

मैं इन्हीं कारणों से लाचार थी, तुम्हारे वार वार आग्रह करने पर भी मैं तुमसे विवाह करने को सम्मत नहीं हुई और मैंने नाही कर दी। आशा है आज समस्त बातों को जान कर, तुमने मुझको उस समय की तुम्हारी प्रार्थना को अस्वीकृत करने के लिए माफ कर दिया होगा।

क्षमाप्रार्थिनी—

मनोरमा

तलाक़

मनोरमा-वास
प्रयाग
१४-१२-१६१७

"नामृतम् न विषम् किंचिदेकाम् मुक्त्वा नितम्बिनीम्
सैवामृतलता रक्ता, विरक्ताविषवल्लरी"

"लेकिन यह ज़िक्र और है, इसको न छेड़िये
हासिल पराई फ़िक्र से अपनी निवेड़िये"

मोहन,

तुम्हारा पत्र पढ़ कर आश्चर्य हुआ। मेरा यह ख्याल था और दुनिया का भी यही ख्याल है कि स्त्रियों के पेट में बात नहीं पचती, दुनिया भर के रड़हो पुतहो में और एक घर की बात को हज़ार घरों में फैलाने में वह सिद्धहस्त होती हैं, किन्तु मर्द भी किसी बातों को जान कर चुप नहीं रह सकते, यह आज तुम्हारे पत्र ही से मैंने जाना।

"रसिक" की बीबी अपने मायके चली गयी, परेशानी तुमको होगयी है, और इस परेशानी में तुम यह भी भूल गये कि किसी के घर की बातों की पर्दापोशी तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम्हीं नहीं, संसार के जितने पति हैं दूसरे की बीबियों के लिए सदा दुःखी रहते हैं, दूसरों की बीबी बड़ी सरल, सीधी और सदा उनको कष्ट

में दिखाई देती है। दूसरे की बीवी में सदा उनको एक सकरुण दृष्टि दिखाई देती है जिसको वह समझते हैं कि उनकी बीवी में दूसरे नहीं देख सकते। उनकी नजरों में दूसरे की बीवी का पति सदा उसके अनुपयुक्त, हृदयहीन और पशु दिखाई देता है। दूसरे की बीवी समझदार भी बहुत दिखाई देती है, वह सहनशीलता, साहस, सब्र और होशियारी की जीती जागती मूर्ति दिखाई देती है और इन सब से भी अधिक खूबी उसमें यह होती है कि अपनी बीवी से वह अधिक सुंदर और मनोहारिणी प्रतीत होती है।

तुमने जो कुछ लिखा है उसके सम्बन्ध में इतनी ही टीका मैं पर्याप्त समझती हूं। तुमने हमसे इस सम्बन्ध में कुछ करने के लिए भी लिखा है, किन्तु मेरा कहना यही है कि ऐसी बातों में मैं नहीं पड़ सकती, दूसरे के घरेलू झगड़ों में पड़ना एक स्त्री के लिए, विशेष कर जब कि मैं उस बीवी को जानती ही नहीं, लाभकर के बजाय हानिकर होगा। दूसरे ऐसे मामलों में दखल किसी ऐसे व्यक्ति को देना चाहिए जिसका सम्बन्ध "रसिक" या उसकी बीवी से घनिष्ट हो। कोई पास का रिश्तेदार या मित्र ही ऐसे अवसर पर कारगर हो सकता है, मैं इस झगड़े में इसीलिए नहीं पड़ सकती। तुम्हारे पत्र की अन्य बातों के सम्बन्ध में कुछ तुमको जरूर लिखना चाहती हूं।

तुमने निरुपमा के पक्ष में अपने पत्र में अच्छी वकालत की है, किन्तु क्या मैं इतना पूछ सकती हूं कि जो जन्मसिद्ध अधिकार तुमने निरुपमा के केवल स्त्री होने के कारण बतलाये हैं, क्या वे ही अधिकार तुम्हारी बीवी के भी हैं और क्या इनको उसे देने को तुम तैयार हो? यह भी बतलाओ कि जो दोष और त्रुटियां तुमने 'रसिक" में बतलाई हैं क्या वे ही तुम में और तुम्हारे पतियों की जाति या बिरादरी में अधिकतर मौजूद नहीं हैं? तुम्हीं नहीं,

संसार के समस्त पति अपनी पत्नी को बड़ी क़िस्मत वाली समझते हैं, क्योंकि उनका सा पति उनको मिला।

"रिन्दे ख़राब हाल को ज़ाहिद न छेड़ तू,
तुझको पराई क्या पड़ी अपनी निबेड़ तू।"

क्यों कहलाते हो? तुम, पतियों की जाति ही कुछ निराली है। संसार में विरला ही कोई पति होगा जो जीवन में एक समय में किसी दूसरे की स्त्री के पास, जो अपनी बीबी नहीं है, केवल इस लिए न गया हो कि वह ललना उसको समझे, उसके दुःख दर्द को बूझे, उसके साथ सहानुभूति प्रकट करे, उसके दुःख में दुखी हो और उसकी आंखों से उसकी कठिनाइयों को देखे और उस पर तरस खाय। तुमने कभी यह न सुना होगा कि एक पत्नी कभी दूसरे के पतियों में इतनी दिलचस्पी लेती हो या उसने कभी दूसरे के पति के पास जाकर उसकी सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश की हो।

निरुपमा से मुझे विशेष सहानुभूति नहीं। यह सम्भव है कि स्त्री, स्त्री के प्रति अधिक निर्दय और पाषाण-हृदय हुआ करती है इसलिए मेरी ऐसी भावना हो, किन्तु यह हो तब भी मेरा ख्याल यह है कि निरुपमा का मायके जाना उसकी बड़ी भूल थी। "धी बेटी अपने घर की भली"। "पैसा गांठ का जोरू किसकी जो पास रखे उसकी"। इसके साथही

"तीर तिमूटी इसतिरी, छूटत वश न आय,
झूट जो माने यह वचन, वे नर मूढ़ कहाय।"

को हमारी पुरानी कहावत है।

मैं बहस के लिए यह मान लेने को तैयार हूं कि "रसिक" ने कोई घोर अन्याय ही किया होगा और सर्वथा विवश होकर ही निरुपमा मायके गई होगी, फिर भी मैं समझती हूं कि ताली दोनों हाथों से ही बजती है और झगड़े के लिए निरुपमा कम

उत्तरदायी नहीं होगी। अस्तु, जो कुछ हो, मैं तो सिद्धान्तरूप से विवाहिता स्त्री के पति से लड़ कर अलग रहने या घर के बाहर कदम निकालने के भी विरुद्ध हूं। मै ऐसी दो एक स्त्रियां के नाम गिना सकती हूँ जिन्होंने पति से लड़ कर और कोई सम्बन्ध न रख, अलग रह कर, अपनी गृहस्थी और बाल बच्चों का ऐसा सुन्दर प्रबन्ध किया जो पति की छाया मे रह कर वे दो जन्म में भी न कर सकतीं और जैसा सुन्दर प्रबन्ध उनके पतिदेव न कर सकते, किन्तु इन दो एक स्त्रियों की नियम के अपवादस्वरूप, असाधारण स्त्रियों में ही गणना होनी चाहिए। सभी स्त्रियां इनका अनुसरण कर सफल हो सकती हैं, ऐसा मैं मान नहीं सकती।

मै स्त्री हूँ इसलिए स्त्रियों की कमियो और विशेपताओं से विशेप रूप से परिचिय हूँ। संसार पर, समाज पर, सन्तानों पर इस तरह के झगड़ो का और अलग रहने का कितना बुरा प्रभाव पड़ता है, केवल इन्हीं दृष्टियों से स्त्री के पति से अलग रहने के प्रश्न को मैं नहीं देखती। मै इसी से विरोध नहीं करती, क्योंकि ऐसी स्थिति मे पले हुए बच्चे बड़े होकर अपनी अवस्था मे वही कर सकते हैं जो उनके माता पिता ने किया था। मेरे सामने एक दूसरा भी दृष्टिकोण है। तुम कहोगे मैं अनुदार हूं, अपनी जाति वालियों के लिए मेरे हृदय में दु:ख, दर्द, सहानुभूति और उदारता नहीं, मैं उनमें विश्वास नहीं करती, मैं उनके साथ अन्याय करती हूं और हजारों वर्षों से जो पुरुप-समाज कहता आया है उसीके संस्कार से मैं प्रभावित हूं। तुम ताना दोगे कि जैसे एक पति अपनी पत्नी को भाग्यशालिनी समझता है, क्योंकि उसका सा पति उसे मिला और क्योंकि सृष्टि के आरम्भ काल से ही उसकी माता ने उसके हृदय में इस विश्वास को जड़ दिया है, ठीक उसी तरह से लाखों वर्षों के संस्कार से

में भी प्रेरित हूं। जो समझो, किन्तु मेरा कहना यह है कि पत्नी को पति की शरण, छत्र-छाया और देखरेख में ही रहना चाहिए, अन्यथा राह में ठोकरें खाने और मार्ग से भ्रष्ट होने की भी सभावना है। मैं स्त्री हूं, स्त्रियों के मान और गौरव का इसलिए तुमसे कम मुझको ख्याल नहीं है। मैं दकियानूसी ख्याल की नहीं, यह भी तुम जानते ही हो। फिर भी मैं यह समझती हूं कि देश और समाज को वर्तमान स्थिति मे अभी कुछ काल तक जब तक स्त्रियों को उनकी मानवी स्वतन्त्रता, उनके अधिकार नहीं मिल जाते और आर्थिक रूप से भी वह स्वतन्त्र नहीं होजाती स्त्री को पुरुष की देख रेख, रक्षा, सहायता और सहारे की जरूरत रहेगी। मैं स्त्री को पुरुष की अपेक्षा कम धर्मरत या धर्मभीरु नहीं समझती। मेरे ख्याल मे वास्तव मे स्त्रियो मे पुरुषों की अपेक्षा अधिक धर्मभावना रहती है। अज्ञान से या मदान्ध दशा में वह जो चाहे करे, किन्तु पुरुषो की भांति जानते हुए वह अधर्मपथ पर कम चलती है, किन्तु यह सब होते हुए भी स्त्री को मार्ग से विचलित कर देना कुछ अंशो मे बहुत सहज है। वह सरल प्रकृति की होती है, दुनिया की चालबाजियों मे परिचित नहीं होती, चतुर दुष्ट मनुष्यों को उसका बहका लेना आसान होता है। साथ ही स्त्री गंभीर प्रकृति और देर से उत्तेजित होने के कारण एक बार आपे से बाहरहोने पर सहसा अपने को सम्हाल नहीं सकती और प्राय: अन्धी हो जाती है और बुरा से बुरा कर्म कर बैठती है। मैं स्त्रियों के विरुद्ध, न कुछ कह सकती हूं और न कुछ लिखना ही चाहती हूं, पुरुष की अपेक्षा इन बातों के सम्बन्ध मे वे सहस्र गुना अधिक पूज्य और आदरणीय हैं किन्तु फिर भी यह साफ कहना चाहती हूं कि स्त्री के जीवन में प्रकृतिवशात् ऐसे अवसर उपस्थित होजाते हैं जिनमे उससे ही उसकी

रक्षा करना नितान्त आवश्यक हो जाता है। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि स्त्रियों का विश्वास न किया जाय, वे चंचल होती हैं या कुचरित्रा होती हैं। यह कदापि नहीं। इसके विपरीत मेरा कहना यह है कि उनका पूरा विश्वास किया जाय, उनकी ओर से ऐसी भावना या सन्देह को कभी हृदय में स्थान भी न दिया जाय और उनको स्वतन्त्र रह सकने का और हर समय अपनी रक्षा करने का हर तरह से आदी बनाया जाय। हमारा यह विश्वास है कि पूर्ण रूप से विश्वास-भाजन होने के वे योग्य हैं और उनकी ओर से संसार को यही विश्वास होना चाहिए कि वह कुसन्देह से परे हैं * किन्तु एक चतुर पति का फिर भी यह परम कर्तव्य है कि अविश्वास से नहीं, सन्देह से नहीं वरन् मित्र और सहायक के रूप से, प्रेम के नाते हर समय अपनी पत्नी पर वह निगाह रखे, ठीक उसी तरह से जैसे कोई उस्ताद तैराक जल में स्वच्छन्दता से तैरते हुए अपने शागिर्द पर, नदी के किसी कोने वह हो, दूर से ही निगाह रखता है। पति को पत्नी की वैसी ही देख रेख रखनी चाहिए, जैसे कोई माता जाड़े के दिनों में सर्वथा यह जानती हुई कि पुत्र को उसी ने सुलाया है, वह सुख से पड़ा सो रहा है, रात्रि में जब तब उठ कर उसके कम्बल को लिहाफ को, इसलिये ठीक कर दिया करती है कि उसे शीत न लग जाय। पत्नी को अविश्वास से ताकने की जरूरत नहीं, कोई भी स्त्री अगर कुछ करना चाहती है, ताकी नहीं जा सकती। पत्नी का पूर्ण विश्वास करना चाहिए, यही नहीं, पत्नी को यहां तक मालूम होना चाहिए कि अपनी रक्षा का भार उसी पर है किन्तु यह सब होते हुए भी प्रेम से, सहायक के नाते पत्नी को मार्ग के खाई खड से बचाने की ओर सदा पति को निगाह रखनी चाहिए

---

*(Ceaser's wife is above suspicion)

और सतर्क रहना चाहिए। "उड़ी जात कितहूँ गुड़ी, तऊ उड़ायक हाथ"—पतङ्ग कहीं उड़ कर क्यों न जाय उसकी डोर उड़ाने वाले के हाथ में रहने से वह गिरती नहीं, मार्ग से भ्रष्ट नहीं होती और उसके अधीन रहती है। पुरुष विचलित हो जाते हैं, वे दूसरों की बीवियों के पीछे ही तो भागते हैं, वे बीवियां किन्ही की पत्नीयां ही तो होती हैं।

मैं केवल इन्हीं सिद्धान्तों की दुहाई दे निरुपमा के मायके जाने या पति से दूर रहने को पसन्द नहीं करती। तुमने लिखा है कि जब प्रकृति नहीं मिलती, जब दोनों दस दिन भी खुशी खुशी साथ नहीं रह सकते तो दोनों का अलग रहना ही अच्छा। तुमने इस बात पर शोक प्रकट किया है कि समाज में तलाक़ जायज़ नहीं, तुमने तलाक़ की उपयोगिता का बखान किया है। मोहन! एक ज़माने में मैं भी तलाक के लेक्चर झाड़ा करती थी, उसके लाभों को सहस्रमुख से बखान किया करती थी, किन्तु अब मेरी राय कुछ और ही है। मैं नहीं कहती कि किसी स्थिति में भी तलाक़ आवश्यक या उचित नहीं, मैं तलाक की आंशिक उपयोगिता को, विशेष स्थितियों और अवसरों में स्वीकार करती हूँ और उसका प्रतिपादन करने को भी तैयार हूँ किन्तु हर रोग का और हर प्रकार की विवेकहीनता का इलाज "तलाक" नहीं है, साथ ही तलाक़ की प्रथा से लाभ दस बीस को हो सकता है, हानि हज़ारों को। अगर पत्नी या पति नशेबाज़ हो, निर्दयी हो, दुराचारी हो, घर का माल असबाब जुए मे हारता हो, मार पीट करता हो, घर मे कभी रहता ही न हो, गृहस्थी से कोई सम्बन्ध ही न रखता हो, या आता भी हो तो कभी अपने कर्तव्य की उसे चिन्ता ही न हो, हर तरह से बालबच्चों के जीवन के नष्ट होने की सम्भाना हो तो केवल ऐसी स्थिति मे ही तलाक उपयोगी और उचित हो सकता है, निस्सन्देह ही ऐसे सुहाग से रंडापा भला, "खाना न

कपड़ा सेत का भतरा" की आवश्यकता सचमुच ही कुछ नहीं। तेल की जलेबी अस मुआ दूर से दिखाय । तेल की मिठाई, देखने में अच्छी, खाने मे बुरी, ऐसे पति के होने से पति का न होना ही अच्छा है । कम से कम, विना व्यर्थ की जलन और हाय हाय के पिसना ही पीसकर चार रोटियां तो मिलजाँयगी, किन्तु आदर्श भिन्न है, प्रकृति भिन्न है, स्वभाव नहीं मिलता, मैं पद्य हूं, दूसरा गद्य है, मुझको उपन्यास पसन्द है, दूसरे को नाटक पसन्द है, मुझे सिनेमा पसन्द है, दूसरा रिंक में नाच देखने या स्केट करने जाना चाहता है, मुझे स्वाराजियों की नीति पसन्द है दूसरे को प्रतियोगी सहयोगियो की ऐसी बातो के नाम पर तलाक आवश्यक नहीं । मेरा कहना यह भी है कि मै तलाक होने पर भी पति या पत्नी के दूसरे विवाह के और इस तरह दूसरे तलाक * की तैयारी के पक्ष मे नहीं हूं । अमरीका की ओर देखो, वहां क्या हो रहा है ? कोई घर कोई कुटुम्ब सुरक्षित नहीं। अभी पति पत्नी हैं, घन्टे भर बाद गैर हैं । ज्यो ज्यों आंख खुलती जाती है विकास होता जाता है, घनिष्टता बढ़ती जाती है, भेदभाव और तलाक के उतने ही नूतन कारण पैदा होते जा रहे है। सच पूछा जाय तो तलाक की प्रथा के रायज होने मे तलाक की आव-श्यकता की अधिक से अधिक पुष्टि हुई है। इसने नित नये कारण

---

* "तलाक़" प्राचीन भारत में जायज था। विशेष स्थितियो में तलाक़ हो सकता था, पति के जीवित रहते सब जाति की स्त्रियाँ विवाह कर सकती थीं। तलाक़ की शर्तें ज़रूर कठिन थीं। तलाक़ का एक दूसरा रूप राम ने सीता का त्याग कर दिखाया जिसमें राम ने ब्रह्मचारी और सीता ने ब्रह्मचारिणी का व्रत धारण किया। पहिले प्रकार का तलाक़ बाद मे अपनी खराबियों के कारण जायज़ नहीं रह सका, ऐसी, हमारी धारणा है। कृ० का० मा०

तलाक़ के लिए पैदा कर दिये है। यूरोप और अमरीका की ओर देखो। गृहस्थ और सामाजिक जीवन का मचान टूटने से पहिले चरचराता सा दिखाई दे रहा है। ऐसी सम्भावना प्रतीत होरही है कि विवाह की प्रथा ही उड़ जाने वाली है। अभी ही अमरीका के एक जज, लिन्डसे ने यह राय प्रकट की है कि ट्रायल मैरेजज (Trial marriges) हुआ करें अर्थात् विवाह के पहिले जांच के लिए, इसलिए कि पति पत्नी सुखी जीवन वहन कर सकेंगे या नहीं, नायक और नायिका कुछ दिनों साथ रह कर देख लिया करें और कुछ दिनों के सहवास के बाद यदि यह मालूम हो कि दोनों एक दूसरे के साथ सुखपूर्वक रह सकेंगे, तब वह गिरजे मे जाकर विवाह के बंधन से बंधा करें। जज साहब यह भूल ही गये कि यदि जांच के समय मे वह सुखी रह सके और विवाह हो जाने के दस वर्ष बाद अनबन शुरू हुई तो क्या होगा ? वह यह भूल गये कि दस दस बच्चों के पिता हो जाने के बाद पतिदेव का मन कभी कभी नव-स्त्री को देख उसके प्रेम मे फंस जाता है और वे उससे विवाह करने के लिए पहली बीबी से तलाक चाहते हैं।

मानव-हृदय बड़ा ही चंचल है, वह बारूद की भाँति प्रज्वलित हो जाने वाला है, साथ ही वह अजीब रबड़ का सा है, तनिक मे ही उछलने कूदने लगता है और एक कवि के शब्दों में—

"..... . .. . . जहा देखी नई सूरत,
दिले नादा मचलता है; हम तो बस यही लेंगे" ॥

अगर गुण के नाम पर पति परिवर्तन किया जाना उचित है तो मेरा कहना यह है कि "आदर्श-पति" या मनुष्य, कोरी कल्पना की वस्तु है और उपन्यासो तथा नाटकों ही मे मिल सकता है। आदर्श-पुरुप होता नहीं, ऐसी दशा मे जैसा हो उससे ही (You have to make the best of a bad job) परस्पर

समझौता के नाम पर काम चलाना चाहिए। अगर समझौता* ही सर्वश्रेष्ठ है, तो यह तनिक विवेक और बुद्धि से साधारणरूप से अधिकतर युगलों के बीच हो सकता है, किन्तु अगर पति-परिवर्तन सांसारिक सुख के नाम पर किया जाय तो हमारा कहना यह है कि इन्द्रियोपासना की इति नहीं होती, किसी तरह की तृप्ति असम्भव है, शराब की प्यास की भाँति पीते जाओ, पीते जाओ बुझती नहीं। साथ ही हम लोगों को एक शायर की इस उक्ति के मर्म को भी सदा ध्यान में रखना चाहिए कि

'इस नफ़्सपरवरी का नतीजा यही मिला,
इन हसरतों की मौजों का साहिल नहीं रहा।'

परिवर्तन के लिए परिवर्तन की चाह होने से थोड़े ही दिनों बाद फिर परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होगी। मेरी राय में पति पत्नी को बांध रखने का संसार में एक ही उपाय है और वह है परस्पर का मेल जोल या समझौता और दोनों का अपनी संतान के प्रति प्रेम और कर्त्तव्य, साथ ही दोनों का एक दूसरे का लिहाज और यह विश्वास कि विवाह का बंधन टूट नहीं सकता, †"अग्निसाक्षिकाहि विवाहानिवर्तन्त इत्याचार्य समय" अग्नि की साक्षी सहित किया हुआ विवाह बन्धन तोड़ा नहीं सकता। यह बंधन कोई भी पति-पत्नी अपने लिए तैयार कर सकते हैं और इससे बन्धकर सुखी जीवन व्यतीत कर सकते हैं, इस बन्धन के डर से मतभेद, प्रकृति-भेद और जितने इस प्रकार के भेद हैं उसी तरह से भागते हैं जिस तरह से रस्सी की मार से भूत।

---

*Compromise

† "For better for worse, for richer for poorer, in sickness and in health, till death us do part".

ईसा का भी यही उपदेश है।

कृ० का० मा०

तुम मेरी इस बात को वेद-वाक्य ही समझना कि वैवाहिक-जीवन को सुखमय बनाये रहने का मूलमंत्र एक ही है और वह है एक दूसरे के लिये अधिक से अधिक त्याग करने की वांछा और एक दूसरे की जान देकर भी समुचित सेवा का संकल्प। ईश्वर के लिए यूरोप और अमरीका के चश्मे से ही सब बातों को न देखा करो और अगर यह करना जरूरी ही है तो कृपा कर यूरोप और अमरीका की दशा क्या है और वहां वाले अब क्या सोच रहे हैं, इसकी ओर भी ध्यान रखा करो। बाप बेटों की प्रकृति में अन्तर है, उनमें नहीं बनती किन्तु वह किसी तरह अपनी खुशी और नाखुशी की बातों में काट छांट कर गुजर कर लेते हैं, माता पुत्र के दृष्टिकोण में युगों का अन्तर है, मा दकियानूसी, कलहकारिणी है, पुत्र यूरोप और अमरीका के साथ हवा में उड़ रहा है, किन्तु फिर भी माता, और पुत्र किसी तरह बसर करते ही हैं, भाई बहिन की प्रकृति नहीं मिलती, माँ बेटी एक दूसरे से कोसों दूर हैं, किन्तु फिर भी एक दूसरे को छोड़ नहीं देती। मित्रों से भी हम सब बातों में मिलते जुलते ही नहीं। यह सब जाने दो, नौकरी करते हो, वकालत करते हो, अधिकारियों से, जजों से नहीं बनती हर वक्त डांट खाने पर मन मसोस कर रह जाते हो और फिर भी गुजर करते ही हो। और जाने दो, इस नौकरशाही से कौन सा सुख उठा रहे हो, अधिकारीगण, पेट-जीवी, चार पैसे के नौकर, कलक्टर, कमिश्नर, लाट सभी पग पग पर कभी तुमको तंग करते हैं तुम्हारी तनिक नहीं सुनते हैं, तुमको घृणा की दृष्टि से देखते है, तुमको खरी खोटी भी सुना देते हैं और तुमको नीचा दिखाते हैं; फिर भी दफ्तर, कोर्ट, कौंसिल, एसेम्बली और अधिकारियों के पास जाते ही हो। मेरा कहना यह है कि अगर ऐसी और इन सब स्थितियों में तुम निर्वाह कर लेते हो तो एक पत्नी के साथ पति या एक पत्नी, पति के साथ निर्वाह

क्यों नही कर सकती यह मेरी समझ के बाहर है सच तो यह है कि रूठे को मनाये नहीं फटे को सिलाये नहीं तो संसार मे काम ही कैसे चल सकता है।

वास्तव में मोहन! बात यह है कि हम सब विवाह के अर्थ और उद्देश्य को ही भूल गये हैं। हम भूल ही गये हैं कि विवाह का अर्थ प्रवृत्तियों की शांति नहीं है विवाह का अर्थ है विकास की सीढियों पर प्रत्येक मिनट ऊपर चढ़ने में अधिक से अधिक एक दूसरे की सहायता और सेवा और एक दूसरे को निवृत्ति के मार्ग के लिए अधिक उपयुक्त बनाना।

आशा है मेरी इन बातों पर तुम धीरज के साथ विचार करोगे और इन्द्रियपरायणता और लोकायतता* के चश्मे से नही, जो केवल दुःख के पंक मे हम सब को फंसाने वाला है वरन संसार को कम से कम परिश्रम में अधिक से अधिक सुख का स्थान बनाने के ध्यान के चश्मे से तुम विवाह और वैवाहिक जीवन के मसलों पर विचार करोगे और निरुपमा की फिक्र से परेशान न होकर अपनी पत्नी के उपयुक्त पति बनने की फिक्र मे अब परेशान होगे। कृपा कर इस बात को भी सदा ध्यान में रखना कि विवाह एक कर्त्तव्य का पालन है जिसका उद्देश्य है विकास को प्राप्त करना और जीवन को अधिक से अधिक स्वर्गीय जीवन के उपयुक्त बनाना। उसकी क्रिया है दूसरे के जीवन को अधिक उपयोगी बनाने के लिए कष्ट सहन और निरन्तर त्याग और सेवा। कर्त्तव्य पालन में अपनी खुशी, अपनी वासना, अपनी कामना का प्रश्न बहुत कम हुआ करता है। विवाह की वेदी पर बैठ अग्नि तथा अन्य देवताओं को साक्षी दे पति और पत्नी इसी कर्त्तव्य के पालन का वचन देते हैं और इसी का संकल्प करते हैं। तुम समझ सकते

---

*Materialism

हो कि फिर इस निर्वाह में व्यक्तिगत ख़ुशी, कामनाओं और पसन्द का सवाल नहीं उठाना चाहिए। इसी दृष्टि से देखने से सब नर नारी अपने वैवाहिक जीवन को सुखमय बना सकते हैं और अपने जीवन के उद्देश्य की सिद्धि कर सकते हैं। संसार में मेरी मन्द बुद्धि में वैवाहिक समस्या का एकमात्र हल यही है।

तुम्हारी—

मनोरमा

प्रेम में धोखा विश्वासघात है

मनोरमा-वास,
प्रयाग
४-५-१६२२

"Taking a kiss in the dark has often led to a man taking a leap in the light."

सुलभामवमनुतेऽसौ कामयेत दुर्लभामस्पृशाभियुङ्क्ते च।
(इति नरशीलम्--रतिरहस्यम्)

प्यारे बिहारी,

आज प्रातःकाल चाय के टेबिल पर बैठी ही थी कि कलकत्ते के समाचार पत्रों में तुम्हारा और तुम्हारी नई प्रियतमा का चित्र देखा और तत्सम्बन्धी समाचार पढ़ा। टोस्ट तो मैं बिना कुचले ही निगल गई और चाय प्याले में ही पड़ी पड़ी ठंढी हो गई।

प्रायः आठ वर्ष से अपने जीवन के दर्पण में मैंने तुम्हारी छटा का तो कहना ही क्या, तुम्हारा प्रतिबिम्ब भी नहीं देखा। तुमको किसी तरह से कष्ट पहुचाने के लिए नहीं वरन् एक तथ्य बात की भाँति इतना ही कह देना चाहती हूं कि तुम्हारा हमारे जीवन-श्रोत में नाममात्र को भी अस्तित्व शेष न था। जिस तरह से कुटिल ने कुश की जड़ में मठा दे उसको सदा के लिए निस्तेज कर दिया था, जिस तरह उसने नन्दराज कुल का अन्त किया था

ठीक उसी तरह से मैंने तुम्हारे लिए अपने हृदय से जो कुछ सहानुभूति और स्नेह था उसको निःशेष किया था।

बुरा न मानना सदा से, मालूम नहीं क्यों, तुम्हारे लिए मेरे हृदय में एक प्रकार की माता की सी भावनाएं थीं। मैंने उस समय भी तुमको याद होगा, एक बार तुम से कहा था कि एक न एक दिन अपनी भावुकता के कारण तुम विपत्ति मे जरूर पड़ोगे। आज तुम्हारे सम्बन्ध में यह पढ़ कर कि एक युवती विवाहिता लखपती स्त्री के प्रेम-पाश से बंध कर उसके साथ तुम भी घर से निकल गये हो और विवाह भी तुम दोनों का होना सहज, साथ ही, सम्भव नहीं और मुकदमा भी चलने वाला है, तुम्हारी इस विपत्ति में मेरा हृदय सहानुभूति से छलकता हुआ, बरबस, प्रचण्ड वेग से तुम्हारी ओर भागा जा रहा है।

आज मेरा सारा दिन नष्ट हो गया। सूर्य्य की रश्मियां खिड़कियों के शीशो से कमरे मे चारो ओर अपना कब्ज़ा जमाती जा रही है। मै आज बाज़ार जाने को थी, कल पंडितजी की वर्षगांठ है, उनके लिए कुछ प्रेजेन्ट्स लाना चाहती थी, बच्चों के लिए धोतियां लाना चाहती थी, अपने लिए भी सारियां कुछ लेनी थीं, किन्तु अब मैं कैसे जा सकती हूं, जब कि एक, जिसको मैं प्यार की दृष्टि से कभी देखा करती थी, जिसके प्रेम सलिल से कभी मेरा यह हृदय प्लावित हुआ था, जिसके प्रेमाग्नि से दीप्त स्नेहमय, चंद्रानन को देखने के लिए कभी मेरा हृदय-समुद्र उमड़ा करता था, इस तरह से संकट मे पड़ा हुआ है और जिस समय कि समाज मे चारो ओर उसी की चर्चा है, किन्तु हृदय रखते हुए भी कोई उसके साथ सहानुभूति प्रकट करने का साहस नहीं कर सकता और न उसको आश्वासन या सलाह देने को ही उसके पास फटकता है।

बिहारी ! तुमको वह अन्तिम दिन याद है जिस दिन तुम्हारे नूतन रंगीले बूटेदार रूमाल को मैंने अपने आंसुओं में तर कर दिया था, जिस दिन मैंने बहुत ही क्रोध में तुमसे कहा था कि तुमसे निवाह मुश्किल है, तुम्हारे साथ कुछ भी व्यवहार रखना नितान्त असम्भव है और तुम मेरे पास मत आया करो। वह रूमाल अब तक मेरे पास है। मेरा पाउडर बाक्स उसी से बँधा हुआ है, यद्यपि मैं यह भूल ही गई थी कि वह किसका है और कैसे और कब से इस प्रकार मेरे साथ रहने लगा। आज समाचार पत्रों में तुम्हारा सुंदर मुखड़ा देख यह सब बातें याद आ गई। इस समय भी तुममें हृदय बंधने वाला सौंदर्य है, और तुम्हारी नूतन प्रियतमा के सुधबुध खोकर पागल हो जाने पर मुझको तनिक भी आश्चर्य नहीं। किन्तु यह तुमने घोर पाप किया है, यह तुम्हारा ही नटखटपन है, तुम्हारी दुष्टता है और इसके लिए तुमको दंड भी मिलना चाहिए इसके कहने में मुझको तनिक भी संकोच नहीं।

मैं पत्र लिख रही हूं, सम्भव है, यह सोच कर कि इस समय भी तुम्हारे साथ किसी को सहानुभूति है और मैं तुम्हारे संबन्ध में चिन्ता कर रही हूं तुमको कुछ संतोष हो और सुख मिले। मैं ईश्वर से प्रार्थना कर रही हूं कि न्यायालय तुमको थोड़ा ही दण्ड देकर शांत हो जाय। यह पत्र सम्भव है एक सुदूर जंगल से आती हुई प्रतिध्वनि और आवाज की भांति तुमको प्रतीत हो, संभव है तुम यह भी सोचने लगो कि हम दोनों की प्रेम-कहानी इतनी छोटी क्यों हुई, इतनी जल्दी क्यों समाप्त होगई ?

मुझको आश्चर्य न होगा यदि तुमको उस सन्ध्या की भी याद आजाय जिस दिन मैं तुमसे नाराज थी, तुम से बोल नहीं रही थी और जबरदस्ती बुलवाने की चेष्टा में तुमने मेरा हाथ दुखा दिया था। किन्तु, बिहारी ! ऐसी चोटों से सुख-स्वप्नों का अन्त नहीं

हुआ करता। तुमको उन कटु बातों की भी याद आती होगी जो तुम अपनी इच्छा के अनुकूल मुझको चलाने के लिए कभी कभी कहा करते थे। रूठ जाना, घर बैठ रहना, हफ्तों न आना, मेरी बराबर वाली सखी सहेलियों के यहां हाज़िरी देना, डाह की अग्नि में झुलसा कर मुझको अपने अनुकूल बनाने की कोशिश और मेरी कठिनाइयों पर मुस्कुराना यह सब तुम को याद होगा। किन्तु सच मानो तुम्हारी इन हरकतों से भी मेरे भावों में अन्तर नहीं पड़ता था।

बात यह कि हम लोगों मे से जो जीवन की नाट्यशाला मे रंगमंच पर स्वयं पात्र बने होते हैं उनको तमाशा असली बहुत कम दिखाई देता है, वे तमाशा देखनेवाले, तमाशाई न होकर खुद तमाशा होते हैं और इस तरह कुछ देख नहीं सकते। मैं भी तुम्हारे समान ही एक पात्र के रूप मे थी, इसीलिए मेरी आँखे देखते हुए भी कुछ नहीं देख सकती थीं। तुम्हारी त्रुटियो और कमियो से बड़ी व्यथा होती थी, किन्तु इनके कारण ज़रा भर कम प्रेम तुमसे मैं नहीं करती थी। तुम घुन्ने और चिड़चिड़े थे, कभी कभी तुम बड़े निर्दयी हो जाते थे, किन्तु यह सब होते हुए भी किसी समय तुम्हारी आकर्षण शक्ति कम नहीं होती थी और तुम सदा प्रेमपात्र ही दिखाई देते थे। सच जानो, मै इन सब त्रुटियो के होते हुए भी तुमको मन-मन्दिर का देवता सदा के लिए बना लेती, बड़े प्रेम भाव से तुम्हारी सदा पूजा करती, तुम्हारे ही सुख को सुख और दु.ख को दुख मानती, यदि विधि की विडम्बना से सहसा एक दिन तुम्हारा एक दूसरे व्यक्ति के प्रति निर्दयता का मुझको पता न चल जाता। यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि एक स्त्री अपने प्रेमी के हाथो, उसके द्वारा की गई कितनी ही निर्दयता को खुशी से सहन कर सकती है, किन्तु जब वह देखती है कि उसी निर्दयता का कोई दूसरा शिकार है तो उसका तड़पना देख कर स्त्री के सामने तुरन्त ही उस निर्दयता का वीभत्स नग्न स्वरूप खड़ा होजाता है, और

उस समय वह देखती है कि वह क्या है, और कितनी अक्षम्य है। तुम यह भी जानलो कि जिस दिन तुम ने "ललिता" की कथा मुझसे कही उसी दिन मे मेरे हृदय मे तुम्हारे लिए तनिक भी प्रेम या स्नेह शेष नहीं रहा। मुझको इस समय भी तुम्हारा गर्व सहित यह कथन याद है कि वह कितना तुमसे प्रेम करती थी, तुम्हारी प्रेम-प्रतिमा के सामने उसने किस प्रकार से अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था और फिर भी तुमने उसका कैसा त्याग किया और तुमने उसे किस तरह बिसार दिया। तुम यह अनुभव ही नहीं कर रहे थे कि तुमने कैसा घोर अत्याचार किया है, और जिस समय मेरे सामने बैठे तुम यह सब बखान कर रहे थे, प्रेम का पड़ा हुआ पर्दा मेरी आंखो से उठ गया और स्वच्छ खुली हुई आंखों से प्रथम बार मैंने तुमको देखा और पहिचाना। इस नाटक मे मेरा कोई पार्ट न था' इस समय एक दर्शक के ही रूप मे मैं थी, और मैंने तनिक निकट से तुम्हारे हृदय और तुम्हारी आत्मा को देखा। मैंने देखा कि पत्थर की तरह वह सख्त है और सदा हिम से ढके हुए कैलाश की भांति वह प्रेम और उष्णताविहीन है। उस क्षण के बाद से मैंने तुम्हारे साथ उदारता का व्यवहार नहीं किया और तुमको कभी किसी बात के लिए माफ भी नहीं कर सकी। तुमको याद होगा कि दूसरे ही दिन मेरी तुम्हारी कितनी हाय हाय हुई थी, क्योंकि एक महासाधारण सी तीखी बात तुमने मुझको कह दी थी। मैं रोने लगी और हजारों कटु बाते मैंने तुमको कही थीं। मैंने क्रोध मे सब कुछ तुमको कहा था और यह भी कह दिया था कि मैं तुम्हारे सम्बन्ध में कैसी कैसी बीभत्स बाते अब सोचने लगी हूं। तुमने पूछा था कि स्त्रियां इतनी विवेक-विहीना क्यों हुआ करती है, तुम मुझसे बहस करना चाहते थे, किन्तु मैंने एक न सुनी और तुम क्रोधित हो जोर से दरवाजा बंद कर चले गये।

ललिता की कथा याद करो। मैं तनिक भी कटु नहीं होना चाहती, विशेष कर इस समय में जब कि संसार की समस्त सहानुभूति की तुमको आवश्यकता है, किन्तु मेरे हृदय की रही सही भावुकता मुझे मजबूर कर रही है कि अपने दोनो के मृत-प्रेम के नाम पर तुम्हारे हृदय से इतनी अपील जरूर करूं।

प्राय: पन्द्रह वर्ष का जमाना गुजरा, याद करो, हम तुम स्वर्गवासी मि० गोखले का व्याख्यान सुन लौटकर आये थे। ठंढ जोरों से पड़ रही थी, मैं तुम्हारे लिए चाय बनाकर लाई थी और तुम अंगीठी के पास बैठे कोयलों मे कुछ जला रहे थे और मुस्कुरा रहे थे।

मैंने पूछा था यह कौनसा स्वांग हो रहा है और तुमने जवाब दिया था, जेब में ललिता के दो पत्र पड़े थे, वर्षों से इस शेरवानी को नहीं पहिना था। मैं ने तुमसे पूछा था कि ललिता कौन, उसके पत्र तुम्हारी जेब मे कहां से आये, और धीरे धीरे मैंने सारी कथा तुमसे कहलवा ली थी।

उसकी अवस्था १७ वर्ष की ही थी जब तुमसे उससे प्रथम भेट हुई थी। तुम कांग्रेस में स्वयसेवक बन कर गये थे, वह भी स्वयंसेविका थी। तुमने मुझसे बतलाया था कि एक रात्रि मे विषय-निर्वाचिनी समिति में उसका रूप देख कर तुम मुग्ध हो गये। तुम अपने को सम्भाल न सके। तुमने उसका परिचय प्राप्त किया, रोज उससे मिलने लगे, कोशिश कर छाया की भांति उसके पीछे रहने लगे और अन्त में तुमने एक दिन सुअवसर देख अपने हृदय की बात उससे कह दी। तुमने यह बतलाया था कि किस प्रकार रो रो कर, उसके चरणों पर सर रख, शपथ खा, तुमने उसको विश्वास दिलाया था और उससे विवाह का वचन प्राप्त किया था। तुमने बतलाया था किस तरह तुम कलकत्ते मे रह गये, किस तरह से उसके माता पिता से तुमने परिचय प्राप्त किया, किस तरह से तुमने

उसके माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर परीक्षा के अन्त होते ही जून जुलाई में विवाह करने का तुमने उसे विश्वास दिलाया। वह कलकत्ते में रह कर विवाह की कल्पना में लीन हुई, तुम परीक्षा के अर्थ कालेज में आ गये। तुम अपने दोस्तों और पुस्तकों में ललिता की सुध-बुध भूल गये। अपनी पुरानी सुसाइटी के दोस्तों में तुमको कुछ भी याद न रहा। तुमको अपने पुराने दोस्तों और पुराने शग़लों से फुरसत न थी, उधर ललिता के पत्र तुमको तुम्हारे वचनों की याद दिलाने के लिए बराबर आ रहे थे। तुम ईमानदारी के साथ अपना पार्ट खेलना चाहते थे, किन्तु तुम लाचार थे। तुमने खुद ही कहा था कि वह कांग्रेस की, सुदूर परदेश की प्रेमकथा थी कालेज में उसका वातावरण न था। कहाँ कलकत्ता, युवावस्था का प्रथम जोश, शाम की मनोमुग्धकारी हवा, चारों ओर बिजली की रोशनी और स्वच्छन्दता और कहाँ कालेज और परीक्षा की चक्की। कलकत्ते का मस्तिष्क ही न था, न सौदा मोल लेने वाला वह सौदाई दिमाग़ ही था। इसके सिवाय, उसके पत्र ही ऐसे होते थे कि किसी रसिक-हृदय को बेगाना कर दे। वे इतने भद्देपन से लिखे होते थे, इतनी गलतियाँ उनमें होती थीं, विराम इस भद्दी तौर से दिये होते थे कि हृदय की रसिकता सैकड़ों कोस दूर भाग जाती थी। तुम लेखक, साहित्य के प्रेमी, ऐसे पत्र तुम्हारे हृदय पर भाला सा काम करते थे। तुम्हारे ऐसे रसिक कवि-हृदय के लिए ऐसी लड़की के साथ जीवन व्यतीत करना, जो साहित्य से हज़ारों कोस दूर थी, असंभव था। तुम्हारा हृदय ललिता से भागता था और इस तरह से तुमने अपने अन्तःकरण को समझा लिया।

मैंने तुमसे मिन्नत की कि तुम बचे हुए टुकड़े को, जो तुम्हारे हाथ में था मुझको दिखला दो, मैंने पृथ्वी पर सर झुका तुमसे

कहा कि मुझको उनका लिखना मात्र दिखला दो, संसार में सहस्रों ही ललिताएं हैं, मैं क्या जानूँगी कि यह कौन सी है, लेख देखने से भी मैं उसे भला कैसे पहिचान सकूंगी, आज कल कानवेन्ट की पढ़ी हुई सभी लड़कियाँ प्रायः एक ही तरह से लिखती हैं।

तुमने कागज का टुकड़ा मुझको दे दिया और विश्वास करो आज तक उस पत्र को मैं भूल नहीं सकी हूँ। वह कैसे हृदय के रक्त से लिखा हुआ था, कैसा मार्मिक था। एक एक शब्द इस समय भी मेरे हृदय पर खिचित है। आज तक विश्वास करो, वैसा मर्मभेदी पत्र मैंने नहीं पढ़ा। उसकी सादगी, उसकी सहिता थी और साहित्य की छटा का अभाव उसकी सचाई की दाद देता था। वह आत्मा का चमत्कार था। पढ़ते पढ़ते मुझे मालूम होता था कि उसके हाथ तुम्हारे आलिंगन के लिए बढ़ते आ रहे हैं। तुम उसके पत्रों का जवाब नहीं भेजते थे, तुम उसे पत्र नहीं लिखते थे, तुम्हारी चुप से वह मर्माहत हो रही थी, साहिए बेआब, बिना जल की मछली की भांति वह तड़प रही थी, उसकी तड़पन उसके प्रत्येक शब्द में ध्वनित थी। उसने लिखा था—"इसी समय मेरे हृदय में यह भाव उठा था कि कदाचित् तुमने हमको बिसरा दिया। इस ख्याल से ही मेरी कैसी दशा हुई। मेरा गला बैठ गया, घिग्घी बंध गई, और बरबस आँसू प्रचंडवेग से चढ़ दौड़े। प्रियतम बिहारी! ऐसी भावनाओं से मुझ को बचाओ। अगर कहीं ऐसा हुआ, तो विश्वास करो, मैं जीवित नहीं रह सकूँगी। मेरी सखियाँ सब जानती हैं, मैं उनके बीच क्या मुँह दिखाऊँगी"। अन्त में उसने लिखा था कि तुमको जिस रंग की सारी पसन्द थी उसी रंग की सारियाँ और जैकट उसने कितनी ही बनाई हैं, इसलिए कि तुम्हारे सामने उनको पहिन कर वह तुम्हारे प्रेम सलिल में स्नान कर सके।

सोचो तो, अगर इस पत्र मे ठीक ठीक विराम नहीं दिये गये थे, अगर इसमें गला रुंधने की जगह बैठ गया था, अगर इसमें आँसू बरबस चढ़ दौड़े थे, घिग्घी बंध गई थी, तो कहाँ का आसमान टूट पड़ा था ? मैं तो कहती हूं कि हज़ार कमियों के होते हुए भी यह पत्र गर्टे या इवालार्ड और इलोई के सर्वोत्तम प्रेम पत्र के बराबर ही रखा जा सकता है। घिग्घी बन्धने से ही तुम्हारी रसिकता को आघात पहुँचा, तुम्हारे बनावटी प्रेम को किनारा कसने का कारण मिल गया। खूब हो! अगर तुम अपने अहंभाव और अपने बड़प्पन के जोश में अन्धे न होते तो तुम देख सकते थे, कि पत्र हृदय के रक्त और प्रेमाश्रुओं से लिखा हुआ था और विरामों के स्थान हृदय के चीत्कार और आत्मा की पुकार से परिपूर्ण थे। सोचो, यह सब होने पर भी तुमने पत्र का उत्तर नहीं दिया था।

मेरे चुनौती देने पर तुमने कहा था कि अपनी चुप्पी से तुम उसे समझा देना चाहते थे कि तुम्हारे भाव बदल गये हैं और तुमको उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है।

अपनी चुप्पी से ? बिहारी! क्या इससे भी अधिक हृदय-विहीन उपाय सत्य के प्रकट करने का और हो सकता था ? मैं आज तक अपने को यह न समझा सकी, कि तुम्हारा सा खिलाड़ी, जो क्रिकेट, हाकी, फुटबाल से लेकर, ताश के खेल तक मे किसी तरह की बेईमानी और धोखा पसन्द नहीं करता, प्रेम में इस तरह से धोखा देना कैसे गवारा कर गया ? खूब समझ लो, किसी स्त्री से यह कहना कि अब तुम उससे प्रेम नहीं करते, वास्तव में उससे विश्वासघात करना और उसे धोखा देना है। तुम्हारे हृदय पर तुम्हारा काबू नहीं, तुम किसी से ज़बर्दस्ती प्रेम नहीं कर सकते, किन्तु तुम चुप्पी को बचा सकते हो, उसे दूर रख सकते हो, चुप्पी, भयानक चुप्पी, क्षणों को

मर्यों का रूप दे देती है और कितनो ही की जीवन-नौका को प्रेम समुद्र की पाषाण-शिलाओं से टकरा कर नष्ट-भ्रष्ट-कर देती है।

हमारा तुम्हारा प्रेम, तुम कहते थे, दूसरा है। यह युवावस्था का प्रथम तूफान नहीं है। तुम कहते थे हम तुम एक ही शहर में रहते हैं, रोज कालेज में, कालेज के बाहर, घर में मिलते हैं। एक दूसरे से भले प्रकार परिचित हैं, जवानी के जोश और भावुकता पर नहीं वरन् विवेक की नींव पर हम लोगों का प्रेम स्थित है। बिजली की तड़क भड़क, कलकत्ते की सन्ध्या की मनोमुग्धकारी हवा और नववयस की उच्छृंखलता और स्वच्छन्दता का इसमें हाथ नहीं है। आँख खोल कर, सब कुछ देखते हुए, होश में, बेसुध नहीं, हम लोगों का विवाह होगा और हम लोग इसलिए सदा सुखी रहेंगे, किन्तु मेरा हृदय कुछ और ही कहा करता था। मेरा हृदय किसी तरह से यह मानता ही न था कि जिस मनुष्य ने ऐसे पत्र का उत्तर न दिया हो, उसके साथ सुखी-जीवन व्यतीत हो सकता है। इस घटना से मेरे हृदय में सच जानो, तुम्हारे लिए तनिक भी प्रेम नहीं रह गया था। यह मत समझो कि मैं अपने हृदय की विशालता प्रकट करने के लिए यह सब कह रही हूं। "ललिता" के व्यक्तिगत सुख में मेरा कोई स्वार्थ न था, उसको मैं जानती भी न थी, मैं अपने ही स्वार्थों की रक्षा से प्रेरित थी, मैं यह देख रही थी कि जो मनुष्य इतना निर्दयी एक के साथ हो सकता है, वह दूसरे के साथ और मेरे प्रति भी उसी प्रकार निर्दय हो सकता है। सच मानों ललिता के प्रति तुम्हारे व्यवहार ने मेरे हृदय की प्रेमाग्नि पर मनों बर्फ का काम किया और वह सदा के लिये बुझ गयी।

मैं तुम को दोष नहीं देती। कितनी ही बातों में तुम आदरणीय और सर्वोत्तम प्रेम के पात्र थे, तुममें बड़ी आकर्षण शक्ति थी,

तुममें गुण अनेक थे किन्तु तुम्हारी सर्वश्रेष्ठ कमी तुम्हारी स्वयम् अपने को धोखा देने की शक्ति थी। तुमने अपने को धोखा दिया यह समझ कर कि तुम प्रेम करते हो, किन्तु जब तुमने देखा कि वास्तव में वह प्रेम नहीं है और उससे निकलना चाहा तो तुमने अपने मनगढ़न्त विचारों से अपने अन्तःकरण को समझा लिया और उसे बोध दे लिया। मुझको इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तुम्हारे जीवन में कितनी ही ललिताएँ पानी के बुलबुलों की समान पैदा हुई होंगी और मिटी होंगी और हरएक के बारे में तुमने अपने तर्क से अपने अन्तःकरण को बोध दे लिया होगा। बिहारी! तुम नहीं जानते कि संसार में सुख स्वप्नों को नष्ट करने वाली सड़कों ही ग़लत विरामों वाले पत्र के समान ही अन्य बातें भी हैं।

किन्तु बिहारी! यह तुम्हारा ही व्यक्तिगत दोष नहीं। यह तो संसार के समस्त मर्दों की बपौती है। दुनियाँ के समस्त मर्द अपने अभिमान में इतने चूर होते हैं और अपने को इतना बड़ा समझते हैं कि वे किसी स्त्री के साथ कैसा ही बेजा, हीन और बुरा व्यवहार क्यों न करें, उसे वह कितना ही कष्ट क्यों न पहुँचायें, वे समझते हैं कि उसके समस्त कष्टों का मावज़ा उसको उनके एक चुम्बन में मिल जाता है। यही नहीं, तुम्हारे ही समान संसार के समस्त मर्दों की दशा यह है कि वह प्रथम ही प्रेम करते हैं और प्रथम ही लड़कर अलग भी होते हैं।

बिहारी! यह सब तुम्हारा क़ुसूर नहीं यह हम सब का अभाग्य है। और इस संसार की विचित्रता भी है। यहाँ पवित्र पुरुष निकृष्ट स्त्रियों के प्रेम में पागल होता है। निकृष्ट स्त्रियाँ महापवित्र सत्पुरुषों के चरणों में खेलने को दीवानी होजाया करती हैं। लम्बे पुरुष बौनी स्त्रियों के अधर चुम्बन के लिए मजनूँ होजाते हैं और बौनी स्त्रियाँ ताड़ से लम्बे पुरुष के वक्षःस्थल पर मुख से

सोने के लिये लैला की भाँति लालायित होती हैं। इस संसार मे यह भी याद रखो, मूर्खों का विवाह प्राय. ऐसी बुद्धिमती स्त्रियों से होता है जो संसार पर राज करने की क्षमता रखती हैं और चतुर ❀विद्वानों को ऐसी स्त्रियाँ मिलती है जिनको सिवा हाय हाय करने के कुछ आता ही नहीं। विहारी! संसार विचित्रतामय है और इसकी सबसे बड़ी विचित्रता यही है कि यहाँ शेष भाग, छोर, विलकुल विपरीत और विरुद्ध (Extremes) एक दूसरे से मिलते हैं, एक समान और सदृश जीव (Affinities) करोडो मे एक दो ही मिलते हैं।

अपने पुराने प्रेमियो और अपनी प्रेम-कहानियों पर कभी कभी मैं विचार किया करती हूँ, कभी कभी किसी किसी के वारे मे शंका उठ जाया करती है कि उसको किस श्रेणी मे रखूं। तुम्हारे सम्बन्ध मे, विहारी, मैंने बहुत विचार किया है और तुम्हारे समस्त गुणों और अवगुणो को सोच कर मैंने तुम्हारे लिये (dear bad man) "डियर बैड मैंन" की उपाधि निश्चित की है। तुम्हारे अल्हड़पन मे तुम्हारे हृदय की सुकुमारता और विचित्र मृदुलता का अच्छा सम्मिश्रण है, और तुम्हारी निर्दयता उसी प्रकार की है जैसी उन लड़कों की होती है जो अपने स्नेह के पाले तोते या मैंने को सता कर ही खुश होते हैं।

विहारी! 'ऊँचे चढ़कर देखा घर घर ये ही लेखा' हम सब जैसे के तैसे हैं, कमियों के केन्द्र हैं, न अच्छे हैं, न बुरे हैं और सच पूछो तो अच्छे बुरे में चार अँगुल का ही तो फर्क है। अक्सर संसार मे बुरे मनुष्यो का बहुत ही सुंदर हृदय देखा

❀ "कहीं कहीं गोपाल की, गई चौकड़ी भूल,
काबुल मे मेवा कियो, ब्रज में कियो बबूल।"

गया है, साथ ही अक्सर भले मानुसों का एक मिनट भी साथ असह्य हो जाता है।

"ऐ ज़ौक किसको चश्मे हिकारत से देखिये,
सब हम से हैं जियादा कोई हम से नहीं"

तुम सहज ही में ठीक हो सकते हो अगर तनिक तुम यह सोचने लगो कि जीवन उत्तरदायित्व-पूर्ण है और उसके दायित्व का वहन परमावश्यक है।

एक समय मे मैं यह सोचा करती थी कि तुम जीवन के उत्तरदायित्व को अनुभव करने लगोगे। अक्सर कल्पना में मैं तुमको विस्तर पर बैठे हुये, एक अपने ही छोटे संस्करण को ईश्वर की प्रार्थना सिखाते हुये देखा करती थी। मैं चित्रित करती थी कि तुम कह रहे हो "ईश्वर मुनुवा को अच्छा बालक बना दे," तुम भी बड़ी गम्भीरता के साथ इसकी चर्चा किया करते थे, मानो पलने पर पड़े हुये बालक को अच्छे होने की ज़रूरत है।

सृष्टि के आरम्भ से सब युगों में और सभी प्रदेशों में वयस्क बुरे मनुष्यों ने पवित्रात्मा सुन्दर बालकों को ऐसी शिक्षा दी है, फिर भी आश्चर्य है कि छोटे लड़के नटखट होते गये और बड़े धीरे धीरे सुधर गये।

मैं आशा करती हूँ कि तुम्हारे सम्बन्ध में भी यही सत्य चरितार्थ होगा।

तुम्हारी—
मनोरमा

प्रेम स्थायी हो नहीं सकता

मनोरमा-वास
प्रयाग
१-१-१९२३

"It is one of nature's elementary laws that our senses may be satisfied but not indulged in."

*आत्मनः प्रीतिजनन योषिताम् मानवर्धनम् ।
कन्या विस्रम्भणम् वेत्ति स तासाम् प्रियो भवेत् ॥
(रति रहस्यम्)

बिहारी, रसिक, प्रेम, गोपी, मोहन,

स्वभावतः तुम सोचते होगे कि जब मैंने तुम लोगों की त्रुटियों के सम्बन्ध में इतने लेक्चर दिये हैं तो कम से कम मैंने

---

*"यः कामी आत्मनः प्रीतिजनन, योषिताम् अंगानाम् मानवर्धनम् कन्या विस्रम्भणं, कन्या सौख्यं च वेत्ति, जानाति सः तासां कन्याना प्रियो भवेत् ।" (रतिरहस्यम्)

बहुत सोच समझ कर अपने पति को ढूंढा तथा पसन्द किया होगा, मेरा पति मनुष्य-विशेष होगा और उसमें एक भी त्रुटि न होगी, किन्तु तुम लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे पंडितजी के सम्बन्ध में ऐसी कोई भी बात ठीक नहीं है यह बहुत ही साधारण मनुष्य हैं, उनमें कोई विशेषता नहीं है, साथ ही त्रुटियों और कमियों का उनको मजमुआ या भंडार कहा जाय तो बेजा न होगा। साधारणतया वह हृष्ट पुष्ट, सुन्दर, सुडोल मनुष्य हैं, भले घर के हैं और भले आदमी हैं। उनके पास रुपया अधिक नहीं, साधारण स्थिति के मनुष्य हैं और परिश्रम कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। जिस समय मैंने उनको प्रथम प्रथम देखा था उस समय भी उनकी यही स्थिति थी और आज भी उनकी दशा यही है। एक बात और कहदूँ, मैंने उनके प्रेम में मत्त हो विवाह नहीं किया। कम से कम वह प्रेम वैसा पागल करने वाला, प्रलयकारी, विद्युत सचार करनेवाला या मोहान्ध करने वाला न था जैसा कि तुम लोगों में से किसी किसी के प्रति मेरे हृदय में कभी था। इन पतिजी के लिए मेरे हृदय में शुरू शुरू में एक दूसरे ही प्रकार का प्रेम था और वह था उस प्रकार का जैसा माताओं के हृदय में अपने छोटे पेट पोछनेवाले बच्चे के लिए हो जाया करता है जब वे उसे अच्छा बनाने की चेष्टा करते करते निराश हो प्रयत्न करना छोड़कर चुप बैठ जाती हैं। पंडितजी में तुम लोगों की अपेक्षा कोई भी विशेषता नहीं है, वरन प्रेम को शब्दों या भावों द्वारा प्रगट करने में, प्रेम की भाषा बोलने में ये तुम लोगों का मुकाबला करना तो दूर रहा, तुम लोगों से बहुत पिछड़े हुए हैं, किन्तु तुम लोगों से यह अनुभवहीन नहीं हैं। तुम लोग कालेज में पढ़ने वाले या कालेज से ताजे निकले हुए थे, किन्तु यह दुनियासाज और दुनियां देखे हुए हैं। इनकी उम्र भी तुम लोगों से अधिक है। यह न समझ लेना कि किसी तरह से यह

बुड्ढे हैं या इनकी उम्र ढल चली है। जैसा कि मैं ऊपर लिख चुकी हूँ यह खासे हृष्ट पुष्ट और युवा पुरुष है, प्रात स्नायी हैं और सदा ठंढे पानी से स्नान करते हैं। छः साढ़े छः वजे तक स्नान ध्यान से छुट्टी पा यह अपने काम मे लग जाते हैं। यह भी वतलादूं कि जिस तरह से स्नान और भोजन नित्य नियम है उसी तरह से १५ मिनट कसरत का करना भी नित्य नियम ही है। संसार मे कुछ होजाय पंडितजी कसरत करने मे आलस्य और नागा कभी नही करते। (कसरत ही की भांति यह आम और दुग्ध के भी प्रेमी हैं, कुछ हो, कहीं से अगर आम मिल सकता है तो जरूर खायंगे, पेट भर खायंगे) इससे तुम लोग यह समझ सकते हो कि दिनका आरम्भ सुन्दर और मेरे पति के योग्य ही होता है। इनमे किसी प्रकार को कोई गन्दी बुरी आदते है या नही, मैं कह नही सकती, किन्तु यदि हो और दिखाई देने लगे तो वह मेरे असंतोप या नैराश्य का कारण नहीं होगा, क्योंकि मैंने विवाह करने के पहिले असाधारण वातो और सुख स्वप्नो की आशा ही नहीं की थी। मैंने एक महासाधारण, जैसे संसार मे प्राय: हुआ करते है मनुष्य समझ कर ही इनसे विवाह किया था। मैने इतना ही देख लिया था कि यह हवा के झोको के साथ उड़ने वाले नहीं हैं, दुनियां देखे, अनुभवी, स्थिर-प्रकृति और समझदार हैं। प्रात-स्नायी और एक निर्दिष्ट अपने ही नियम का घड़ी की सुई की भांति पालन करने वाले हैं, अपना भला बुरा समझते है, विचारों को रखते है और उनके अनुसार काम भी कर सकते हैं। मैंने यह भी देख लिया था कि यह एक वहुत ही साधारण मनुष्य है, नव्वे फी सैकड़ा आदि पुरुष की ही विशेपताओ वाले हैं, किन्तु मेरे हृदय के निर्मित सांचे में पूर्णरूप से ढल जाने मे इनको विरोध या आपत्ति न होगी केवल अगर मै वुद्धि और विवेक से ऐसा कर सकूं। तुम लोगो को यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि:—

और दूमरो के शासन की शक्ति है, उसकी सब से सहज किन्तु सब से कठिन परीक्षा यही है। तात्पर्य यह कि इन बातो पर हम लोगों का प्रेम स्तम्भित नहीं है और इस तरह मे उसके जल्दी फीके पड़ने की सम्भावना हम लोगों ने दूर कर दी है। मैं यह जानती थी कि रूप और यौवन नाशवान् है, बढ़ने के स्थान पर हज़ार मुलम्मेबाज़ी पर भी यह क्षीण होगा, पुरुष की कामवासना नित्य के सहवास से और उम्र के तकाज़े से कम होगी, साथ ही इसकी अधिकता स्वास्थ्य के लिए हानिकर होती है, इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर हम लोगों ने इसे कम महत्त्व प्रदान किया। हम लोगों ने स्थायी प्रेम, स्नेह और मित्रता के लिए एक दूसरे की अपनी शक्ति के अनुसार सेवा करना निश्चित किया, सदा दूसरे का हर बातों मे, हर समय में लेहाज़ रखना निश्चित किया, यही नहीं, अपनी शक्ति भर दूसरे की आवश्यकताओ की पूर्ति और दूसरे को प्रसन्न रखने का हम लोगो ने संकल्प किया और दोनों का एक दूसरे के प्रति सिद्धान्त यही रहा, (Unconditional surrender) बिना चूं चरा के पूरा आत्म-समर्पण। एक बात और कह दूँ, मैंने यह नहीं रवा रखा कि आध घंटे मे वह दर्जन बार मेरा चुम्बन करते, या घड़ी घड़ी मेरा मुख निहारा करते। इस कारण से अगर सौन्दर्य कम होने पर या समय की गति से वह मेरी ओर से इन बातों मे उदासीन होंगे तो मेरा हृदय टूटेगा नहीं और वह भग्न हो बैठने नहीं लगेगा। उनके सामने हर समय मैं गुड़िया भी नहीं बनी रहती और न रंगी चुगी हर वक्त बनी ही रहती हूं। उन्होंने मुझे साधारण सादी धोतियों मे घर का काम काज और प्रबन्ध करते देखा है, तरकारी बनाते और अचारों के घड़ों में पड़े हुए मेरे हाथों को भी देखा है। मैंने यथाशक्ति अपने असली आत्मा और अपने रूप से उनको परिचित करा दिया है, उस रूप और उस आत्मा

से जिसे वह नित्य सुबह और दिन में हर समय काम काज करते देखेंगे। हर समय उनके सामने होने के पहिले मैं शीशे के सामने नहीं होलिया करती। इन बातों के सम्बन्ध मे मैंने केवल सफाई और पवित्रता की ओर ही सदा ध्यान रखा है। मै सदा बहुत ही साफ कपड़े पहिनती हूं, इसलिए नहीं कि वह उससे प्रसन्न हों, मैं पहिनती हूं इसलिए क्योंकि गन्दे कपड़ों का पहिनना शारीरिक और मानसिक दोनों स्वास्थ्य के लिए हानिकर है, क्योंकि कपड़ों का मैल नागवार न लगने से, आत्मा का मैला होना भी एक दिन सह्य सकता है और इसलिए भी क्योंकि गन्दगी मुझको स्वयम् पसन्द नहीं।

"अंदर छूत नहीं बाहर कहें दूर दूर"

की मैं पुजारिन नहीं। हां, सुबह स्नान करने के समय, जैसा प्रत्येक सभ्य स्त्री को चाहिए, टीका टिकुली जरूर लगाती हूं और अपने शरीर की रक्षा के लिए शृंगार जरूर करती हूं। इसी कारण से क्यों कि जानती हू कि टेबिल, कुर्सी-मेज वगैरह भी साफ-सुथरे और उनकी पालिश ठीक रहने से अधिक दिन तक मजबूत और अच्छे रहते हैं। हां, इस बात का जरूर लिहाज रखती हूं कि जो उनको अप्रिय हो या उनको प्रिय न हो वह काम मैं नहीं करती। जो उनको पसन्द न हों उन कपड़ों को मैं कभी नहीं पहनती और न उनकी इच्छा के विरुद्ध आचरण ही करती हूं। रात्रि का शृंगार उनकी इच्छानुकूल ही होता है, सारियां या गहने जो उनको प्रिय हैं या जिनके लिए उनका आग्रह रहता है, उन्हीं को सदा धारण करती हूं। एक बात और कह दूं, अनेक स्त्रियां बाहर जाने के समय, ब्याह शादियों में, दावतों में, मेले-तमाशे में जाने के समय सुन्दर से सुन्दर भड़कीले, चमकीले या चमक दमक वाले कपड़े और गहने पहनती हैं, अपना सर्वश्रेष्ट

शृङ्गार वह दूसरों को दिखाने के लिए करती हैं, मैंने इसके विपरीत नियम यह रखा है कि मेरे पास और मुझमें जो सर्वश्रेष्ठ है वह सदा पंडितजी के लिए है जो करती हूं वह उन्हीं के लिए करती हूँ। जो जेवर कपड़े जिस रात्रि में मुझे पहनने होते हैं, उनको दिन में या शाम को अपने शयनागार में सुसज्जित कर रख देती हूं और रात में पंडितजी के कमरे में आने के पहिले उनको धारण कर लेती हूं। रात्रि में ही या सुबह तक वह उतर भी जाते हैं। स्त्रियों में मैंने एक विचित्र प्रथा नोट की है, बाहर जाते समय तो वह दो सौ चार सौ और पांच सौ की सारियां पहन कर जायंगी, किन्तु पति को, उनको उन सारियों में देखना भी नसीब नहीं होता। जो सारियों का देने वाला और गहनों का बनानेवाला है, वही उनकी छटा और सौन्दर्य को देखने से वंचित रखा जाता है। एक बात और कह दूं, स्त्रियां अपनी शोभा भड़कीली सारियों और गहनों से दबी रहने में समझती हैं, मैं इसके विपरीत इसकी ओर अधिक ध्यान रखती हूं कि सादगी और सुहावनापन किसमें है? कौनसी चीज किससे साथ मेल खाती है? और कम से कम बोझ लाद कर अधिक से अधिक शोभा को मैं कैसे प्राप्त कर सकती हूं?

"है जवानी खुद जवानी का सिंगार,
सादगी गहना है इस सिन के लिए"

मैंने इसी तरह से प्रयत्न कर पंडितजी को उनके असली रूप में देखने की चेष्टा की है। एक दो बार उनके दफ़्तर में ऐसे समय में चली गयी हूं जब कि वह अनुमने थे, क्लान्त थे, खीजे हुए थे या क्रुद्ध या चिड़चिड़े हो रहे थे। मैंने चौबीस और अड़तालीस घंटे की बढ़ी हुई दाढ़ी में भी उनको देखा है। इस कारण से तकिये पर पड़े हुए उनके गड़ते हुए बालदार गालों को देख मैं विचलित नहीं हूंगी।

यह सब बातें तुम लोगों को सदा साधारण, व्यावहारिक, भावुकता की हत्या करने वाली, सांसारिक और स्वर्गीय नहीं वरन् पृथ्वीतल की प्रतीत होंगी, तुममें एक, कम से कम, मुझपर यह अभियोग लगायेगा कि पतिजी में मेरा विश्वास नहीं है, मैं उनसे प्रेम नहीं करती और यह कि बिना स्वर्गीय प्रेम से प्रेरित हुए ही मैंने उनसे विवाह कर लिया है। मेरा जवाब इतना ही है कि यह किसी का सोचना निर्मूल और गलत होगा। मैं पंडितजी का पूर्ण विश्वास करती हूं, मेरा उनके प्रति अगाध स्नेह भी है किन्तु मैं इतनी मूर्ख नहीं कि मैं मानव-हृदय रूपी ज्वालामुखी का भी विश्वास करूं। साथ ही मैं यह भी जानती हूं कि वह (wild) जंगली, अनियमित, अंकुश हीन, पागल करने वाला, सर्वनाशक प्रेम जो प्रेमीगण एक दूसरे के प्रति अनुभव करते हैं, स्थायी हो नहीं सकता, अगर वह स्थायी हो सके भी तो यह उनकी हत्या और उनका खातमा कर देगा। हमारा तो यह विश्वास है कि प्रेम स्थायी हो नहीं सकता जब तक कि विवाह उसका ऐसा रूपान्तर न करदे कि वह प्रेम ही न प्रतीत हो।

सच तो यह कि सच्चा और असली विवाह तो तब ही शुरू होता है जब अन्य सब मानवी संबन्ध यहां तक कि इन्द्रियो-पासना और इन्द्रियों का संसर्ग (Sezual intimacy) भी खत्म हो जाता है. जब "मैं" और "तुम" के शब्दों का अस्तित्व ही, कम से कम पति और पत्नी के संसार में, शेष नहीं रह जाता। संसार के निवासियों ने एक बड़ी भूल कर रखी है। हम लोगों ने 'विवाह' और "विवाह की प्रथा" को पर्यायवाचक शब्द समझ लिया है, किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। "विवाह" का अर्थ है दो आत्माओं और उनके साथ ही इनके दो शरीरों का भी परस्पर लय, इसके विपरीत "विवाह की प्रथा" पुरुष और स्त्री की आत्मा के नहीं, वरन् उनके

शरीरों के और उनके सामाजिक संबन्ध को—जो प्रायः नाम मात्र में ही "विवाह" सदृश पवित्र नाम से पुकारा जा सकता है,—धर्मानुकूल बना देने का नियम और आयोजन मात्र है। सच्चा विवाह, संभव है, पाधा पुरोहित के और सामाजिक विवाह से उत्पन्न हो या न हो। यह भी संभव है कि कोरे प्रेम से भी सच्चा विवाह हो या न हो। पाशविक आकर्षण भी हो, प्रेम भी हो, दोनों की प्रकृति और मस्तिष्क की गति भी एक समान हो किन्तु फिर भी सच्चा "विवाह" होगा नहीं, हो सकता नहीं, जब तक कि दोनों में चरित्र और नियमन की शक्ति न हो, क्योंकि इन्हीं दोनों की सहायता से जीवन में वह स्वरैक्य, सान्य और समता (Harmony) पैदा हो सकती है जिसके बिना सम्मिलित जीवन (Joint life) और स्वर्गीय-विवाह का स्वप्न एक शब्द-जाल मात्र है।

एक बात और भी कह दूँ, प्रेम और घृणा (Love and-hatred) प्रायः भाई बहिन ही के समान हैं और साथ ही चलते हैं, इसलिए अगर मैं कोरे, अन्धे प्रेम से पागल हो विवाह करती भी तो मैं एक सप्ताह पंडितजी से प्रेम करती, दूसरे सप्ताह में उनसे घृणा करती और तब कदाचित् दोनों का हृदय कुछ दिनों बाद एक दूसरे से दूर भी हो जाता और यह सब सुखमय वैवाहिक जीवन के लिए विष होता। किन्तु, इस बात के साथ ही साथ तुम लोगों को इस सत्य को भी सदा ध्यान में रखना चाहिए कि अगर अपनी पत्नी से तुमको प्रेम है, और प्रेमवश ही तुमने उसे पत्नी बनाया है, तो इस प्रेम की सहायता से भी यदि विवेक की हत्या नहीं कर दी गई है तो वैवाहिक जीवन सुखमय हो सकता है और जीवन में जिस अनुष्ठान में लगो, उसी में तुमको सफलता भी प्राप्त हो सकती है।

पश्चिमीय की अपेक्षा भारतीय विवाह-पद्धति इसीलिए अच्छी है। यह सत्य है कि इसमें पश्चिमीय सी मादकता प्रथम मिलन में नहीं, किन्तु इस की विशेषता यह है कि इसकी प्रीति दिन दिन गाढ़ी होती रहती है, स्थायी स्नेह की नींव इससे दिन दिन मज़-बूत होती रहती है जब की पश्चिमीय विवाह मे प्रथम उफान के बाद प्रेम काफूर की तरह दिन दिन उड़ता और कम होता रहता है। पंडितजी व्यर्थ की बातें नहीं करते, उपयुक्त समय पर उप-युक्त शब्दों का ही व्यवहार करते हैं, मेरे सुख दुःख की उनको चिन्ता रहती है, मेरी भलाई और रक्षा का उनको सदा ख्याल रहता है और उसके लिए यथाशक्ति, जो सम्भव हो, करने को तैयार रहते हैं, मैं इतने से ही पूर्णरूप से सन्तुष्ट हूँ। मैंने कभी उनकी प्रेम-कथाओं को सुनना नहीं चाहा और न कभी उन्होंने भूल कर उनकी ओर इशारा ही किया। किसी के सौन्दर्य से वह मेरे आंख, कान, नाक, होंठ की तुलना मेरे पास बैठे या लेटे हुए करते हों तो मैं नहीं जानती और न इन ख्याल से विचलित ही होती हूं, क्योंकि मुझ से छिपा नहीं कि एक डाह की इस प्रकार की प्रकृति के कारण ही स्त्री ससार की आदिशक्ति और देवी के पद से गिर कर दासी होगयी। मैंने कभी उनसे यह नहीं पूछा कि किसने उनको चतुर नायक बना दिया। मैंने शुरू में ही उनसे कह दिया था कि इन बातों की मुझसे कभी चर्चा न करि-येगा, साथ ही कोई भी ऐसी बात मुझसे न कहियेगा जो आज से दश वर्ष बाद आप उसी सत्यता और हृदय से मुझसे न कह सकें। पति प्राय: यह भूल किया करते हैं कि अपनी पुरानी प्रेम-कथाओं को वह अपनी प्रेमिकाओं को सुनाया करते हैं। इस तरह से अपने पूर्व जीवन का फिर वह रसास्वादन कर आन-न्दित होते हैं, साथ ही अपनी प्रशंसा और विजय की कथा में स्वभावतः उनको बड़ा आनन्द मिलता है, किन्तु वे यह भूल जाते

हैं कि जिससे वे बातें करते रहते हैं, उसकी दशा उन बातों को सुनकर क्या होती रहती है। किसी स्त्री को भी अपने प्रेमी के मुख से दूसरी स्त्री के प्रति उसके प्रेम की कथा बड़ी दुःखदायी होती है। किसी दूसरी स्त्री की प्रशंसा भी अगर उससे पति का प्रेम झलकता हो, किसी भी पत्नी को सह्य नहीं होती। पंडितजी विशेष रूप से इन बातों का ख्याल रखते हैं।

एक बात और जो हम लोगों में तय है उसे भी सुना देना चाहती हूं। हम लोग कभी एक दूसरे से कुछ छिपावेंगे नहीं और न कभी एक दूसर को धोखा देंगे। पंडितजी अगर कभी कचहरी से उठ कर, किसी मीटिंग से या घर ही से शाम को कभी अपनी किसी पूर्व परिचिता, विवाहिता स्त्री मित्र के पास गप-शप करने चले जांयगे तो इसके लिए यह जरूरी न होगा कि वह आकर यह कहें कि वे म्यूनिसिपेलिटी की मीटिङ्ग मे थे या कि किसी बुजुर्ग वकील के पास किसी मुकदमे के सम्बन्ध में सलाह ले रहे थे। हम लोगों ने यह तय कर लिया है "तुम्हें चाहूं तुम्हारे चाहने वालों को भी चाहूं" यह सम्भव नहीं। मैं पंडितजी से प्रेम करती हूं किन्तु इससे यह सम्भव नहीं कि पंडितजी के सब मित्र भी मुझको पसन्द हों। रसिक प्यारे, विवाह से व्यक्तियों का स्वभाव, उनकी रुचि, प्रकृति नहीं बदल सकती। दो जीवनों को बिलकुल एक करदेने की कोशिश बेकार है, अधिक से अधिक जो हम लोग कर सकते हैं इतना ही है कि हम लोग दोनों जीवनों को अधिक से अधिक एक दूसरे के साथ मेल खाने वाला बनादें। सदा स्वप्नों में लीन और आदर्श के पीछे सर उघारे नंगे पांव दौड़ने वाले "गोपी"! तुमको यह सुनकर और भी आश्चर्य होगा कि पंडितजी ने और हमने विवाह सम्बन्धी और वैवाहिक-जीवन सम्बन्धी सभी बातों पर अच्छी तरह खूब तर्क करके

विचार कर लिया है और सभी अनुषङ्गिक बातों के सम्बन्ध में अपना अपना कर्त्तव्य तय कर लिया है। गहना, कपड़ा, गृहस्थी का खर्च, बच्चों का प्रबन्ध, हमारा पाकेट खर्च, नौकर चाकर, प्राय. सभी बातों के सम्बन्ध में फैसला हो चुका है और मुझको इन बातो के तय करने में तनिक भी कठिनाई प्रतीत नहीं हुई। पंडितजी इतने स्थिर-बुद्धि और दुनियादार मनुष्य हैं कि ऐसी कल्पना-विहीन, सांसारिक पृथ्वीतल की बातो के करने मे इस भय ने मुझको नहीं सताया कि प्रेम तथा कल्पनापूर्ण स्वप्नों का ध्वंस हो जायगा या कि हृदय के बढ़ते हुए प्रेम-प्रवाह का श्रोत रुक जायगा। बिहारी! जेबखर्च की बात सुनकर हंसते होंगे, किन्तु याद रखो समय पर खर्च न होने से कभी कभी स्त्री को बहुत कष्ट होता है। इसके साथ ही हर वक्त मनुष्य की तबियत एक सी नहीं रहती। पति पत्नी के जीवन मे ऐसे भी अवसर होते हैं जब वे खिन्न होते हैं, जब पति पत्नी की अवहेलना करता है या उससे असतुष्ट होता है या पत्नी ही पति से असंतुष्ट या खिन्न होती है और पति से कुछ कहना नहीं चाहती और पैसा मॉगना तो पहाड़ सम ही दिखाई देता है। ऐसे समयों में साधारण अपनी या गृहस्थी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पति के सामने हाथ पसारना और पैसों के लिए सर नमाना उसे बड़ा दुःखदायी होता है। अच्छा तरीका इसलिए यह है कि रुपयो पैसो की मालकिन स्त्री पहिले से ही बना दी जाय, कमाई पति की बैंक मे ही हो, किन्तु जितना घर गृहस्थी और स्त्री के लिये आवश्यक हो वह उसे मास के आरम्भ होते ही मिल जाया करे। वैवाहिक जीवन की साधारण किन्तु परमावश्यक बातों को इस तरह से निश्चित कर हम लोग उसके धार्मिक और कंटकमय पथ पर अग्रसर होने को पूर्णरूप से तैयार और स्वतंत्र हैं।

एक वात और भी वतला दूँ, पण्डितजी विना मेरी मर्ज़ी के मुझको छू भी नहीं सकते, क्योंकि हम लोगो ने यह तय कर लिया है कि कामवासना की तृप्ति विना दोनों की पूर्ण कामना के प्रशंसनीय और वाँछनीय नहीं है और जीवन के इस विभाग का दफ्तर जितना वन्द रहे उतना ही अच्छा है।

कामवासना की तृप्ति का सदा शरीर से ही सम्बन्ध है और शरीर ही के सामने यह उपयोगी भी है। आत्मा और शरीर, जीव और जड़ में आदि काल से ही युद्ध चला आ रहा है। शरीर आत्मा के लिये जरूरी जरूर है, किन्तु इसके साथ ही आत्मा को हीन वनाने वाला भी शरीर ही होता है, इसलिये आत्मा की उन्नति और विकास चाहने वाले को अपने जड़ और शरीर को सदा अपने आधीन ही रखना चाहिए। यह हमको याद रखना चाहिये कि आत्मा के लिये शरीर नितान्त आवश्यक होता हुआ भी वस्तुतः केवल साधन मात्र है और स्वयमेव कुछ नहीं है।

हम लोगों ने यह भी तय कर लिया है कि प्रेम की रही सही मादकता के क्षीण होने पर हम लोग अपने वच्चों के जीवन में फिर से नवीन रूप से जीवन वहन करेंगे। स्थायी स्नेह और सुख का मूल मन्त्र यही है। हजार वाते पति पत्नी में मतभेद की हो सकती हैं, किन्तु वच्चों की भलाई, उनके सुख की चिन्ता और प्रवन्ध में संसार की समस्त वातों को भूल कर वे एक हो सकते हैं और वच्चों को सुख में अपने समस्त दुःखो को भूल सकते हैं। हम लोगो का इसलिए संकल्प है कि जो कठिनाइयाँ हम लोगों ने अपने जीवन में अनुभव की है, अपने अनुभव से उन कठिनाइयों से अपने वच्चों को सदा वचायेंगे, अपने अनुभव से हम लोग उनके मार्ग को सदा कंटकविहीन वनाने की चेष्टा करेंगे और अपने ज्ञान से उनको संसार के लिये सव प्रकार से उपयुक्त

बनाने की हम लोग चेष्टा करेंगे। उनके जीवन के बाल-काल में हम लोग अपना बाल सुख देखेंगे, उनकी युवा अवस्था में हम लोग युवा अवस्था का सुख उपभोग करेंगे, और इस क्रम से हर तरह से उनको परिपक्व कर हम लोग मानव-समाज की वृद्धि और विकास में सहायक होंगे और इस तरह से विश्वसमाज के ऋण से हम लोग मुक्त होंगे। आचार्यों ने कह भी रखा है:—

"कथितम् लक्षणमन्यैर्यातीद बाललालनाचर्यां।
पितुरिव तत्रानन्दो भवति न किम् लालनीयस्य ॥"

जैसा सुख रति में पति को प्राप्त होता है वैसा ही सुख बच्चे को खिलाने में पिता को और साथ ही बच्चे को भी मिलता है।

विवाह का अर्थ और उद्देश्य मेरी समझ में इतना ही है और मैं आशा करती हूं कि कम से कम इस बात में तुम लोग भी मुझसे सहमत होगे। मुझको और कुछ भी कहना नहीं है और पत्र को मैं संसार के एक बड़े जबरदस्त तत्ववेत्ता Seneca (सिनेका) के इन शब्दों के साथ "इन्द्रियोपासना पाशविक मनोरंजन है और सर्वथा मनुष्य के लिए हेय और अनुपयुक्त है" (It is brutal entertainment unworthy of a man, to place his felicity in the service of senses) खत्म करती हूं।

तुम्हारी—
मनोरमा

विवाह का उद्देश्य और इन्द्रिय-निग्रह

नात्यन्तमानुलोम्येन न चातिप्रतिलोमतः
सिद्धिम् गच्छन्ति कन्यासु तस्मान्मध्येन साधयेत्
आत्मनः प्रीतिजननं योषिताम् रागवर्द्धनम्
कन्या विश्रम्भणम् वेत्ति यः स तासा प्रियो भवेत्
शूरः समुचितभाषी रति तत्त्वज्ञः प्रियस्य कर्ता च
प्रेक्षणकारी साहसरसिकः प्रोद्दामयौवनश्रीकः

(रतिरहस्य)

प्रिय कृष्णकान्तजी,

आप मेरे निजू पत्रों का एक संग्रह प्रकाशित करने जारहे हैं, मुझको कोई आपत्ति नहीं, अगर इन पत्रों से कुछ भी संसार का लाभ हो सकता है तो यह मेरे लिए गर्व और सन्तोष की बात होगी, किन्तु यह सब होते हुए भी मेरा निवेदन यह है कि पत्र विशेष व्यक्तियों, उनकी विशेष स्थितियों और उनकी व्यक्तिगत बातों को ध्यान में रख, उनकी प्रकृति को जानते हुए और यह समझ कर कि वह एक रङ्ग में रङ्ग चुके हैं और बदल नहीं सकते, उनको ही व्यक्तिगत रूप से लिखे गये थे। दूसरे इन पत्रों से लाभ कहां तक उठा सकते हैं यह मैं नहीं कह सकती, यद्यपि साधारणतया पत्रों में ऐसी अनेक बातें हैं जो किसी भी पुरुष के, जो स्त्री की श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का लोलुप हो, काम की सिद्धि हो सकती है। अगर मुझको यह मालूम होता कि साधारण जनता

और संसार के सामने यह पत्र रखे जायंगे तो कदाचित् सर्वसाधारण की भलाई के अर्थ, तथा आनेवाली सन्तानों और विशेष कर भारतीय नवयुवकों के लिए अन्य उपयोगी बातें लिखती और दूसरे ही ढंग के पत्र लिखती, अब इतना अवकाश नहीं, साथ ही आप इन पत्रों को ही प्रकाशित करने को लालायित हैं, इसलिए मैं इस पत्र के द्वारा ही अपने विचारों को और जिनको मैं वास्तव में देश, समाज और युवकों के लिए हितकर समझती हूं, इस समय प्रकट कर देना चाहती हूं। सब से पहिली बात और जिसे प्रत्येक भारतीय सन्तान को, जिसे अपना तथा समाज का सुख और समृद्धि अभीष्ट हो ध्यान मे रखनी चाहिए, यह है कि विवाह है क्या और इसका होना क्यों जरूरी हुआ। अगर हमारे भारतीय नवयुवक इसके मर्म और तत्त्व को समझ लें तो वास्तव में समाज रसातल में जाने से रोका जा सकता है। एक पत्र ही में, मुझको जो कुछ कहना है, मैं कह देना चाहती हूं, इसलिए मेरा कथन सब सूत्ररूप मे ही होगा।

विवाह के सम्बन्ध में सब को यह समझ लेना चाहिए कि यह सृष्टि के विकास के लिए है, साथ ही यह आदर्श या सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध या प्रथा नहीं है। विवाह सुख की वस्तु है, इससे सुख ही उत्पन्न होता है यह विचार बिलकुल गलत है इसे भी भले प्रकार हम को सब नोट कर लेना चाहिए। मानव-विकास के हित में विवाह की प्रथा को मानव-मस्तिष्क और पशु-प्रवृत्ति ने जन्म दिया, समाज की रक्षा और वृद्धि का यह साधन मात्र है, सर्वश्रेष्ठ दशा में भी यह एक समझौता (Compromise) के समान है और किसी भी दशा मे यह दोषों से हीन नहीं है। सचमुच हो विवाह की प्रथा केवल समाज की धार्मिक और समाजिक वृद्धि के लिए, साथ ही समाज की रक्षा के लिए भी है। यह सब हम लोगों को कभी नहीं भूलना चाहिए। विवाह सम्बन्ध से बँध कर पति

पत्नी कम से कम खर्च और कष्ट में, साथ ही यथासम्भव सर्व-श्रेष्ट रूप में जीवनयात्रा सफल कर सकें और विकास की सीढ़ियों पर ऊपर उठ सकें विवाह का उद्देश्य इतना ही है। देश की वद-क़िस्मती से विवाह आज कल कम से कम खर्च वाला व्यभिचार हो गया है और इसीसे आज गृहस्थ-जीवन इतना कटु, कष्टकर और कन्टकमय होगया है। अगर स्त्री का संयोग केवल आत्माओं के विकास और सन्तानोत्पत्ति के लिए मान लिया जाय और इसके सिवाय स्त्री-संसर्ग पाप समझा जाने लगे, अगर हमारी वहिनें यह संकल्प करलें कि नियमित समय के सिवा वह और किसी समय में पति की वासना की तृप्ति का कारण नहीं वनेंगी और पुरुष को वह इस वात का आदी वनायेंगी कि वह उनके मान-सिक और आध्यात्मिक साहचर्य में अधिक सुखी अपने को समझे तो वहुत से संसार के दुःख आप से आप कम हो जायंगे। पत्नियों को जो जीवन को अधिक से अधिक सुखी वनाना चाहती हैं, यह भी ध्यान में रखना चाहिए और अपने पतियों को यह सदा सिखाते रहना चाहिए कि शारीरिक, काम-वासना की तृप्ति या जड़का प्रेम, प्रेम का पर्यायवाचक शब्द न होकर प्रेम का एक निकृष्ट अङ्गमात्र है और कामवासना, प्रेम नहीं, प्रेम की छाया-मात्र है। सच तो यह है कि तीन वच्चों को जन्म देने के वाद, कामवासना का दफ़्तर एक दम वन्द हो जाना चाहिए, और अगर कभी वह खुले भी तो केवल स्त्री की इच्छा होने पर और स्त्री की ही प्रेरणा पर। "चाणक्य" का उपदेश है —

"पुत्रीवर्ती धर्मकामां वन्ध्यां निन्दु नीरजस्का वा नाकामामुपेयात्"*

---

*पुत्रवाली, सुतवती, पवित्र जीवन वाली, वन्ध्या. जिसके मरा हुआ वच्चा पैदा हुआ हो और जिसका मासिक धर्म वन्द हो गया हो, ऐसी स्त्री के साथ जब तक वह स्वयं कामना न करे पुरुष कभी भी संसर्ग न करे।

इसके साथ ही साथ अगर यह मान लिया जाय कि स्त्री गृहस्थ-जीवन की नौका को अग्रसर करने के लिये बराबर की खेवैया है, भेड़ बकरी या सुख की एक सामग्री नहीं और वह इहलोक और परलोक को बनाने के लिए विशेष सहायिका है तो भी हमारी बहुत सी कठियाइयां दूर हो जायंगी। स्त्री का नायिका का रूप पश्चिमीय और इस्लामी भी है। भारतीय इतिहास में, भारतीय धर्मग्रन्थों में स्त्री अर्धाङ्गिणी कही गयी है। धार्मिक कृत्य उसके बिना नहीं हो सकते, यह कहा गया है, साथ ही स्त्री, पत्नी, कामकला की सामग्री कभी नहीं समझी गयी। आज स्त्रियों का सौन्दर्य देखा जाता है, नख सिख कैसा है इसकी फिक्र होती है, भारतीय प्रथा और आदर्श मे इसकी बहुत कम गुन्जायश थी। स्त्री सर्वश्रेष्ठ वह है जो पत्नी के कर्तव्यों का उचित पालन कर सके। जो अपने और अपने पति के कुल की श्रेष्ठता और मर्यादा की वृद्धि कर सके।

"तिरिया तो है शोभा घर की, जो हो लाज रखावा नर की"

खूबसूरती कोई वस्तु नहीं है या वस्तु विशेष नहीं है। विवाह के पहिले कन्या का रूप रंग पूछना तो दूर रहा, उसकी चर्चा भी करना कुछ समय ही पहिले बुरा समझा जाता था। लड़के का, लड़की को देखना तो स्वप्न की बात थी, लड़के के माता पिता भी अक्सर लड़की को नहीं देख पाते थे। लड़की के लिए इतना ही काफी था कि वह फलां कुल की है और यही इस बात का सर्टीफिकेट था कि वह पत्नी के कर्तव्यों को पालन करने में समर्थ होगी। पत्नी वेश्या नहीं, नायिका बनना वह क्या जाने, इसकी उसे आवश्यकता ही क्या, इसकी उससे आशा ही क्यों की जाय। वह पुत्रों की माता है, जननी है, गृह की देवी है, उसका गौरव यह है कि राम अगर यज्ञ करना चाहते हैं तो यज्ञ सफल नहीं हो सकता, यदि सीता मौजूद न हो, यदि कारण वश सीता की उपस्थिति

असम्भव हो तो सीता की प्रतिमा ही हो, मगर हो सोने की और हो जरूर, क्योंकि धर्म इसका आग्रह करता है, क्योंकि धर्म कहता है कि विना पत्नी के मनुष्य अधूरा है और उसकी आहुति देवताओं को स्वीकार नहीं हो सकती। पत्नी को नायिका का रूप देना, नायिका के रूप में उसका स्वप्न देखना, पत्नी की मान मर्यादा, उसके महत्व, उसकी श्रेष्ठता और उसकी उपयोगिता को कम करना है। विवाह को इस लिए धर्म और धार्मिक बन्धन की दृष्टि से ही देखना चाहिए और पत्नी को नायिका से श्रेष्ठतर पद देना चाहिए।

समाज रसातल को जा रहा है पुरुषों की ग़लती से। वह इधर उधर स्वतंत्र स्त्रियों को देख पत्नी के महत्व को भूल गये हैं। वह पत्नियों में ही नायिका को भी देखना चाहते हैं, एक अंश मे, कुछ हद तक ही, यह असम्भव है, किन्तु वास्तव मे यह सर्वथा असंभव है। नायिका मे जो विशेषताएं होती हैं उसका प्रधान कारण उसका अनेक पुरुषों से मिलना जुलना, संयोग और भिन्न प्रकृतियों का परिचय और अनुभव होता है। इन विशेषताओं का एक पत्नी मे जन्म विना पत्नी के धर्म की हत्या किये हुये सहज संभव नहीं, इसलिए जो पत्नी से पत्नी धर्म का पालन देखना चाहते हैं उनको बाह्य (Superficial) विशेषताओं की फिक्र न होनी चाहिए। मेरी तो समझ में नहीं आता कि लोग फानी अस्थायी वस्तुओं के पीछे पागल क्यों होते हैं। "अंधे रसिया आइने पर मरें" और क्या कहा जा सकता है ? सबसे पहिले सुन्दर से सुन्दर स्त्री किसी को सुन्दर दिखाई देती है और वह उसके लिए प्राणों को न्योछावर कर सकता है, साथ ही किसी दूसरे को वह उतना ही उत्तेजित नहीं करती, दूसरे सुंदर से सुन्दर स्त्री कुछ समय के सहवास के बाद उतनी सुन्दर नहीं दिखाई देती, यह न हो तो भी सौन्दर्य ढलने की चीज है, बढ़ने की नहीं, ऐसी दशा में पुरुषों में अगर बुद्धि हो तो सौन्दर्य नहीं, वे पत्नियों मे

गुणों की खोज किया करे, गुण जिनको निरन्तर वृद्धि ही हो सकती है और जो अपनी महत्ता और अपनी आकर्षण-शक्ति कभी नहीं खोते। पूर्व काल में हम लोगों के पूर्वज कह गये थे—"भार्या रूपवती शत्रु."—सुन्दर स्त्री शत्रु के समान है। कहने वाले मूर्ख नहीं थे। उन्होंने बड़े तत्व की बात कही थी। अगर उसके सौन्दर्य रूपी प्रकाश में पतङ्ग की भांति हम जलने लगें और काम की तृप्ति में लीन हुए, जो असम्भव नहीं, तो हमारा सर्वनाश, साथ ही विकास की सीढ़ी से नीचे गिरना भी निश्चित है। सुन्दर स्त्री ऐसी दशा में जीवन-नौका को अग्रसर करने और इहलोक और परलोक के बनाने में हमारी मददगार न होकर शत्रु का काम करती है। एक ओर यह है दूसरी ओर सौन्दर्य स्थायी नहीं और नित्य के सहवास से उसकी महिमा कम होती रहती है, साथ ही सौन्दर्य कमल पत्र पर पड़े हुए ओस-बूँद के समान सुहावना होते हुए भी टिकाऊ नहीं और मृग के समान भागते हुए मनुष्य-हृदय को वह सदा काबू में नहीं रख सकता। सौन्दर्य को इस काम के लिए नित्य सहायक ढूँढ़ने पड़ते हैं। खूबसूरत से खूबसूरत स्त्री, सचमुच ही चन्द्रमुखी, होते हुए भी अगर वह भोंडी है, उसे बातें करना नहीं आता, अगर उसमें चातुर्य और गुण नहीं, अगर वह सेवा करने में चतुर नहीं, एक दिन से अधिक समझदार नायक पर अपना अधिकार नहीं, रख सकती। सौन्दर्य नित नूतन आकर्षण मनुष्य के लिए पैदा नहीं कर सकता, यह सम्भव ही नहीं। सेवा और गुण के सम्बन्ध में तो "ज्यों ज्यों भीजे कामरी त्यों त्यों भारी होय" की कहावत चरितार्थ होती है। मनुष्य, जीवों में अपने को श्रेष्ठ कहता है किन्तु पशुओं में जितना व्यभिचार नहीं है उससे करोड़ गुना अधिक यह मनुष्यों में है। पशु व्यभिचार की लालसा नहीं

रखते, प्रकृति से विवश होने पर वर्ष में एक दो वार उनको इसकी कामना होती है, किन्तु मनुष्यों की दशा क्या है ? हमारे पूर्वजों ने इसीलिए केवल सन्तानोत्पत्ति के अर्थ, सो भी वर्ष में एक वार, गर्भाधान के लिए स्त्री संसर्ग जायज़ रखा था, किन्तु अब क्या है ? जिसको हेय समझना चाहिए, जो विकास में वाधक है, उसी को आज कल महत्ता प्रदान की जा रही है। आज अप्रधान प्रधान वनाया जा रहा है, यह देश का अभाग्य नहीं तो क्या है ? इसलिए पहिले हमको यह चाहिए कि विवाह सम्बन्ध में सौंदर्य और स्त्री-समागम की वातों को अप्रधान समझें और इनके नींव पर न विवाह को स्तम्भित करे और न सुख की लालसा ही रखे।

अगर पुरुष और पत्नी यह तय करलें कि उनका धर्म का वंधन है और धर्म ही के समान अपनी शक्ति भर वह उसका निर्वाह करेंगे तो वहुत से दुःखों का अन्त होजायगा। स्त्री इह-लोक और परलोक के वनाने के लिए आती है, काम की तृप्ति का वह साधन समझी या वनायी गयी, जिसकी तृप्ति संभव नहीं तो इहलोक और परलोक का वनना असंभव होजायगा। यहां पर मैं इतना और कह देना चाहती हूं कि काम की वड़ी चढ़ी इच्छा, काम की प्रवलता, स्वास्थ्य और शारीरिक-शक्ति की द्योतक नहीं है वरन् यह मानसिक और शारीरिक कमज़ोरी का सुवूत है। दिन दिन विगड़ते हुए स्वास्थ्य, अज्ञान और वर्तमान सभ्यता की कुप्रथाओं के कारण ही आज काम की इतनी प्रखरता दिखाई देरही है। परलोक की कथा दूर की है किन्तु जव इहलोक का वनना ही असम्भव होगया तो गृह में, गृहस्थी में या वैवाहिक-जीवन में सुख कहां से प्राप्त हो सकता है ? विवाह करने की इच्छा रखने

आदर और भक्ति चाहता है, अगर यह चाहता है कि स्त्री के मनोमंदिर का वह इष्टदेव हो तो उसे पूर्णरूप से राम की ही भांति ब्रह्मचर्य का भी पालन करना चाहिए। सुखमय-जीवन वहन करना भी एक कला है, संसार की समस्त कलाओं की ही भाँति इसके लिए भी एक पुरुष को उवाल, आवश्यकता से अतिरिक्त शक्ति का व्यय करना पड़ता है और इसलिए यह आवश्यक है कि आरम्भ मे अधिक से अधिक शक्ति का संचय किया जाय, ठीक उसी तरह से जैसे कि इंजन को चलाने के पहिले, ब्वायलर मे भाप का संचय किया जाता है। मेरे कहने की वात नहीं है, लज्जा की वात है, स्त्रियोचित भी नहीं है, किन्तु जितना कुछ मैंने लिखा है सव वेकार और निरर्थक हो जायगा, यदि पति अब्रह्मचारी और हीन इसके कारण पति का आदर स्त्री के हृदय से कम हो जाता है, है। उसकी उसमें से श्रद्धा जाती रहती है और इससे जीवन में असन्तोष की वृद्धि होती है और हर वातो मे झगड़े की सूरत खड़ी होजाती है। वैवाहिक-जीवन इससे सव से अधिक नष्ट होता है और पति-पत्नी का जीवन क्षारमय होजाता है। जो पति, पत्नी का प्रेम चाहता हो उसे इस वात को सदा ध्यान में रखना चाहिए।

अन्तिम किन्तु महत्व मे सव से अधिक वात यह है कि जो युवक वैवाहिक जीवन को सुखमय वनाना चाहते हैं उनको यह भी चाहिए कि अपने तथा स्त्री के शरीर की वनावट को अच्छी तरह से जान लें और समझ ले। किसी मित्र डाक्टर से या अच्छी पुस्तक से इसका ज्ञान प्राप्त हो सकता है। मनुष्य और स्त्री के शरीर के वड़े सुन्दर चित्र वने वनाये मिलते हैं जिनमे प्रत्येक अङ्ग की वनावट अच्छे तरह से देखी और समझी जा सकती है और शरीर के एक एक रग रेशे का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। मै कुछ और अधिक नहीं कहना चाहती और इतना ही कह कर इस पत्र को

समाप्त करती हूं कि अगर इस पत्र की बातों के अनुसार ही पति-पत्नी आचरण करें तो भी उनका वैवाहिक जीवन संसार में जितना सम्भव है उतना सुखमय जरूर होगा।

आपकी—

मनोरमा

परिशिष्ट-भाग

रज़िया की समस्या

मर गई, न बोली, यह क्यों, क़ासिम कितना कसूरवार है ?
दोष किसका है, क़ासिम का या रजिया का ?
क़ासिम को क्या करना चाहिये था ?
("अभ्युदय" से उद्धृत)

जो कुछ नीचे छपा है वह भी सादतअलीखां दारोग़ा जेल की मेहरबानी से मिला है। कथा का कागज़ उस कोठड़ी में, जिसमें फांसी पाने के पहले कासिम कैद था, मिला था। कासिम आज दूसरी दुनिया में, जहां जाने से पहले उसने अपनी प्यारी रज़िया को भेज दिया था, है, ईश्वर दोनों की आत्माओं को शान्ति दे।

(अरशद)

कासिम ने अपने मरने के पहले जो खुद लिखा था वह प्रकाशित किया जा रहा है, पाठक और पाठिकायें शीर्षक के सवालों का उत्तर सोचें।

कथा का प्रारम्भ

शायद मुझे दारोगा जेल का शुक्रगुज़ार होना चाहिये कि उसकी इजाज़त से मैं यह चन्द शतरें तहरीर कर रहा हूं, लेकिन मेरा दिल इस वक्त जज़बात और भावों से बिल्कुल खाली है, मेरे दिल की इस वक़्त वही हालत है जो किसी महफिल की सुबह के वक़्त होती है जब प्रातःकाल की फीकी उजियारी और निरालो

थकन भरी शान्ति रजनी के विलासों से उन्मत्त जागरण और सुखोपभोग को रंगहीन तथा भयानक बना देती है। मेरा हृदय एक अंधियारा मंदिर है, जिसमें जीवन नहीं, जो एक खँडहर है, जहाँ न आरती की झलक और न घन्टे की गुंजार है, केवल बीत काल की पूजा की स्मृति है, वह भी स्वप्न समान। वहाँ न पीड़ित हृदय की दर्द भरी आह है न आनन्द से उल्लसित संगीत का नाद, वहाँ केवल एक वीरान सी गूंज है जिसका मेरे निकट कोई अर्थ नहीं, जो न जीवन के कोलाहल की सूचक है, न अमरता के उच्च स्वर की, वह एक हंसी है, जिसमें आह्लाद नहीं, एक रोना है, जिसमे आन्तरिक वेदना नहीं।

कल मुझे कानून की इन्तहाई सज़ा दी जायगी। मैं इसके लिए तैयार हूं। हर मनुष्य इसके लिए तैयार होता है। मौत के लिए किसी तैयारी की जरूरत नहीं, मौत इसी से मौत है क्योंकि वह नागहानी (आकस्मिक) होती है। हर एक मौत नागहानी मौत है। मौत का वक्त मुअइयन निश्चित है और इसी तरह निश्चित किया गया है कि बेमौका अन अवसर आए। अगर हमको अपनी मौत का वक्त मालूम हो तो हमारी तमाम ज़िन्दगी इस मौत ही की तैयारी मे व्यतीत या सर्फ होजाये और जिन्दगी उसी कयाम की तरह हो जो रेल के स्टेशन पर गाड़ी के इन्तज़ार मे किया जाता है।

इन्सान की हस्ती सामयिक जरूरियात और सामयिक इन्तज़ामात का एक मजमुवा या समूह है, जिसमें इश्क, प्रेम की नापायदारी, सुन्दरापा या हुस्न की बेवफाई की तरह हो, जहां तामीर निर्माण ग़लती हो, जहां एतमाद, भरोसा, विश्वास एक हिमाकत हो। मुझे अपनी मौत का वक्त बता दिया गया है। इस लिए मैंने जो कुछ तामीर किया था, बनाया था उसे मुतहद्दिस कर चुका या ढाचुका हूं। मुझे इस ढाने या बिगाड़ने मे बहुत कम

तकलीफ हुई है। मैंने कभी किसी इमारत की बुनियाद मज़बूत नहीं रक्खी, मेरी आरज़ूवों की अट्टालिकायें, मेरे तवक्कात, मेरी आशाओं के महल, मेरे इरादों के क़िले सब बलन्द और शानदार थे, लेकिन मुझे ढाने के वक्त मालूम हुआ है कि सब की बुनियादें निहायत कमज़ोर थीं। शुरू में जब मैंने मुजरिम होने से इनकार कर दिया था तो अक्सर लोग मुझे सच्चा जानते थे। उनको यकीन था कि मैं अपनी "बीबी का क़ातिल" नहीं हो सकता। अरशद मेरा जन्म का साथी, मेरा मित्र भी मुझे बेगुनाह निर-पराधी समझता था यद्यपि वह मुझको कितनी ही मुद्दत से जानता है। ऐसे लोग मुझ पर रहम खाते थे और मुझसे सहानुभूति (हमदर्दी) करते थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जो मुझे झूठा समझते थे। इनका गुमान था कि रज़िया की मौत मेरे ही हाथों हुई है। यह भी मुझपर रहम खाते थे, लेकिन मुझे हकीर (तुच्छ) तिरस्कार के योग्य समझते थे। यह दोनों ही ग़लती पर थे। मेरी जुर्म की स्वीकृति को दीवानगी समझने वाले सुनलें कि वास्तव में—

मैंने रज़िया को क़त्ल किया है।

इसी दायें हाथ ने, जो इस वक्त इस कथा को लिख रहा है, रज़िया की ज़िन्दगी के गुलको अपनी लम्बी लम्बी अंगुलियों से दबाकर ज़बर्दस्ती से सदा के लिये गुल कर दिया है। मेरे जुर्म के इनकार को मेरी बुज़दिली (कायरता) और कमज़ोरी समझने वाले सुनलें कि जब मैंने अदालत में खड़े होकर बिना ताम्मुल कह दिया था कि रज़िया का क़ातिल नहीं हूं तो मेरी ज़बान और दिल में वही सचाई थी जिसने मुझसे बाद में जुर्म को स्वीकार करवाया। मैं, एक नहीं, दो हूं, शायद मैं दश बीस हूं। मुझे अब अपनी ज़िन्दगी के आखिरी लहमों में ऐहसास, मालूम, होरहा है कि मेरी एक तनहा (अकेली) हस्ती में किस कदर कसरत, बहुतायत

थी। रज़िया को चाहने वाला, उस पर हज़ार जान से क़ुरबान होने वाला यही इन्सान था, जो अब उसी के क़त्ल की सज़ा में "फांसी पानेवाला" है, यह मैं कैसे मानूं? अगर मैं एक हूं तो मैं सिर्फ़ यही कह सकता हूं कि मुझे उससे मुहब्बत थी। यह कितनी लगो बात है? लेकिन नहीं, यही ठीक है, सब कुछ ठीक है, कोई बात ग़लत नहीं हो सकती। मैं सब कुछ हूं, मुझे नहीं मालूम मैं क्या कहूं। शायद मैंने ग़लती की है। मैं एक कमज़ोर इन्सान हूं, सब इन्सान कमज़ोर होते हैं। मेरी रज़िया के साथ शादी को दो साल होगये, इसके पत्थर के हृदय वाले वालिदैन, मा बाप, ने अबतक इसे मुवाफ़ नहीं किया है। मुझ से शादी करने के कारण अब तक वे नाराज़ हैं। मेरे मुहल्ले के लोग अब तक मेरी शादी को ऐय्याशी, गुण्डापन की शादी समझते हैं, क्योंकि शादी रज़िया के कुटुम्बियों की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हुई थी। अगर हमारे मुहल्ले में सुन्दर कन्यायें अधिक होतीं तो शायद चन्द और वालिदैन भी इस वक़्त अपनी बेटियों से नाराज़ होते, लेकिन वे समझते हैं कि उनकी कन्याओं के बचे रहने की वजह उनकी औलाद की अस्मत, पवित्रता या सतीत्व का प्रेम है। क्या शायराना ख्याल है! यह अपनी लड़कियों की नेकअसली, सुन्दर, पापहीन चरित्र पर गर्व करते हैं। उस सिफ़त, उस ख़ूबी पर नाज़ करते हैं जो मर्दों ही के विचार और कल्पना ने औरत को बख़्शी है। जो मुझसे बच गये हैं उनसे कह दो कि असल में वजह, उनकी लड़कियों की पाकदामनी नहीं, मेरी आला निगाही, मेरी महत्ता थी जो उनमें से किसी को बहैसियत बीबी के गवारा नहीं कर सकती थी। यह पवित्रता के पुजारी, नीतिज्ञ, नैतिक भावों की दुहाई देने वाले समझते हैं कि मैंने रज़िया को उसकी बदचलनी की वजह से मारडाला, ओ खुदा मुझे फांसी ही पाना है तो महज़ एक क़त्ल के बदले क्यों?

मैं रज़िया का क़ातिल क्यों हूं ?

रज़िया को किसने मारा, शायद मैंने ? यह न कहो। तुम रज़िया से जाकर पूछलो, वह कभी मेरा नाम न लेगी। वह कभी यकीन नहीं कर सकती कि मैंने उसे कत्ल किया है, उसे अच्छी तरह मालूम है कि मैं तमाम दुनियां से बढ़कर उससे मुहब्बत करता था। तुम यकीन मानो कि वह इस मुहब्बत की कद्र करती थी, महज मेरी खातिर उसने तमाम जहान के इलज़ामात अपने सर लिये, दुनियां भर की मुसीबत उसने मेरे साथ मिल कर बरदाश्त की। ठीक वक्त पर मेरे लिये खाना तैयार करना और बड़े सज धज, साज सामान से मेरे बिस्तर को बिछाना वह अपने जीवन के परम कर्त्तव्यों में से समझती थी। गर्मी के दिनों मे, सारी दुपहरी वह मुझे पखा झलती रहती, रात को बड़ी देर तक मेरे इन्तज़ार में जागती रहती, हाय यह न कहो कि मैंने उसे मारा है।

यह झूठ है

तुम उससे पूछलो। ...औरत, अगर चाहे तो मर्दों कि ज़िन्दगी को तबाह कर सकती है। फितरत (प्रकृति) ने दिलों के तोड़ने के जिस कदर जितने भी ढंग हैं वे तमाम औरत को सिखा रक्खे हैं, कुदरत (प्रकृति, ने मर्दोंके दिल महज इसलिये बनाये हैं कि औरतें उनको बेपरवाही से तोड़ डाला करे, हमारी आंखें इसलिये हैं कि या हम उनको देखें या उनके लिये रोवें। औरत को खिराजे निगाह चाहिये या खेराज़े अश्क, वह मर्द की निगाह से टेक्स चाहती है, चाहे वह उनको निरन्तर देखने के रूप में हो या आँसू के। इसी दौलत से वह दिल के मुल्कों पर हुक्मरानी करती है। उसका संकल्प, ज़ुल्म और सितम होता है, जहां बगावत के बगैर कोई चारा नहीं, बगावत करना ही जहां रक्षा का उपाय है। मैंने—

रज़िया से बग़ावत

नहीं की, मैंने सिर्फ यह चाहा कि वह मुझ से मुहब्बत करे, प्रेम करे। वह वर्फ थी, मैंने चाहा उसे आग बना दूँ, वह ठंढी थी, मैं चाहता था हरारत हो, वह चुपचाप पानी की तरह बहती थी मैं उसे शोलों की तरह भड़काना चाहता था। मैं रात की खामोशी और सन्नाटे में कितनी ही बार घन्टों तक लगातार उसके हाथों को अपने हाथों में लिये, लम्बे लम्बे, दर्द भरे, प्रेम मे सरावोर शब्दों में उससे अपने प्रेम, अपने इश्क की कहानी कहता, उसे मनोमन्दिर की, हृदय की अधिष्ठात्री देवी, मनोराज्य की मलिका मोअज्जमा समझ कर पुजारियों की तरह तन, मन और धन से उसकी पूजा करता। वह बुत की, तरह, पत्थर की मूर्ति की भाँति, वैठी रहा करती, मैं उससे कहता—ऐ मेरे दिल पर हुकूमत करने वाली मलिका! मैं तेरा एक अदना, गुलाम हूँ। तेरी खिदमत (सेवा) करना मेरे लिए स्वर्ग में, जीवन व्यतीत करना है, क्या तुझे मुझ से मुहव्वत है, वह कुछ न वोलती, मैं उसकी वाहें मरोड़ता जव भी वह कुछ न वोलती, उसके चेहरे पर तकलीफ के आसार जाहिर होते, मुझे खुशी हासिल होती, पर इस पर भी वह कुछ न वोलती, तुम कहोगे शर्म की, लज्जा की वजह से—

तुम क्या जानो!

तुमने सिर्फ औरतों को देखा है, तुम्हें स्त्रियों का कुछ ज्ञान, नहीं, तुम सिर्फ मर्द हो, तुम में मर्दानगी नहीं, तुम्हारी तमन्नाओं (आकाँक्षाओं) में वजरवलन्दी की कावलीयत नहीं, तुम को छोटी वातें खुश कर सकती हैं। ओ कमजर्फ इन्सानो!

तुम मुझे कुछ न कहो।

अकसर मैं रात मे देर से घर पहुँचता, इसने कभी इसका

गिला या शिकायत नहीं की, जहाँ मुहब्बत होती है वहां तलब होती है, जरूरत होती है, इस बात की फिक्र होती है कि मेरा प्राणाधार मेरे पास रहे, कम वक्त देने की शिकायत होती है और इस पर अक्सर कितने ही प्रेमियों में हाय हाय होती रहती है, मगर इसने कभी यह भी न पूछा कि देर क्यों हो गई, कहां रहे ? मैं क्या जानूं कि वह मेरा इन्तजार करती थी, मैंने कई बार उससे पूछा, रजिया मेरा देर से आना तुम्हे नागवार तो नहीं मालूम होता, तुमको यह देर अखरती तो नहीं ? उसका जवाब यही होता था कि आपकी कोई बात मुझे नागवार नहीं मालूम होती। तुमसे, तुम्हारी बीवी यों कहे तो तुमको इससे इत्मीनान, सन्तोष और शायद प्रसन्नता भी हो, शायद तुमको यह कभी खयाल भी न आए कि जिसे तुम्हारी कोई बात नापसन्द नहीं उसे शायद तुम्हारी कोई बात पसन्द भी न हो ? शायद तुम यह कभी न सोचो कि वह कौनसा मशगला है जो तुम्हारी गैरहाजरी को इसके लिए बेमानो बना देता है, वह कौन सा विचार है, कैसा मनोरंजन है, जिसमें लीन रहने के कारण तुम्हारी अनुपस्थिति उसे बेचैन नहीं करती।

तुम क्यों सोचो ?

तुम स्त्रियों को जानो क्या, तुमको उनका तजुरुबा नहीं, तुममें गैरत नहीं। एक दिन मैंने उससे कहा रजिया जब तुम मेरी हो, तब फिर यह क्या कि तुम मेरी होती हुई भी इस कदर वक्त पढ़ने और सीने, पिरोने में सर्फ करती हो, तुम मुझ से बातें करो। वह फिर भी पढ़ती रही। मैंने उसकी सब किताबें फाड़ डालीं, मैंने उसके सब कपड़े जला दिए। वह रोती रही और खाना पकाती रही। उन किताबों और कपड़ों के लिए—जिनको वह मुझ से ज्यादे पसन्द करती थी, अच्छा

समझती थी—रोती रही। मेरे दिल में उस दिन एक विचार आया लेकिन उस विचार को मैंने दबा दिया और मैं मुट्ठियों को बन्द करके रह गया। दो दिन उससे मैं रूठा रहा, उस ने मुझे न मनाया। तुम कहोगे डरती थी, फिर तगाफुल, उदासीनता और लापरवाही किसे कहते हैं?

कल मेरी जिन्दगी का खातमा कर दिया जायगा, मैं खुश हूँ, रजिया को मार डालने के बाद मेरा जीवित रहना फिजूल है। जिस पतंग को दीपक के जलते हुए मर जाना चाहिए वह दीपक के बुझने के बाद भी जिन्दा रहे तो वह इश्क की खामी, प्रेम की हँसी है। रजिया तुम मुझको माफ कर देना, संसार की माफी की मुझको परवाह नहीं। दुनिया में अगर मैंने किसी औरत के साथ वफा नहीं की तो इसका इलजाम मुझ पर नहीं लग सकता, वह इसी काबिल थीं कि एक रात के लिए बद्रे मुनीर, पूर्णचन्द्र होतीं और बस। उनको चन्द लहमों के मनोरञ्जन से जियादह कुछ भी समझना मजाक सलीम का खून करना है, सद्विचार का गला घोटना है। उस पर भी अगर दुनिया के रहने वाले मुझे कुसूरवार समझते हैं तो मुझे इसकी परवाह नहीं, वह मुझे कल मार डालेंगे इससे अधिक वह किसी को क्या सजा दे सकते हैं, इससे बड़ा बदला वे और क्या ले सकते हैं? अफसोस! अगर मुझे मालूम होता कि मुझ से यूं बदला लिया जायगा तो नाकरदा गुनाहों, जिन पापों को मैंने नहीं किया उनके करने की लालसा आज हृदय में न रहती, आज उनके मजे की आकाँक्षा की आग हृदय में न धधकती होती, किसी से कोई वादा न करता जिस को तोड़ते हुए मेरे दिल को जरा भी रंज होता। मैं रजिया से शादी करता? यह तुम क्या कह रहे हो? जिसकी जबान ने मुझे कभी प्यार से नहीं बुलाया, जिसने चुप के सिवाय कभी दूसरा जवाब नहीं दिया, जिसने अपने हृदय का हाल मुझ से सदा छिपाया,

जिसे, मेरे स्थायी प्रेम के भाव, हृदय को भस्म करने वाले शोले, कभी न भड़का सके, जिसे मेरे इश्क का प्रलयकारी भूचाल कभी न हिला सका उससे शादी करता ? यह तुम क्या कहते हो ?

चौदवीं की चॉदनी मे वह सफेद लिवास पहिने हुए थक कर लेटी हुई थी और मैं उसके पास वैठा हुआ अपने दिल की वेकरारी, वेचैनी को कॉपते हुए होठों से, लरजते हुए फिकरों मे वयान कर रहा था। मैं कह रहा था—रजिया तुमने यह मुझ पर कैसा जादू फूंक दिया है कि मेरे जिस्म मे कोई रूह है तो तुम हो, मेरी आँखो में कोई नूर है, मेरे दिल मे कोई शुरूर है तो वह तुम हो। "मेरी जिन्दगी" "मेरी राहत" मेरी सर्वस्व अव यह नामुमकिन हो गया है कि मैं तुम्हारे वग़ैर इस दुनियॉ में कहीं भी खुशी पाऊँ। रजिया सिर्फ तुम्हारे होते हुए मेरे हृदय में हजारों उमंगें उठती हैं, आरजूवों का, आकॉक्षों का एक तूफान हृदय में पैदा हो जाता है, तमन्नाओं का, ख्वाहिशों का एक कोहराम मच जाता है, तुम्हे एक वार देख लेना, साज़े हस्ती के तमाम तारों को यूं छेड़ देना है जैसे हवा का कोई लतीफ खुशगवार झोंका उन पर से गुजर गया। मेरे दिल मे संगीत गूंजता है कि तू उनको सुन। क्या तू सुनती है ? वह कुछ न वोली। मैंने कहा—रजिया सुनती है ? कहने लगी—"सुनती हूं"। मैंने कहा—क्या तुम्हारे हृदय मे संगीत नहीं, क्या तुम मुझे वह नहीं सुनाना चाहतीं ? वह कुछ न वोली, मैंने उसे कन्धों से पकड़ लिया और वहुत आजजी और अनुनय विनय से कहा—"रजिया ! कुछ तो कह"। उसने कुछ न कहा या शायद यह कहा कि "मैं क्या कहूं।" मैं उसके मुखड़े की तरफ देखता रहा, उसकी वन्द आँखों को पागलों की भाँति निहारता रहा, उसको होठों के सिकून, निश्चलता को देखता रहा, उसके चेहरे मे टपकती हुई वेपरवाही को देखता रहा। उसका तग़ाफुल, उसकी वेपरवाही, विरक्तता,

उदासीनता मुझ से बरदास्त न हो सकी। मेरे हाथ उसके गले के क़रीब पहुँच गए, मेरी अंगुलियों को एक ज़बरदस्त ख्वाहिश ने फौलाद बना दिया, मेरा निचला होठ मेरे दातों ही से कट गया, मेरे दायें हाथ का पंजा सिकुड़ता गया उसने आँखें खोल दीं। मुझे उसकी नजरों में वहशत नज़र आई, लेकिन वह मुंह से कुछ न बोली। मैं और वहशी हो गया। मेरे पंजे की गिरफ्त मज़बूत होती गई, उसने कुछ कहा लेकिन उसके कहने में अलफाज न थे। मैं उसका गला भींचता गया, यहाँ तक की मेरा हाथ रुक गया, उसका और दुनियाँ का नाता टूट गया। मुझे चाँद तारीक, अंधियाला दिखाई देने लगा। मेरी निगाह में एक स्याह सी सुरखी फिर गई, मेरा गला खुश्क हो गया, सूख गया, मैंने एक चीख मारी और उससे लिपट गया, चिल्ला चिल्ला कर पूछता रहा कि रज़िया, मेरी जान, मेरी सर्वस्व, तुम, तुम क्यों चुप हो, तुम को किसने मार डाला है ? रज़िया ! मेरी प्यारी रज़िया ! तुम्हारा कातिल कौन है, वह कुछ न बोली। वह बेचारी मर गई, मेरे हाथों से मर गई। मैंने उसे मारा, मैं कल मर जाऊँगा। इसने मेरा दिल दुखाया। मैं इसके लिये मरता था, वह मेरी बहुत खिद्मत करती थी।

ईश्वरीय क़ानून की गिरफ्त मज़बूत है, और उनसे रिहाई कठिन है। मर्द औरत का मुतालहा, अध्ययन, करते हैं, गौर से परखते हैं इस ख्याल से कि उसकी इच्छाओं की पूर्ति सर्वोत्तम रूप से करें। वह उसकी मर्ज़ी ढूँढ़ते रहते हैं कि उसे पूरा करें। औरत दीवानगी का जादू करना जानती है, वह मर्दों को सहज में पागल कर सकती है, वह राहत की, सुख,-शान्ति की नींद, सुलाना नहीं जानती, वह अन्धा कर देती है और अपने निकट पहुँचने का रास्ता नहीं बताती। रज़िया ने तमाम दुनियां को नाराज़ किया इसलिए कि खुद खुश हो, मुझे खुश करे। मैंने उसे मार-

डाला, क्योंकि वह मुझे खुश नहीं कर सकी। जगत एक मूर्तिमान् गोलमाल या बेकायदगी है, औरत की मोहब्बत एक अफसाना है, कहानी है, रूह जिस्म का दूसरा नाम है, जज़बात की कोई हकीकत नहीं, भाव निस्सार है। एक हस्ती कई हस्तियों मे बनती है, आज तुम कुछ हो कल खुदा जाने क्या होगे ?

(एक उर्दू पत्रिका से)

समस्या का हल

इस कथा की पहिली ही शिक्षा यह है कि एक दूसरे को न समझ सकने के कारण ही रज़िया और कासिम का अन्त होगया और संसार मे दो प्राणी, जो त्रुटियों के होते हुए भी ससार को सुखमय वना सकते थे, न रह गये। ऐसी घटनाओं का वन्द करना ही इन समस्याओं का उद्देश्य है। इसलिये पाठकों और पाठिकाओं को ऐसी समस्याओं का हल सोचना चाहिये। रज़िया किस तरह क़ासिम के प्रेम मे फंसी, यह प्रश्न इस कथा के सम्वन्ध में उठता है। स्वभावतः इस कथा के सम्बन्ध में यह भी प्रश्न उठता है कि रजिया, जो कासिम की राय में शान्ति की प्रतिमा थी, चंचलता जिसमे छू नहीं गई थी, जो वाचाल न थी वह एक गैर मनुष्य से प्रेम ही कैसे करने लगी? किस तरह से प्रेमी एक दूसरे से मिलते, देखते, वातें या पत्रव्यवहार करते थे? इन सव वातों के लिये कुछ चंचलता आवश्यक है, किन्तु रज़िया समुद्र की भाँति गंभीर थी। रज़िया या क़ासिम का सम्बन्ध कैसे हुआ क्योकर हुआ, प्रेम कैसे हुआ, यह विचारणीय वातें हैं, एक मुस्लिम गृहस्थ की कन्या से प्रेम, जो साधारणतः छोटी अवस्था से ही पर्दे में होगई होगी, साधारण वात नही। किन्तु प्रश्न ज़रूरी होते हुए भी निश्चितरूप से इस सम्वन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। क़ासिम का रज़िया का सम्वन्धी होना, जिससे रज़िया का परदा न रहा हो और जिससे दोनों सहज में ही मिल सकते रहे हों, असंभव नहीं। फिर भी यह समस्या हल नहीं होती कि जो रज़िया विवाह के दो वर्ष वाद जवान से या हाव भाव से भी कुछ प्रगट नहीं होने देती थी, उसने अपने प्रेम मे कासिम

को पहले कैसे अन्धा किया या यह कि क़ासिम के साथ वह कैसे निकल आई ? यह साफ है कि विवाह माता पिता की मर्ज़ी के खिलाफ हुआ था, मोहल्ले वाले खिलाफ थे, संसार खिलाफ था, इन सब बातों से यह प्रकट होता है कि रज़िया प्रेम में फंस कर ही निकल आई थी। जो बाल्यावस्था में इस दर्जे तक प्रेम कर सकती थी वह दो वर्ष साथ रहने के बाद बिलकुल ठंढी थी, कभी शोले की तरह भड़कती ही नहीं थी। रज़िया की उम्र कम न थी, कम उम्र की लड़कियां यूँ माता पिता के गृह को छोड़ा नहीं करतीं ? दो वर्ष बाद उम्र और अधिक हुई होगी ऐसी अवस्था में एक दम इतनी चुप्पी, खामोशी का, जो एक प्रकार से स्त्रीत्व-हीनता या अरसिकता से बाजी ले रही थी, कुछ कारण होना चाहिए। सवाल यह भी हो सकता है कि रज़िया क्या सदा से ऐसी ही थी ? यदि ऐसी थी तो क्या घर छोड़ना संभव था ? यदि नहीं तो बाद में क्या हो गया ? हमारी समझ में सब कुछ इन्हीं प्रश्नों के हाल होने पर निर्भर है।

यह भी प्रश्न हो सकता है कि रज़िया विवाह हो जाने के कुछ दिन बाद कासिम से प्रेम भी करती थी या नहीं ? यह भी कहा जा सकता है कि पति की दासी होना एक बात है, उसका जीवनप्राण होना दूसरी। पति की सेवा में अपने को लीन कर देना एक बात है, पति की अर्द्धाङ्गी होना दूसरी बात है। हमारी दूसरी कठिनाई यह भी है कि हम रज़िया को अज्ञात-यौवना नहीं मान सकते, साथ ही हम उसे विस्रब्ध नवोढ़ा, मानिनी, लज्जाभारनत, मुग्धा या मध्या भी नहीं मान सकते। यह भी हम मानने को तैयार नहीं कि रज़िया सर्वोत्कृष्ट स्वकीया पतिव्रता ललना न थी। कुछ लोग कह सकते हैं कि रज़िया प्रेम करती थी किन्तु उसे वह प्रकट नहीं करती थी, वह वाचाल नहीं कमसुखन, अल्पभाषिणी थी। हम इसे भी सर्वथा मानने को

तैयार नहीं, कुछ हद तक ही यह ठीक हो सकता है। रज़िया कमसुखन थी किन्तु निस्सदेह वह गूंगी न थी। हम मानते हैं कि स्वभावतः बहुत से पुरुष और स्त्रियां कम बोलना पसन्द करती हैं, हृदय उनका प्रेम में डूबा रहता है किन्तु जुबान से हृदय के भावों को वे अदा नहीं कर सकती, अक्सर अत्यन्त प्रेम के कारण भी ज़बान नहीं खुलती, कवि टेनिसन के शब्दों में—

"Dumb swans, not chattering pies do
lovers prove"

अर्थात् प्रेमी गूंगे हंस होते हैं चिड़ चिड़ करने वाली चिड़िया नहीं किन्तु यह सब होते हुए भी हमारी बुद्धि मे यह नहीं आता कि अधिक प्रेम होने से या अल्पभाषिणी होने से ही रजिया सदा ही चुप रहना पसन्द करती थी। क़ासिम ने जो कुछ लिखा है, हृदय की एक विचित्र अवस्था मे लिखा है, उसके वाक्य, यह असंभव नहीं कि तुले हुए न हों, उनमें अत्युक्ति हो, उनमे कमी हो या वे सत्य से कुछ दूर भी हों, किन्तु क़ासिम के इस वाक्य को हम भूल नहीं सकते "जिसकी ज़बान ने कभी मुझे प्यार से नहीं बुलाया, जिसने चुप के सिवा कभी दूसरा जवाब दिया ही नहीं, जिसने अपने हृदय का हाल सदा हमसे छिपाया.... " दो वर्ष के जीवन मे एक बार भी रज़िया सरिता नहीं बनी, समुद्र ही बनी रही, समुद्र भी ऐसा जो कभी पूर्णचन्द्र को देख कर पागल न हुआ, एक बार भी प्रेमाग्नि रज़िया के हृदय के तुषार को नहीं पिघला सकी, वह सदा अपने दिल को अपने हाथों में लिए रही एक मिनट के लिए भी उसने कभी अपना होश नहीं खोया, यह बातें विचारणीय हैं। लज्जा या अल्पभाषिणी होने ही की वजह से यह सब हुआ, यह हम मानने को तैयार नहीं। साधारण रीति से यह कहा जा सकता है कि "माता पिता से छूटने के दुःख और लोकापवाद ने बहुत

अंशों में रज़िया को निर्जीव बना दिया था" । कहने वाले यह भी कहेंगे कि सुखिया रज़िया दुखिया होगई थी। वह माता पिता से बिछुड़ने के दुःख से, लोकापवाद के तीरों से दुःखी हो मरना ही चाहती थी, अपना पिंड क़ासिम से छुड़ाना चाहती थी और इसी-लिए वह मर गई। "साहित्य के प्रेमी" इन्हीं शब्दों में इन्हीं बातों को न कहकर अपने रंग में कह बैठेंगे कि दोषी है वह संसार जिसके हृदय में सच्चे स्नेहियों के लिए स्थान नहीं। दोषी है वह समाज जिसके हृदय में पवित्र प्रेम पर पुष्पमयी दृष्टि डालने के लिए शक्ति नहीं। यह भी कहा जायगा कि 'रज़िया मरगई न बोली' क्योंकि वह मरना ही चाहती थी उसने दुनियां को, जिसमें सच्चा प्रेम करना अपराध है, किसी को हृदय देना पाप है, स्त्रियों के अधिकार पशुओं से भी कम हैं, छोड़ देना निश्चय कर लिया था और वह अपनी मृत्यु उसी व्यक्ति के हाथ से चाहती थी जो उसके पीछे दीवाना था, उसका सर्वस्व था। वह अपने प्राणप्यारे के हाथों मरी। किसके भाग्य में है जो ऐसी मृत्यु पाये ? 'प्रेम के प्रेमी' यह भी ज़बरदस्त स्याहती यह करेंगे कि वे रज़िया के माता पिता को बुरी तरह कोसेंगे और कह बैठेंगे—'दोषी हैं वे माता पिता जो अपनी इच्छा से कन्याओं को पशुओं के गले बांध देते हैं' और एक ऐसे आदमी को कन्यादान देना पाप समझते हैं, जो इस पापमयी पृथिवी पर अपने हृदय में प्रेम का स्वर्ग लिए फिरता है...... मेरी सम्मति में यदि कहीं न्याय हो तो उसे चाहिये कि रज़िया को नहीं, क़ासिम को भी हत्या के अपराध में "रज़िया के मनुष्यताहीन पिता तथा आत्महीन माता को फांसी पर चढ़ा दे" । 'प्रेम के अन्ध पुजारी' यह न सोचेंगे कि माता पिता की चलती तो रज़िया भी जीवित रहती और क़ासिम भी ज़िन्दा रहता । 'प्रेम के पुजारियों' को यह सोचना चाहिये कि कथा को पढ़ने के बाद भी क़ासिम रज़िया के लिए उपयुक्त पात्र सिद्ध होता है या नहीं ?

संभव है 'प्रेम के पुजारी' समझते होंगे कि शादी अगर हँसी खुशी से होती तो यह झगड़े न पड़ते। हमारा कहना यही है कि ऐसी दशा में रज़िया दूसरी हो सकती थी, किन्तु क़ासिम यही रहता। संभव है रज़िया इस दशा में सजीव होती, वह बोलती और हंसती भी किन्तु क़ासिम का दिमाग़, उसकी प्रकृति सदा इसी प्रकार की रहती। दोनों ज़िन्दा रहते, संसार भी दोनों का चलता, किन्तु जैसा 'प्रेम के पुजारी' समझते हैं, 'आदर्श दाम्पत्य जीवन, दोनों का न होता। हम माता पिताओं का पक्ष नहीं लेते, ज़्यादेतर इनमें भूल करते। अधिकतर विवाह बेजोड़ होते हैं, किन्तु मूर्खतावश। स्वार्थवश भूल करने वाले माता पिता ईश्वर की दया से कम हैं। रज़िया और क़ासिम के सम्बन्ध में त यह भी कहा जा सकता है कि संभव है रज़िया के माता पिता ने क़ासिम की प्रकृति को समझ लिया हो। समझ लिया हो कि यह "किताबी आशिक" है और रज़िया वस्तु ही दूसरी है। कुछ हो हमारा यह विश्वास है, सभव है हम ग़लती पर हों, कि क़ासिम रज़िया के लिये उपयुक्त पात्र न था। हमारी धारणा तो यह भी है कि यदि रज़िया के घर वालों ने ख़ुशी से क़ासिम के साथ रज़िया को ब्याहा होता किसी तरह का झगड़ा भी न उठा होता स्वार्थी विलास-प्रिय नाज़ नखरों के भूखे, चचलता और हाव भाव के दिवाने, उद्धत क़ासिम के साथ रज़िया के प्रेम के शोले भी भड़कते, वह बर्फ न होकर आग भी होते तो भी कुछ ही दिनों बाद जोश बलबलों और पहिले उफान के वाद ही, ये एक दूसरे से ऊब जाते, कुछ ही दिनों मे प्रकृति का अन्तर उनके हृदयों मे अन्तर पैदा करना शुरू कर देता, वे साथ रहते, शायद ख़ुश भी रहते, संसार भी उनका बना रहता, किन्तु यह सब होते हुए भी दिन रात इश्क और प्रेम की लहरों में थपेड़े खाने से वह घबरा जाते और

वही रज़िया को न प्रसन्न कर सका। क्यों ? क्योंकि रज़िया अपनी स्त्री होगई थी, अपनी सम्पत्ति होगई थी, क्योंकि रज़िया का धर्म था कि वह कासिम की सेवा करे, उसको प्रसन्न करे. क्योंकि अधिकार और यह ख्याल कि रज़िया मेरी है, सेवा करना, प्रसन्न करना उसका धर्म है कासिम के हृदय में इस विचार को पैदा होने की जगह ही नहीं देता था कि तू उसको प्रसन्न कर, उसको समझने की चेष्टा कर. यह तो देख कि जिसने तेरे लिए संसार के कष्ट सहे वह निर्जीव क्यों होगई है. किस वेदना से उसकी हृदयतन्त्री की झंकार बन्द होगई है, कौन से दुःख में वह ऐसी डूब गई है कि उभरने का नाम ही नहीं लेती। क़ासिम ने यह नहीं किया क्योंकि रज़िया उसकी सम्पत्ति थी, उसकी पत्नी थी, उसका फर्ज़ था कि वह स्वयं प्यार करे, हरदम हृदय के प्याले में प्रेम छलकाती रहे। कासिम का कहना तो यह था "रज़िया जब तुम मेरी हो, तब फिर यह क्या है कि तुम मेरे होते हुए भी इस क़दर वक्त पढ़ने और सीने पिरोने में सर्फ करती हो'। मेरी हो, मुझे प्रसन्न करो। मेरे होते हुए तुम पढ़ती हो, सीती हो, मेरे सामने, मेरी उपस्थिति में तो तुमको हाथ बांध कर खड़े रहना चाहिये, मेरे हाथ पैर दाबना चाहिये और मुझे प्रसन्न करने का ही प्रयत्न करना चाहिये। यह था कासिम। कासिम को चिन्ता थी कि कौन सा मशग़ला है, कौनसा मनोरंजन है जो उसकी ग़ैरहाज़री को रज़िया के लिए बेमानी बना देता है। स्वयं मनोरंजन बन जाने की उसने चेष्टा नहीं की, उसने यह सोचा भी नहीं कि उसे कोई दुःख हो सकता है, कोई वेदना, कोई पीड़ा हो सकती है ? बीबी का फर्ज़ है कि वह पति को प्रसन्न करे और स्वयं खुश रहे, अगर खुश नहीं रहती तो कोई मनोरंजन ज़रूर है नहीं तो अपने फर्ज़ से बाज कैसे रह सकती है ? यह क़ासिम का ख्याल था। क़ासिम

के हृदय में साधारण मानवी सहानुभूति भी नहीं थी, वह स्वार्थ और कामातुरता का, जिसे वह प्रेम के नाम से पुकारता था, शिकार था। वह रूप का शिकार था, वह शरीर की सुन्दरता का दीवाना था, हृदय का उसे ज्ञान न था, हृदय का वह मूल्य नहीं जानता था और हृदय की उसकी निगाह में कोई हस्ती ही न थी, उसकी कद्र्‌ का उसको पता न था। और इस पर भी वह अपने को मर्द समझता था और उसे नारी-ज्ञान का अभिमान था। अगर रजिया अपनी सम्पत्ति न होती तो यही कासिम उसके हृदय की वेदना को, उसकी प्रकृति को समझने की कोशिश करता, यही नही अगर कासिम मजनू न होता तो भी शायद वह कुछ कर सकता था, किन्तु वहां तो हाल ही दूसरा था। मनोराज्य की मलिका मोअज्जमा का अदना गुलाम तो था किन्तु मनोराज्य में ही। गुलाम ने यह जानना फर्ज न समझा कि मलिका के चेहरे पर शिकन कैसी है और क्यों है? चुप क्यों है? गुलाम प्रेमी को इस की फिक्र हो सकती थी, मालिक को भला यह क्यों होने लगी? कासिम यह समझता था कि रजिया का अस्तित्व उसके लिए है, रजिया उसके लिए है, किन्तु उसने एक मिनट के लिए यह न सोचा कि कासिम का भी अस्तित्व रजिया के लिए है। उसने यह न किया कि अपने को रजिया के लिए समझने लगता, अपना अस्तित्व रजिया के अस्तित्व मे लीन कर देता। क्यों करता? वह मालिक था, रजिया दासी थी। हम अपनी ओर से इतना और इस कथा के सम्बन्ध मे कह देना चाहते हैं कि नायक और नायिका के चरित्र चित्रण से समस्या सहज मे हल हो सकती है, साथ ही इस प्रसङ्ग में उपदेश भी पाठक पाठिकाओं को दिया जा सकता था। सब से पहली बात जो इस कथा के सम्बन्ध में ध्यान में आना चाहिए वह यह है कि इसी कथा को मरते समय यदि रजिया ने लिखा होता या कथा की लेखिका

कोई स्त्री होती तो इस कथा का रूप क्या होता और इसी कथा से शिक्षा क्या टपकती ? हमारी समझ में बातें प्रायः कासिम की ही होतीं किन्तु जगह जगह पर उसमें रजिया की व्याख्या होती और उसका हृदय भी खुला हुआ होता, उसके वेदनायुक्त हृदय का चीत्कार भी कहीं कहीं पर हमें विह्वल करता, साथ ही कवि बायरन के शब्दों में रजिया ने यह जरूर लिखा होता—

(1)

I love, I love, for this love has lost
State, station, mankind, my own esteem
And yet cannot regret, what it hate cost
So dear is still the memory of that dream.
Yet if I name my guilt, it is not to boast,
None can deem harshlier of me, than I deem
I trace this scrawl because I cannot rest
I have nothing to reproach or to request

(2)

Man's love is of man's life a thing apart,
It is woman's whole existence. Man may range,
The court, camp, church, the vessel and the mart
Sword, gown, gain, glory offer in exchange,
Pride, fame, ambition to fill up his heart,
And few there are whom these cannot estrange
Men have all these resources woman but one
To love again and be again undone,

or

To mourn alone the love which has undone.

(3)

You will proceed in pleasure, and in pride,
Beloved, and loving many, all is over

For me on earth, except some years to hide
My shame and sorrow deep in my hearts core,
These could I hear but can not cast aside
The passion which still rages as before—
And so farewell–forgive me–love me–No,

(4)

That word is idle now–but let it go
I have no more to say, but linger still,
And dare not set my seal upon this sheet,
And yet I may as well the last fulfil
My misery can scarce be more complete
I had not lived till now, could sorrow kill,
Death shuns the wretch who fain the blow would meet
And I must even survive the last adieu
And bear with life, to love and pray for you*

कवि ने अपनी अद्वितीय सरल, सरस, प्रभावमयी भाषा में क्या कह दिया है यह कह देना तो सहज नहीं किन्तु साधारण रीति से इन पंक्तियों का अर्थ इतना ही है कि "मैं प्रेम करती हू, मैं प्रेम करती थी क्योंकि इस प्रेम ने प्रतिष्ठा, सम्पत्ति, स्थिति, मानव समाज सबसे हम को वंचित कर दिया, किन्तु फिर भी हमको तनिक भी खेद नहीं क्योंकि उस प्रेम के स्वर्गीय स्वप्न की सुखमय स्मृति इस समय में भी हमको बहुत ही प्यारी है। मैं इन पक्तियों को घसीटे दे रही हूं क्योंकि मुझ को चैन नहीं मिल रहा है, मुझको कोई शिकायत नहीं और न मुझे कोई अपनी आकांक्षा

*कवि "बायरन" की नायिका का यह पत्र है जो उसने अपने प्रेमी को, जो उसे त्याग कर जारहा था, लिखा था।

कु० का० मा०

ही प्रकट करनी है"। पहले छन्द का अर्थ यह है, दूसरे में ललना ने बड़े ही मार्के की वात कही है और इस समस्या के हल होने पर ही मानव-समाज का भविष्य सुखदायी हो सकता है। कवि बायरन ही की नायिका नहीं, इस कथा की नायिका रजिया भी कहती है "मनुष्य के हृदय का प्रेम उसके जीवन से एक अलग ही वस्तु है, किन्तु स्त्री के हृदय का प्रेम, स्त्री का जीवन है, सर्वस्व है और उसका अस्तित्व है। वह उसके जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। स्त्री का प्रेम और स्त्री का जीवन दो वस्तु नहीं है। मनुष्य के लिए संसार में अगणित क्षेत्र पड़े हुए हैं, वह प्रेम कर सकता है, साथ ही संसार के सभी विभागों में वह सिद्धि और प्रसिद्धि लाभ कर सकता है, वह प्रेम न करके भी या प्रेम मे विफल होने पर भी रणक्षेत्र मे, राजनीति में, दरबार मे, व्यापार में, कीर्ति और यश कमाने मे अपने को भूल सकता है, इसी में अपना जीवन लीन कर अपने जीवन को सुखमय बना सकता है और उसके उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। मनुष्य के लिए संसार के सब क्षेत्र खुले पड़े हैं, किन्तु स्त्री के लिए सिर्फ एक क्षेत्र है और वह है प्रेम कर दूसरों के हाथों तवाह हो जाना, फिर प्रेम करना और फिर तवाह होना। क़ासिम सब कुछ कहे किन्तु रजिया की इस वात का उसके पास जवाब नही है और न कोई अन्य पुरुप इस वात का जवाब दे सकता है। क़सिम ने कहा था "ओ कमज़र्फ इन्सानो, तुम कुछ न कहो, रजिया कासिम की अपेक्षा कितने सत्यता से इन्हीं शब्दों को दोहरा सकती है।

मर्दों ने अपनी मर्दानगी दिखलाने के लिए स्त्रियों को संसार के सभी क्षेत्रों से अलग कर दिया है और इसका उन्हें नाज है। क़ासिम अगर पकड़ा न जाता, फासी न पाता, जज उसके इन्कार को ठीक मान लेता, जैसी कि उसने कोशिश की थी तो संसार मे वह बना रहता, संसार के विस्तृत मैदान में वह दौड़ लगाता,

इतना ही नहीं वह किसी प्रेम से छलकते हुए नारी-हृदय को अपनी मुठ्ठियों मे लेकर अपने स्वार्थी हृदय के तीरों से उसे फिर वेधता फिर उसे सदा के लिए विदीर्ण कर देता। इसके विपरीत अगर रज़िया के किसी तरह प्राण न निकले होते, साथ ही प्राण लेने के प्रयत्न के अपराध मे क़ासिम को फांसी हो गयी होती तो रजिया के लिए संसार मे क्या था ?

स्त्री और पुरुप मे यह भी एक भेद साफ़ है कि स्त्री लिख सकती है कि हम को कोई शिकायत नहीं, हमारी कोई आकांक्षा नहीं, कोई प्रार्थना नहीं किन्तु क़ासिम यह नहीं लिख सका और न कोई क़ासिम यह लिख ही सकता है। क़ासिम ने खुद ही कहा है "जिसे मेरे इश्क का प्रलयकारी भूचाल न हिला सका उससे शादी करता यह तुम क्या कहते हो" ?

रज़िया क्या थी ?

एक साधारण नहीं असाधारण वालिका जो हृदय और प्रेम का महत्व समझती थी, और उसके लिए मिट जाना जानती थी, साथ ही जो वहुत समझदार न थी और हठी थी। हम समझते है कि विवाह के समय रजिया की उम्र १६ से कम न रही होगी। रजिया को दुनिया का ज्ञान कम था। हमको यह मान लेने मे तनिक भी संकोच नहीं कि सुखिया रज़िया दुखिया हो गयी थी, किन्तु माता पिता से बिछुड़ने और लोकापवाद के दु ख से वह इतनी दु:खी थी, इतनी निर्जीव हो गयी थी, उसका हृदय-कुसुम इतना कुम्हला गया था कि वह एक मिनिट के लिए भी कभी हरा नहीं हुआ, यह हमारी समझ मे नहीं आता। दो वर्ष में कभी एक मिनिट के लिए भी अपने को, अपने दु.ख को वह न भूल सकी यह एक अजीव वात है। प्रश्न हो सकता है कि क्या इस दु.ख के अलावा भी कोई, इससे भी वड़ा दु'ख उसके हृदय-कुसुम को तुषार की छेनी से चीर रहा था। इसका कथा मे कोई पता नहीं।

कहनेवाले कह सकते हैं कि "रज़िया पतिदेव की मिथ्या आशंका रूपी अग्निराशि से हृदय में जलती हुई प्रेम-ज्वाला थी"। संभव है इसी ने रज़िया के हृदय को दग्ध कर दिया हो, किन्तु कथा में कहीं से यह पता नहीं चलता कि क़ासिम ने रज़िया पर यह कभी प्रकट कर दिया हो कि उसको उसके चरित्र या प्रेम में शंका हो गयी है। कोई मनोविज्ञानवेत्ता कह सकते हैं कि न बोलना रज़िया का त्रिया-हठ था, किन्तु समझ नहीं पड़ता कि ऐसा क्यों था? हमारी राय में यह असम्भव नहीं कि क़ासिम को उपयुक्त पात्र न पाकर, उसे स्वार्थी, कामुक और केवल सौन्दर्योपासक पाकर रज़िया का माता पिता से बिछुड़ने और लोकापवाद के कारणों का दुःख और भी गहरा होगया और क़ासिम के लिए हृदय में वही प्रेम न रहा हो या प्रेम श्रद्धाहीनता के रूप में परिणत होगया हो, किन्तु वास्तव में क्या था सो रज़िया ही कह सकती है। रज़िया के सम्बन्ध में सिर्फ़ एक बात और हम कह देना चाहते हैं और वह यह है कि रज़िया ही नहीं, संसार की सभी ललनायें कथा की इस शिक्षा को ज्वलन्त अक्षरों में अपने सामने लिख लें कि पतिदेव अनन्यदासी होने से ही प्रसन्न या वश में नहीं रहा करते, रज़िया सी दुखिया रात्रि में जाग कर क़ासिम का इन्तज़ार किया करती थी, गर्मी की सारी दुपहरियों में वह उसे पंखा झला करती थी, ठीक वक़्त से भोजन तैयार कर देना और बिस्तर प्रेम से बिछा देना वह अपने जीवन का परम कर्त्तव्य समझती थी किन्तु इसके क़ासिम के हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता था? कुछ नहीं, अथवा वह नहीं जो सब से पहले पड़ना चाहिए था। क़ासिम ने स्वयं ही लिखा है "मैं इसके लिए मरता था, वह मेरी ख़िदमत करती थी"। पत्नी को अनन्य दासी के सिवा कुछ और भी होना चाहिए। संसार की स्त्रियों को जो अपना जीवन सुखमय बनाना चाहती हैं, जो यह चाहती हैं कि

पति-देवता, वास्तव में देवता बने रहें, रजिया की इस शिक्षा को कभी न भूलना चाहिए। गोरी, सांवली, काली, सुरूपा या कुरूपा होना दैवी बात है, किन्तु एक साधारण नख सिख की स्त्री पुरुष-को पागल और पुजारी बनाये रख सकती । संसार की गणिकायें, कुलटायें, पापाचारिणी स्त्रियां सुन्दरी ही नहीं हुआ करतीं, किन्तु पुरुष के हृदय को वे मुट्ठी मे बन्द कर लेती हैं। कुलटा कर सके और ललनायें, गृहलक्ष्मिया, जो हृदय से पति से प्रेम करती हैं उसकी हृदय से सेवा करने में तत्पर रहती हैं न कर सकें यह प्रशंसा की बात नहीं। स्त्री-हृदय की अपेक्षा पुरुष-हृदय पर कब्जा करना सहज है। पुरुष जल्दी अन्धा हो सकता है, पागल हो सकता है। इसी के साथ ही साथ रजिया की शिक्षा, और बहुमूल्य शिक्षा यह भी है कि शरीर की मुख की या बाह्य सुन्दरता एक पुरुष-हृदय को केवल अपनी ओर जोर से आकृष्ट कर सकती है, उसे निकट घसीट कर पैरों पर गिरा भी सकती है, कुछ समय तक उससे वह अपने पैर भी दबवा सकती है, किन्तु पुरुष के हृदय को सदा वश में किये रहना इसकी शक्ति से बाहर है। पास रहने पर कुछ ही दिनों बाद उसी रूप में उसी व्यक्ति के लिए साधारणतः वही आकर्षण नहीं रह जाता, ऐसी दशा मे यह असंभव नहीं कि पुरुष हृदय रूपी पक्षी पैरों पर से उड़ कर कुछ मिनटों के लिए ही वनों उप-वनों और वाटिकाओं के वृक्षों पर भी बैठने की इच्छा करने लगे, साथ ही वह आकर्षण के जादू का भी शिकार हो। यदि कोई प्रयोग ऐसे समय में न किया जाय, बन्दर को अफीम का आदी न बना दिया जाय तो यह असंभव नहीं कि कुछ ही दिनों बाद वह चलता बने। हमारे देश की ललनाओं को इसलिए केवल रूप और सेवा सुश्रूषा या भोजन दे देने के भरोसे पर ही नहीं रह जाना चाहिये। बाह्य सुन्दरता के प्रभाव को कायम रखने के लिए और इसलिए कि कब्जा कहीं से कम न होने पावे, जवान और

हृदय से काम लेना चाहिए। रूप के बाद किन्तु रूप से किसी तरह कम नहीं स्त्रियों का दूसरा अस्त्र या जादू ज़बान की बातचीत है। इस अस्त्र को चलाने का अगर ज्ञान हो तो रूप होना या न होना कोई बहुत बड़े मूल्य की चीज़ नहीं है। पतिदेव के दुःख सुख में शरीक होकर उनके कार्य, उनकी झंझटों में दिलचस्पी लेकर, तनिक बुद्धिभरी, मीठी बातों से, तनिक मान, लज्जा हाव भाव से स्त्री वास्तव में अपने पति का आवश्यक अंग बन सकती है।

गृह संसार यात्रा की धर्मशाला या सराय है। दिन भर के बाद दुनिया की झंझटों से अलग होकर पतिदेव सब दुःखों को भूल जाने के लिए, आराम के लिए सराय में पहुंचते हैं। गृह में ही वे भोजन करते और आराम करते हैं। गृह की मालकिन पत्नी, सराय की देवी है। गृह पहुँचते ही एक मन्द मुसक्यान, एक सहानुभूति पूर्ण शब्द, एक मीठी अच्छी बात, एक सामयिक साधारण काम से वह स्वामी के सकल श्रम को, तमाम झंझटों को, दुःखों को, चिन्ताओं को भुला दे सकती है. वह उनको वही आराम पहुँचा सकती है जो सहारा या अरब के रेगिस्तान की जलती हुई मरुभूमि की बालू में एक बटोही को, एक सुन्दर पवित्र छुहारे के दरख्तों से घिरे हुए निर्मल, स्वच्छ, मीठे पानी के सोते के पास पहुँच जाने से मिलता है। स्त्री में बुद्धि चाहिए, साथ ही चाहिए उसे पति का सहयोग। सहारा के जैसे स्वच्छ सुन्दर. वाटिका के वृक्ष और पुष्प यात्री के जीवन में नवरक्त का संचार कर देते हैं, उसे प्रफुल्लित और तरो ताज़ा कर देते हैं उसी तरह से गृह-वाटिका के वृक्ष और सुमन, लड़के, बहू, बच्चों को साफ़ सुथरे रख कर, उनकी मीठी मीठी बातों से, उनके विनोद, खेल कूद, दौड़ धूप से पति देवता संसार के दूसरे दिन के युद्ध के लिए फिर हरे किये जासकते

हैं। ऐसा हो सकता है कि थोड़ी देर के लिए पति देवता, अपनी अवस्था, अपने काम काज को और संसार को भूल जाये। पति देवता आप ही इस स्वर्गसुख को छोड़ कर भागने का नाम न लेंगे। मान, हठ, ज़िद की एक सीमा होती है। उस सीमा के पहुंचने तक ही यह लाभकर होते हैं। अफीम एक सरसों का दाना स्वरूप एक वृद्ध को सुला देती है, उसका जीवन कष्टहीन और सुखकर बना देती है, किन्तु अधिक मात्रा में यही उसका प्राण ले-लेती है। मान, हठ, आत्मसम्मान, सेवा भाव प्रेम, लज्जा, नाज़ो नखरा आदि से विहिन स्त्री, स्त्री नहीं किन्तु इनकी मात्रा और समय निश्चित है। हर वक्त एक ही अस्त्र का व्यवहार वह चाहे लज्जा हो, मान हो, हठ हो, नाज़ नखरा हो या आत्म-सम्मान हो, व्यवहार में लानेवाली की ही एक दिन हत्या करेगा। यह ठीक नहीं कि दिन भर की काविशकोपत्त के बाद जलते भुनते पतिदेवता गृह मे आये कि अर्द्धांगी का मुख देख दुनिया को भूल जॉय, वहां अर्द्धांगी दूसरी सीमा पर पहुची हुई है, उसका मिज़ाज ही नहीं मिलता। पति देवता जान दिये दे रहे हैं, वह उनसे एकतत्वहीन शब्द कह फिर चुप हो जाती है। कोई भी पति इस दशा मे बहुत दिनों सच्चा पति नहीं बना रह सकता।

रजिया के सम्बन्ध मे अब हम अधिक न कहेगे। वह सती साध्वी स्त्री थी, एक अच्छे गृहस्थ की कन्या थी, जिस प्रकार अपनी माता को अपने पिताजी की सेवा करते उसने देखा था, उसी प्रकार वह सेवा करती थी। संसार का ज्ञान उसे कम था। वह शान्त स्वभाव की थी और कम बोलना पसन्द करती थी। क़ासिम की बातों का जवाब उसके पास यही था—

दिल बुझ गया शबाब के ढलने के पेश्तर।
बाकी है दिन हनोज, मगर धूप ढल गयी॥

मृत्यु के समय की उसकी नीरवता यही घोषित करती है कि "हमने क्या चाहा था, इस दिन के लिए" ?

'कासिम क्या था ? हमारी समझ मे एक स्वार्थी, अभिमानी, क्रोधी, मूर्ख, उद्धत और दयाहीन युवा जिसने मालुम पड़ता है उर्दू के चार चार आने के उपन्यास वहुत पढ़ रक्खे थे, जिससे जीवन के सिद्धान्त प्राय: सभी गलत थे किन्तु जो रज़िया को हृदय से पसन्द करता था और उस पर कब्ज़ा चाहता था। (हम यह नहीं कहेंगे कि वह रजिया से प्रेम करता था)। इसे अभिमान अपने मर्द होने का था, किन्तु इसकी मर्दानगी का सब से वड़ा सुबूत यह है कि "यह एक अवला की वाहें मरोड़ता और जब उसके चेहरे पर तकलीफ के आसार नजर आते तो इसे खुशी होती"। स्वार्थी यह इतना था कि वह रज़िया को हृदय से चाहता था। क्यों ? अपने मजे के लिये, इसलिये नही कि एक मिनट भी वह यह फिक्र करता कि रज़िया को कोई दु.ख तो नहीं है, उसे कोई पीड़ा तो नहीं है ? कहने को यह रजिया से प्रेम करता था किन्तु उसके मां वाप से उसे छुडा कर, संसार से उसे अलग कर उसने उसी जगह एकान्त में रख दिया और उसे यह फिक्र न थी कि लोकापवाद से मृतप्राय रज़िया के दिल वहलाने की जरुरत है, उसके पास अधिक से अधिक वैठकर उसे खुश रखने की ज़रूरत है, इस वात की जरूरत है, कि . वह अपने पुराने गृह को भूल जाय, संसार को भूल जाय जिन वातों मे वह दिलचस्पी लेती है, उसी में वह भी दिलचस्पी ले, उन वातों को कासिम अपने जीवन का अंग वना ले, अपने अस्तित्व को रजिया के अस्तित्व की वह परछाहीं वनाले और अपने को उसमें लीन करदे। उसके विपरीत इसने उस की कितावें फाड़ डाली, उसके कपड़े जला दिये, यह देर को रात्रि में घर पहुचता और इस फिक्र में पागल होगया कि कौनसा मनोरञ्जन है जो उसकी गैरहाजरी को उसके लिए वेमानी वना देती है।

कासिम ने रज़िया से कभी यह न कहा:—

"आज कहा तजि बैठी हो भूषन, ऐसे ही अंग कछू अरसीले।
बोलति बोल रुखाई लिए "मतिराम" सनेह सुनेते सुसीले ॥
क्यों न कहो दुःख प्रान प्रिया, अँसुवानि रहे भर नैन लजीले।
कौन तिन्हें दुख है जिनको; तुम से मन भावन छैल छबीले ॥"

इसने यह न किया कि रज़िया को पढ़ने का शौक था तो अच्छी अच्छी सुन्दर पुस्तकें लाकर उसे देता, खुद पढ़कर उनको सुनाता, रज़िया से पढ़वाता, उनकी पंक्तियों से सुन्दर सुन्दर अर्थ पैदा करता और पठनपाठन में अपने को ऐसा बना लेता कि उसके बिना रज़िया को पढ़ने में कोई मज़ा ही न आता। वह उसकी बाट जोहा करती, वह उसके पास ही बैठकर पढ़ती और बिना उसकी सहायता के उसे पढ़ना न सुहाता। पढ़ने के लिए ही ऐसी पुस्तकें दी जा सकती थीं जो रज़िया के सामने एक नूतन संसार उपस्थित कर देतीं, जो रज़िया के हृदय में बिजली दौड़ा देती, जो मुर्दे को ज़िन्दा बना देती, जो उसमें हरारत पैदा कर देती और जो उसे शोले की तरह भड़का देतीं। उपाय एक नहीं सहस्रों थे, शर्त थी यह कि क़ासिम अपने को रज़िया के लिए समझ लेता, किन्तु यह सब होता कैसे ? रज़िया तो विवाहिता स्त्री, प्राणप्यारी, नहीं दासी थी, उसके तो कर्तव्य ही कर्तव्य थे, उसके हुकूक़ कहां, उसके अधिकार कहां ? उद्धत और क्रोधी क़ासिम कितना था यह उसके इसी कहने से ज़ाहिर है "मेरे दिल में उस दिन एक खयाल आया लेकिन उसे मैंने दबादिया और मैं मुट्ठियों को बन्द कर रह गया"। क़ासिम ने पुस्तकें फाड़ डाली थीं, कपड़े जला दिये थे, रज़िया रो रही थी और खाना पका रही थी और ऐसे समय में क़ासिम के हृदय में यह विचार आया कि उसका गला दबा दे। यह विचार हृदय में पहले ही स्थान पाचुका था, किन्तु मुट्ठी बांध उसने विचार को दबा दिया था, दूसरे अवसर पर यही विचार तनिक दृढ़ होगया और

वह उसे दबा न सका, रज़िया मर गयी। गला दबा देने की ही ज़बर्दस्त ख्वाहिश ने क़ासिम की अंगुलियों को फौलाद बना दिया था और यही क़ासिम प्रेमी बनता है। कासिम को इसकी शिकायत है कि रज़िया ने उसे मनाया नहीं, वह दो दिन रूठा रहा, वह बोला नहीं, उसने खुश करने की कोशिश नहीं की किन्तु इसी कासिम ने पुस्तकों को फाड़ने, कपड़ो को जला देने के लिये रज़िया से माफी नहीं माँगी, उसके पैरों पर गिर कर उसने यह नहीं कहा कि मैं लज्जित हूं, क्रोध में ऐसा होगया, यह लो, उनसे भी सुन्दर सुन्दर पुस्तकें लाया हूँ और भी अच्छे अच्छे कपडे ला दूँगा, एक मेशीन भी ला दूंगा कि और भी अच्छी तरह से सीने का काम कर सको। कासिम यह सब क्यों करता ? वह तो मर्द था, कमाता था, रज़िया उसकी मोहताज थी। गुलाम का माफी मांगना, भूल के लिए पश्चाताप प्रकट करना फ़र्ज़ है, मालिक के लिये जो खाने को दे, यह नितान्त अनावश्यक है। कासिम को प्रेम का नहीं, रोटी कपड़ा देने का घमंड था। उसी का ज़ोर था। प्रेमी, आशिक कहीं यूं भी किया करते हैं, उनको कभी क्या इसका भी ज़ोर हुआ करता हैं ? वे कहीं गला दबा देने की भी इच्छा किया करते हैं।

कासिम नासमझ था, उसको इतनी अक्ल न थी कि किसी दूसरे मुहल्ले मे किसी दूसरे शहर मे लोकापवाद के दायरे से दूर रज़िया को रखता। पुस्तकों और कपड़ों के ज़ाया हो जाने पर रज़िया रोने लगी और इससे कासिम के क्रोध का पारा चढ़ गया। उसके दिल मे यह ख्याल आया कि रज़िया उसकी अपेक्षा पुस्तकों और कपड़ों को अधिक प्यार करती है, इस मूर्ख को यह न समझ पड़ा कि रज़िया इसलिये रो रही है कि जो दिन रात के साथी थे, जिनके साथ बैठकर वह अपने दु:ख के समय को काट देती थी, जिनकी सोहबत में उसे अपना संसार से, समाज

से अलग होना भूल जाता था वह साथी भी अब न रहे, अब दिन कैसे कटेगा ? वह रो रही थी इस दु:ख से कि जिसने माता पिता से अलग किया, संसार से अलग किया, जिसके लिए ससार के कष्ट मैंने उठाये, जो खुद मुझ को सुखी नहीं बना सकता, मेरे दु:खों को दूर नहीं कर सकता, जो मेरे हृदय-कुसुम को एक सेकन्ड केलिए प्रफुल्लित नहीं कर सकता, जिसने एक मिनिट के लिए यह समझने की कोशिश न की कि मेरा दिन कैसे कटे, जिसने स्वयं मेरे मनोरञ्जन का कोई प्रबन्ध न किया, उसी ने आज उनको भी नष्ट कर दिया जो मेरी इस विपत्ति के साथी थे, सच्चे साथी थे, जो दगा नहीं कर सकते थे, जो स्वार्थी न थे और जो कम से कम मुझ से प्रेम नहीं करते थे तो मेरे हृदय को चोट भी नहीं पहुंचाते थे। कासिम यह सब क्यों सोचता समझता, उसको तो स्त्री का महत्व ही नहीं मालूम था। वह तो समझता था कि स्त्री इस काबिल है कि एक रात के लिए बद्रमुनीर, पूर्णचन्द्र हो और बस। उसका तो विचार यह था कि स्त्रियों को चन्द लहमों के मनोरञ्जन से जियादा कुछ भी समझना सद्विचार का गला घोटना है। जिसके ये विचार हों, वह प्रेमी या आशिक हो नहीं सकता, उसकी दृष्टि में स्त्री का कोई महत्व हो नहीं सकता; वह स्त्री को अपने बराबर की समझ नहीं सकता, और जहां मर्द अपने से ही अधिकार और कर्तव्य स्त्री के नहीं समझता, जहाॅ मर्द यह नहीं समझता कि स्त्री के भी हृदय है, आत्मा है, वह भी सुख दु:ख को उसी तरह से अनुभव करती है जैसे कि मर्द, जहाॅ पति स्त्री को अपने से अधिक प्रसन्न और सुखी नहीं रखना चाहता, वहाॅ सुख नहीं हो सकता, वहां वह प्रेम, जिसकी दुहाई देकर दुनिया पागल होती है, हो नहीं सकता। संसार के मनुष्यों के लिये ही नहीं पागलों के शास्त्र में भी तो प्रियतमा के ही सब अधिकार होते हैं, कर्तव्य का बोझ तो मर्द ही के सर रहता है।

स्त्री—पुरुष का प्रेम

यह सिर्फ कवियों की कल्पना है। प्रेमियों के ही नहीं, कवियों और लेखकों के मस्तिष्क की भी यह बीमारी है जिस प्रेम का वर्णन हम पुस्तकों में पढ़ा करते हैं वैसी कोई चीज़ संसार में होती नहीं, वैसे प्रेम का संसार में अस्तित्व ही नहीं है। प्रेम को स्थायी कहना कवियों की कल्पना मात्र है। वास्तव में जिसे हम प्रेम समझते हैं वह काम की वासना मात्र है, वह केवल प्रवृत्ति और निवृत्ति के पदार्थों का आकर्षण है। कवियों और लेखकों ने प्रेम के गीत गा गाकर दुनिया को पागल और तबाह कर दिया है। उन लोगों ने अपनी कल्पना शक्ति से, लेखनी के जोर से एक ऐसी वस्तु को, जिसकी चर्चा करते भी लोग लज्जित होते, पवित्र बना दिया है। स्थान की कमी से इस सम्बन्ध में अधिक न लिख कर हम इतना ही कह देना चाहते हैं कि प्रेम के गीत गाने वाले यह नहीं कह सकते कि यह घटता-बढ़ता नहीं, कम से ज्यादा नहीं होता या ज्यादे से कम नहीं होता, यह भी कोई नहीं कह सकता कि आदि से अन्त तक यह एक ही सूरत में रहता है। हमारा कहना यही है कि जो चीज़ घटती बढ़ती है वह नाश को भी प्राप्त होती है और जो चीज़ नाश हो सकती है वह स्थायी नहीं हो सकती। किन्तु कवि अपनी कल्पना से प्रेम को अनन्त और स्थायी समझते हैं।

क़ासिम को भी काम-वासना थी। रज़िया के रूप पर वह मोहित था, वह रज़िया पर कब्ज़ा चाहता था, इसलिए कि खुल्लम खुल्ला, संसार, समाज और धर्म की आज्ञा से, कम से कम मूल्य देकर वह अधिक से अधिक अपनी वासना की तृप्ति करे। विवाह के नाम से वासना की तृप्ति केलिए वह एक पेटेन्ट लाइसेन्स चाहता था, विवाह का अर्थ उसके लिए इतना ही था, क़ासिम बेचारे केलिए ही क्यों सभी प्रेम के पुजारियों और विवाह का अर्थ

न समझने वालों केलिए विवाह का अर्थ इतना ही होता है। कासिम रूप पर मोहित हुआ, रूप को उसने देखा था और इसलिए वह शरीर पर कब्ज़ा चाहता था। इससे परे भी विवाह का अर्थ कुछ होता है इसकी उसे न फ़िक्र थी, न परवाह। वह यह नहीं जानता था, यद्यपि नारी-ज्ञान का उसे अभिमान था कि सच्चा विवाह, शरीरों का नहीं हृदयों का विवाह हुआ करता है। हृदयों का ही विवाह स्थायी सम्बन्ध और स्थायी सुख का सृजनहार होता है। इन्हीं सब बातों को समझ कर हमारे पूर्वजों ने विवाह को धर्म का, कर्तव्य का बाना पहिना दिया था। विवाह जभी सुखकर हो सकता है जब वह पारस्परिक स्नेह, पारस्परिक त्याग, पारस्परिक सहयोग और पारस्परिक सेवा की नींव पर खड़ा हो। क़ासिम को यह विदित न था क्योंकि शायद उसकी राय में स्त्रियों के आत्मा या हृदय नहीं हुआ करता। क़ासिम का "स्त्री-सम्बन्धी ज्ञान" सभी दृष्टियों से निकम्मा था। क़ासिम के स्त्री और उसके प्रेम सम्बन्धी विचार यह थे कि 'औरत' अगर चाहे तो मर्दों की जिन्दगी को तबाह कर सकती। फितरत, प्रकृति ने दिलों के तोड़ने के जिस कदर जितने भी ढंग हैं वह तमाम औरतों को सिखा रक्खे हैं। प्रकृति ने मर्दों के दिल महज़ इसलिए बनाए हैं कि औरतें उनको बे-परवाही से तोड़ डाला करें ·· ··· 'औरत का संकल्प जुल्म और सितम होता है जहां बग़ावत के बग़ैर कोई चारा नहीं, बगावत करना ही जहाँ रक्षा का उपाय है।

मालूम नहीं विफल-मनोरथ होने पर खीज में क़ासिम ने यह कह डाला है या उसके खयाल ही ऐसे थे। कासिम के न हों किन्तु संसार के कितने ही क़ासिमों के स्त्री-सम्बन्धी विचार ऐसे ही हैं। हम इन कासिमों से इतना ही कह देना चाहते हैं कि जिनके विचार यह हैं कि वे किस मुँह से स्त्रियों से सुख मिलने की आशा रखते

हैं ? ऐसे विचार रखने वाले कभी स्त्री-सुख का उपभोग नहीं कर सकते। हम यह भी यहां पर कह देना चाहते हैं कि कासिम के यह विचार उनके लिए हितकर हो सकते हैं जो बाजारू स्त्रियों या पर स्त्रियों के साथ अपना कुछ समय काट देना चाहते हैं, गैरों के साथ व्यवहार करने मे उनको मनोरंजन समझना, एक रात्रि के लिए पूर्णचन्द्र समझ लेना और बस, हितकर हो सकता है किन्तु अपनी अर्द्धांगी के साथ नहीं, उसके साथ नहीं जिससे हम सच्चा सुख चाहते हैं और जिसको हम जीवन की संगिनी बनाना चाहते हैं।

'स्त्री और स्त्री का प्रेम' कुछ और ही वस्तु है। एक लेखक के शब्दों मे स्त्री का प्रेम अद्भुत है, आरंभ मे वह इतना तुद्र है कि उसकी कोई संज्ञा नहीं, किन्तु अन्त उसका इतना विशाल है कि जिसका अन्त नहीं। यह पानी के उस छोटे बुदबुदों के सोते के समान है जो बूंद बूंद कर पहाड़ से टपकता है किन्तु जो आगे बढ़कर एक महान नद बन जाता है। यह वह महान् नद है जो सुख के दरिया बहाता, अठिलाता, नाचता, चारों ओर आनन्द की वर्षा करता, फैलता चला जाता है जो मनुष्यों के हृदय को आनन्द से पूर्ण करने वाले सम्पत्तिशाली बेड़ों का वाहन है, जो वीरान मैदानों और जगलों को रग बिरंगे सुन्दर सुमनों की वनस्थली बना देता है और जो उत्सुक किसानों के लहलाते खेतों को प्रफुल्लित कर देता है। साथ ही यह स्त्री-प्रेम एक भीषण जल-प्रपात या जल-प्रवाह है जो वर्षा के तूफान मे आशा की क्यारियों को डुबोकर नष्ट कर देता है, जो विचार के बाँधों को तोड़ कर मनुष्य की पवित्रता के मन्दिरों और धर्म के देवालयों को मिट्टी में मिला देता है, जो अपने प्रचंड वेग मे गांवों, मवेशियों और ग़रीब किसानों के झोंपड़ों को बहाता, नाश करता चला जाता है। स्त्री क्या है, यह कौन कह सकता है, किन्तु यह सत्य प्रतीत होता

है कि सृष्टि के आरम्भ में, जब अन्तर्यामी ने इस संसार के क्रम का विचार किया उस समय रचनाक्रम के सांचे में उसने स्त्री-प्रेम के बीज को डाल दिया क्योंकि यह अपनी विपम और अचिन्तनीय उत्पत्ति और वृद्धि से समानता का जन्म लेने वाला है। यह युद्ध कराता है, सन्धि कराता है और इस तरह से भी समानता स्थापित करता है। कभी यह नीचों को अकथनीय आश्चर्यजनक ऊंचाई पर पहुंचा देता है और कभी यह ऊँचों को धूल धूसरित कर देता है, उनको मिट्टी में मिला देता है। इसलिए, जब तक स्त्री, प्रकृति की विस्मय-जनक बेटी, संसार में मौजूद है पुण्य और पाप अलग अलग नहीं उदय हो सकते या उग सकते क्योंकि वह सदा प्रेम में मदमत्त, प्रेम के तीरों को लिये सामने खड़ी रहती है और हमारे भाग्य का निबटारा किया करती है। कभी यह अमृत समान मीठे जल को कटुता और जहर के प्याले में डाल देती है और कभी इच्छा के हलाहल से जीवन के स्वच्छ, पवित्र श्वास को विपमय कर देती है। बगावत व्यर्थ है। पुरुष, जिधर चाहे भागे, हर तरफ उसी का सामना है। उसकी निर्बलता, उसका प्रेम उसकी कोमलता तेरी शक्ति है, उसका साहस, उसका हठ, उसकी विरक्तता, उसकी निडरता तेरे विनाश का कारण है। तू उसका है और उसी का होकर रह सकता है। स्त्री मान-भंग की भूमि है, उसमें वह चुम्बक शक्ति है, जो अनायास ही लोहे के पहाड़ों को हिला देती है और अपनी ओर खींच लेती है। यह तेरी बांदी है, किन्तु तुझे बांध कर रखती है। उसके स्पर्श से मान विदग्ध हो जाता है, कपाट खुल जाते हैं और बन्धन टूट कर गिर पड़ते हैं। वह आकाश के समान अनन्त समुद्र के समान गम्भीर, विद्युत के समान चपल और विधि के समान अज्ञात और अज्ञेय है। स्त्री का ही दूसरा नाम अदृष्ट है। पुरुष! इसलिए स्त्री से बचने का प्रयोग मत कर, "तू जहां भी भाग कर

जायगा भावी समान वह तेरे साथ रहेगी और जो कुछ तू निर्माण करेगा वह उसी का घर होकर रहेगा"। क़ासिम का कहना है कि औरत मर्दों को तबाह कर सकती है। किन्तु क्या औरत मर्दों को स्वर्ग का सुख इसी पृथ्वी पर नहीं देती और उनको ऊंचे से ऊंचे आसन पर नहीं बैठा देती। क़ासिम का कहना है कि 'दिलों' को तोड़ने के जिस क़द्र भी ढंग हैं प्रकृति ने औरतों को सिखा रक्खे हैं, किन्तु क्या यह कहना ग़लत है कि संसार में और स्वर्ग में जो भी, जितने भी सुख हैं सब की दात्री, सब का केन्द्र स्त्री है। क़ासिम कहता है कि 'मर्दों' के दिल महज़ इसलिये हैं कि औरतें उनको बेदर्दी से तोड डाला करें, किन्तु क्या औरतें कासिम की अपेक्षा अधिक सत्यता से यह नहीं कह सकतीं कि वे इसलिए हैं कि मर्द उनको प्रेम में फाँसें, धोखा दें, चन्द लहमों के लिए उनको अपना खिलौना बना लें और फिर तोड़ फोड़ कर अलग करदें। औरतें इसलिए हैं कि वे सेवा करें, सर न उठावें और यों ही अपनी इह लीला समाप्त करदें। क़ासिम का कहना है कि 'रज़िया' ने सदा अपने हृदय का हाल छिपाया, किन्तु क़ासिम को यदि तनिक भी स्त्रियों का ज्ञान होता तो उसे यह मालूम होता कि स्त्रयों में इतना धैर्य होता है इतना संतोष होता है कि वे अपने दुःख की बात, अपनी पीड़ा की बात सदा छिपाया करतीं हैं, इसलिये नहीं कि छिपाने में उनका कोई निजू स्वार्थ है वरन इसलिए कि कष्ट सहने में ही वे अपने प्रेम का महत्व समझती हैं, अधिक से अधिक सेवा करना ही वे अपना धर्म समझती हैं और किसी तरह की भी चिन्ता या कष्ट अपने पति को वे नहीं देना चाहतीं।

क़ासिम का कहना है कि स्त्रियाँ इस क़ाबिल हैं कि एक रात केलिए पूर्णचन्द्र हो और बस। उसके ख़्याल में चन्द लहमों के मनोरञ्जन के सिवा इनको कुछ भी समझना सद्विचारों का गला

घोटना है। क़ासिम के इन्हीं विचारों ने उसका नाश किया, वह रज़िया को चन्द लहमों का मनोरञ्जन मात्र समझता था, वह शरीर से ही सम्बन्ध रखता था, हृदय से नहीं। स्त्रियां मनोरञ्जन मात्र नहीं हैं, वे अर्द्धांगी हैं, जीवन की नैया को बराबर खेवैया हैं, वे देवा हैं, दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती उनकी ही भिन्न विभूतियों के नाम हैं। क़ासिम का कहना है कि एक हस्ती कई हस्तियों से बनती है, उसको ज़िन्दगी के आख़िरी लहमों में मालूम हुआ था कि उसकी तनहा हस्ती में किस क़दर बहुतायत थी। अगर उसने पहले से गौर किया होता तो उसे मालूम होता कि रज़िया मे ही नहीं, हर स्त्री मे दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती और काली सब एक साथ ही मौजूद होती हैं, एक हस्ती में ही बहुतायत होती है। कासिम का इतना ज्ञान ठीक है कि स्त्रियां अन्धा कर देती हैं, पागल बना देती हैं और अपने निकट पहुँचने का रास्ता नहीं बतलातीं। स्त्रियों मे वास्तव में यही विशेषता है, यदि वे अन्धा न कर सकें, पागल न बना सकें तो स्त्रियो के अस्तित्व के उद्देश्य की पूर्ति न हो सके और सृष्टि के विकास का काम आगे न बढ़ सके। निकट रास्ता ढूंढ निकालना ही मर्द का काम है। स्त्रियां नहीं बतलातीं क्योंकि उनकी लज्जा, उनका धैर्य, उनका सन्तोष, उनका सेवाभाव उनके ऐसा करने मे बाधक होता है। क़ासिम के सम्बन्ध मे अब अधिक कहना जरूरी नहीं फिर भी संसार के क़ासिमों के लिए यह कह देना ज़रूरी मालूम पड़ता है कि "पुरुष की सिर्फ़ आवाज स्त्रियों के हृदय पर कुछ अनूठा असर करती है। यह प्राकृतिक है, मोर की आवाज के सुनने से मोरनी की क्या दशा होती है, यह मोरनी के सिवा कौन बता सकता है, किन्तु पुरुष की आवाज़ का कुछ असर है ज़रूर। क़ासिम जिस तरह, जिस भाषा मे और जिस दिल से प्रेम की भिक्षा मांगा करता था वह किसी भी स्त्री-हृदय को साधारण रूप से हिला दे

सकता है, उसका असर न होते देख क़ासिम को स्वयं विचार करना चाहिए था, उसको समझाना चाहिए था कि उसके इश्क का भूचाल रज़िया को क्यों नहीं हिला देता। रज़िया स्त्री थी, इसमे सन्देह करने की वजह न थी, स्त्री होते हुए भी, हृदय स्त्रीत्वहीन क्यों हो रहा था यह क़ासिम को सोचना चाहिए था। न समझ आने पर वजाय प्रेम मे सराबोर शब्दों को सुनाने के उसे उसके पैरो को अश्रु से धोना चाहिए था, हाथ जोड़ कर अपने किए हुए, और न किये हुए जाने और अनजाने क़ुसूरों के लिए माफी मांगना चाहिए था, सारा दोषी अपने को मान लेना चाहिए था। अश्रुधारा रज़िया को हिला देती, गरम गरम आंसू रज़िया के हृदय पर जमे हुए कीट को वहा ले जाते, रज़िया का हृदय भी पिघल जाता और इस दशा मे शायद जो घटना घट गयी वह न घटती। मार डालने के वाद लिपटना निस्सार भावुकता के सिवाय कुछ न था। पति मालिक क़ासिम को यह वात शायद न जॅचे लेकिन प्रेमी क़ासिम को इसके मान लेने मे कोई अड़चन न होनी चाहिए। संसार के क़ासिम इस वात की उपयुक्तता को न मानेंगे, उनकी समझ केलिए हम इतना ही कह देना चाहते हैं कि यदि दुर्भाग्य से साधारण सी वात मे भी यदि किसी समय स्त्री को विवश होकर जवरन स्वयं अपना मान भंग करना पड़ता है तो उसका हृदय मर जाता है और पुरुष को अन्धा और पागल बनाने की उसकी शक्ति मे कमी हो जाती है। अपने स्वार्थ, अपने सुख के लिए ही पुरुष को इसलिए ऊपर कही हुई वात मानना चाहिए। सिद्धान्त की वातो मे समुद्र की वीच की चट्टान की तरह अटल और अजेय प्रेम की वातो मे देवी का अदना, जरख़रीद ग़ुलाम होने से ही पुरुष स्त्री का प्यारा रतिपति प्रियतम हो सकता है।

क़ासिम के सम्बन्ध मे अब हमे इतना ही कहना है कि वह

एक साधारण मनुष्य था, उसने बिना रज़िया को समझे बूझे उससे शादी की. वह उसे प्रसन्न करना चाहता था किन्तु कर न सका। अपनी बेवक़ूफ़ी से वह रज़िया और साथ ही अपनी मृत्यु का कारण हुआ। अनमेल विवाहों और नितान्त शारीरिक सम्बन्धों का यही अन्त हुआ करता है। रज़िया ने अपना धर्म छोड़ा, माता पिता को छोड़ा, समाज को छोड़ा एक ऐसे मनुष्य के लिए जिसकी प्रकृति उसकी प्रकृति से भिन्न थी, अपनी इस नासमझी का उसने भी दण्ड पाया। घर से इस प्रकार निकलने, समाज को इस तरह से त्याग करने का दण्ड क्रूर समाज बुरी तरह से देता है, वह दयाहीन है, ममता उदारता को उसके हृदय में स्थान नहीं मिलता है। समाज ने अपनी अवहेलना का बदला लिया। खता वास्तव में उन कवियों और लेखकों की है जिन्होंने 'कामवासना' को प्रेम और इश्क के नाम से पवित्र कर दिया है और कसूर क़ासिम का सिर्फ़ इसलिए अधिक है कि वह मर्द था, रज़िया से अवस्था में भी अधिक था, रज़िया की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान था, उसे संसार का ज्ञान भी अधिक था और इसलिए कठिनाइयों को उसे पहले समझ लेना चाहिए था, उनको दूर करने, उनका मुक़ा-बिला करने का भी उसे प्रबन्ध करना चाहिए था।

क़रीब करीब सभी प्रश्नों का जवाब ऊपर की बातों में आगया है, सिर्फ़ प्रश्न यही रह गया है कि 'मरगई न बोली' यह क्यों? हमारा कहना यही है कि रज़िया ने यह नहीं समझा था कि वह मर जायगी, क़ासिम मार ही डालेगा। नहीं बोली थी इसलिये क्योंकि उसकी समझ में ही नहीं आता था कि क्या जवाब दें। निस्सार भावमय बातों का एक साधारण गृहस्थ ललना जवाब ही क्या दे सकती है? साथ ही विरक्त होने से हठ भी था कि न बोलूंगी, मगर रज़िया यह नहीं समझी थी कि नतीजा यह होगा। दुनिया से बेज़ार होना, मरने के लिए सदा तैयार रहना एक बात है, मर जाना

दूसरी। रज़िया का मर जाना केवल दैव या विधि की विडम्बना के नाम से ही पुकारा जा सकता है। रज़िया को ऊढ़ा नायिका समझने वाले कुछ लोग रज़िया की तुलना सेक्सपियर के 'डेसी डमोना' से करेंगे। डेसीडमोना का भाग्य भी कुछ रज़िया के ही समान था, डेसीडमोना भी सती थी और बोलना नहीं जानती थी, इन बातों को छोड़ कर और कोई भी तुलनात्मक बात दोनों मे नहीं है। 'डेसीडमोना' पर दुश्चरित्रा होने का अभियोग उसके पति "ओथेलो" ने लगाया था, वह सती थी, सीधी थी, बातें करना नहीं जानती थी, चतुर भी न थी, वह पति को सन्तुष्ट न कर सकी, जब कि एक चतुर स्त्री सहज में ही कर सकती थी। रज़िया की स्थिति ऐसी न थी। रज़िया नहीं बोल सकी, नहीं जवाब दे सकी, क्योंकि उसका हृदय भावुक न था, क्योंकि वह बातें बनाना नहीं जानती थी और क्योंकि उस समय उसके हृदय की दशा कुछ वैसी ही थी जैसी कि कथा लिखने के समय क़ासिम के हृदय की थी। रज़िया का हृदय एक अधगिरा मन्दिर था जिसमें जीवन नहीं, एक खंडहर था, जहाँ न आरती की झलक थी न घन्टे की गुंजार, उसमे केवल वीतकाल की पूजा की स्मृति थी, वह भी स्वप्न समान। रज़िया सेवा का काम पूरा करती थी इसमे उसने कमी नहीं होने दी, दासी की भाँति वह काम करती रही, क्योंकि क़ासिम की दृष्टि में वह दासी थी। क़ासिम ने रज़िया के हृदय की परवाह न की, उसका आदर नहीं किया, रज़िया ने भी अनाहत हृदय को दूर ही रक्खा और हृदयहीन होकर ही शरीर के उपासक केलिए शरीर से ही सब कुछ करती रही।

(अभ्युदय से उद्धृत)

विवाह के लिये सात नियम

सुखमय वैवाहिक-जीवन के लिए निम्न सात नियम शिकागो के जज जोसेफ सेवाथ ने लिखे हैं। आप अमरीका में कम से कम २२००० तलाक के मामलों मे फैसला दे चुके हैं:—

(१) अपने साथी के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के अनुकूल वनो।

(२) ध्यान रहे कि नीरसता और सफल विवाह इन दोनों में घोर शत्रुता है।

(३) समझौता वह महोषधि है जो तलाक के कीटाणुओं का विनाश करती है।

(४) विवाह के पहले ही अपनी प्रेमिका अथवा प्रेमी के विवाह सम्बन्धी विचारों को मालूम कर उनको अपने प्रेममय जीवन का आधार वना लो।

(५) सासों का मिलना भाग्य की बात है किन्तु उनके साथ रहना खतरनाक है और उनकी आलोचना करना घातक है।

(६ समय वीती को वेदी ही पर छोड़ आना चाहिए, फिर उसे वापस लेने कभी न जाना चाहिए।

(७) विवाह-सम्बन्धी कालेज मे प्रवेश के लिए कोर्टशिप प्रारम्भिक स्कूल है। प्रेम की कला की सच्ची शिक्षा तो सुहाग-रात को ही आरम्भ होती है और जीवन भर होती रहती है।

स्त्री, पुरुष और प्रेम

स्त्री की ज़बान यद्यपि केवल तीन इञ्च ही लम्बी होती है, किन्तु यदि बदमिजाज हुई तो वह अपनी ज़बान से ६ फीट लम्बे आदमी का संहार कर सकती है।

एथनालोजिकल सोसाइटी के सामने स्त्री की पुरुष से तुलना करते हुए अपने भाषण मे डा० वर्नार्ड हालैण्डर ने उपर्युक्त कहावत का उल्लेख किया था। उनके भाषण से कुछ उद्धरण नीचे दिए जाते हैं —

पुरुष अधिक निश्चयी, पुरुषार्थी, मस्त और स्फूर्तिवान् होता है। स्त्री अधिक सहनशील, शान्त, प्रेमी और सदा एकसी रहने वाली होती है। यही कारण है कि पुरुष बढ़िया जर्राह (सर्जन) और स्त्री अच्छी धाय (नर्स) बन सकती है। पुरुष शब्दों से काम लेता है, स्त्री अपनी दृष्टि और नम्रता से काम लेती है।

प्रायः सभी स्त्रियां अपने कार्यों मे बहुत उदार होती हैं, किन्तु विचारों में वे सदा उदार नहीं होतीं। पुरुष किसी वस्तु अथवा व्यक्ति को पसन्द अथवा नापसन्द कर सकता है; स्त्री सदा पराकाष्ठा पर रहती है।

स्त्रियां वास्तविक झूठ बहुत कम बोलती हैं, क्योंकि पहले वे अपने को इस बात का विश्वास करा लेती हैं कि जो कुछ वे कहेंगी वही सत्य है। स्त्री कभी कभी अपने पापों को भी कबूल सकती है किन्तु अपनी गलतियों को वह बहुत कम स्वीकार करती है।

प्रेमासक्त पुरुष जल्दबाज़ी में रहता है। वह तीव्र भावों की प्रत्येक अवस्था को जल्दी से पार कर जाना चाहता है, मानो वह सदा केलिए इनसे छुटकारा पा जाना चाहता हो। स्त्री प्रत्येक सीढ़ी पर कुछ विश्राम लेना चाहती है।

पुरुष थोड़ा किन्तु अक्सर प्रेम करता है, स्त्री बहुत ज्यादा प्रेम करती है किन्तु एक बार ही। प्रेम की वेदी पर स्त्री अपने को मिटा देती है इसके विपरीत; पुरुष कभी कभी अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए अपनी आत्मा की तरह उस स्त्री को भी ठुकरा देगा जिससे वह प्रेम करता हो।

स्त्री जब तक प्रेम करती है लगातार करती है, किन्तु पुरुष के प्रेम करने के अवसर हुआ करते हैं।

प्रेम और सम्पत्ति

विवाह होते ही हम सभी रोमियो और जूलियट हो जाते हैं किन्तु प्रकृति कला से अधिक होशियार नाटक-रचयिता नहीं है। विवाह के बाद वाले सुबह को ही यह हमारा साथ नहीं छोड़ देती। अतएव कभी कभी ऐसा होता है कि दूसरे दिन पर्दा उठता है और एक नया खेल आरम्भ हो जाता है सम्भवतः यह खेल 'कर्कशा स्त्री' वाला भी होता है।

इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ वेञ्जामिन डिज्रेली के! तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित किया गया है। मि० ऐण्ड्री मौराय की विवेचना के अनुसार डिज्रेली चमत्कार पूर्ण विवाह में विश्वास ही नहीं करते थे।

ग्रासवीनारोड में एक विशाल मकान की मालकिन मिसेज वीण्डहम लुई नामक एक अत्यन्त धनी विधवा के साथ जब डिज्रेली ने विवाह किया तब उसके शत्रुओं ने बड़े जोरों से यह कहना आरम्भ कर दिया बनाने के साधन हैं। किन्तु जैसा कि हमको उपदेश देने वाले लोग हमें आगाह किया करते हैं इस तस्वीर का एक दूसरा रुख भी है।

इसका समझना अत्यन्त आसान है। आजकल के विवाहों में जो मिथ्या जगमगाहट और शोरगुल रहता है उससे विवाह सूत्र में बन्धने वाले व्यक्तियों का साधारण धैर्य्य जाता रहता है। मैं नहीं जानता कि किसने 'प्रेमासक्त होना' इन शब्दों को ईजाद किया है। चाहे बाबा आदम ने अथवा जेन जैक्वीस नौसो ने किया हो, किन्तु जिस किसी ने इन शब्दों को ईजाद किया वह अवश्य

ही अपने लोगों का बुरा चाहता था क्योंकि इन शब्दों का अर्थ भ्रमोत्पादक है।

कुमार कुमारी की दशा में किसी से प्रेम करना युवा व्यक्तियों केलिए एक अत्यन्त चमत्कार पूर्ण और उपयुक्त बात समझी जाती है।

प्रेम करने से ठीक हो अथवा गलत—हम यही मतलब समझते हैं कि दो युवा व्यक्ति आकर्षण के नियम के अनुसार आपस में मिल रहे हैं।

स्टेज और पुस्तकों में प्रेमासक्त व्यक्तियों को लेकर बड़ा खिलवाड़ किया गया है। विषय फलप्रद है और इसे लगातार उत्तेजना देते रहने की आवश्यकता है। क्योंकि परिस्थिति का निरूपण करने से पता चलेगा कि इससे बढ़ कर अन्य मजाक की चीज नहीं है।

प्रेमी लोग यह ख्याल कर सकते हैं कि संसार में वे अत्यन्त स्वार्थहीन व्यक्ति हैं। अचानक मालूम पड़ता है कि जीवन ने एक नया प्रकाश और नया अर्थ ग्रहण किया है। आपस में दोनों प्रेमी एक दूसरे को अधिक रूपवान् देखते हैं।

ऐसा ही उनको मालूम पड़ता है, किन्तु यह सच्ची परिस्थिति नहीं है। आपस में एक दूसरे को सुखी देखने की धुन में वे यह नहीं देखते कि बात वैसी ही नहीं है जैसी मालूम पड़ती है। वे तो अपने अपने सुख की तलाश में ही रहते हैं।

प्रेम के विवाह से कर्तव्य का विवाह श्रेष्ठ है।

इङ्गलैण्ड अभी बहुत दिनों तक प्रेम के विवाह की लीलाभूमि बना रहेगा। 'डेली मिरर' नामक समाचार पत्र में एक लेखक ने लिखा है कि हम लोग (अंग्रेज) स्वप्नदर्शी हैं और एक फरांसीसी की तरह सचाई का अनुभव नहीं करते।

हम लोग उसमें अधिक रुचि लेते हैं जिसे "एक सुन्दर विवाह" कहा जाता है, फूलों का गुच्छा लिए हुए वधू की सहेलियों के शर्मा जाने, वर के सखागण के ठीक समय पर गुलाब के फूल की पंखड़ियों को छिटकाने और उस गाड़ी की सजावट में जिसमें सवार होकर वर और वधू की सवारी निकलती है हम लोग अधिक दिलचस्पी लेते हैं।

यह सब बहुत सुन्दर है और दो युवा व्यक्तियों के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना को प्रभावमयी था कि उसने उस विधवा के धन की लालच से ही विवाह किया है।

यदि डिजरेली ने धन की ही लालच से विवाह किया हो तो पाप ही क्या है। प्रेम की अभिलाषा की तरह धन की इच्छा करना भी कोई बुरी बात नहीं है। 'अच्छाई' और 'बुराई' तो उस धन और इसी प्रकार से प्रेम के उपयोग पर ही निर्भर है।

डिजरेली का उद्देश्य कुछ भी क्यों न रहा हो किन्तु इनका विवाह पूर्ण सन्तोषप्रद रहा है। डिजी और मेरी एन के व्यक्तिगत जीवन में इङ्गलैण्ड की एक अत्यन्त मनोरञ्जन प्रेम कहानी व्यवस्थित है। मेरी एन अपने गुणों से पति को सदा प्रेमपाश में आबद्ध किए रहती थी।

विवाह का भविष्य क्या होने जा रहा है?—यह एक महान् प्रश्न है जिसका कोई अत्यन्त निर्भीक तत्ववेत्ता भी उत्तर देने की हिम्मत न करेगा।

हमें आशा करनी चाहिये कि भविष्य के विवाहों में मिथ्या चमत्कार के भाव कम होंगे और उनमें आन्तरिक साधारण बुद्धि का ही आधिक्य रहेगा। बहुधा विवाहित लोग सुखी नहीं रहते। इसका कारण यह है कि वे बहुत अधिक की आशा करते हैं। वे समझते हैं कि विवाह से जीवन-यात्रा आसान हो जायगी, किन्तु यह सब कुछ नहीं होता। विवाह में सुख केवल एक बात पर निर्भर है और वह है विवाहित व्यक्तियों के विकास की डिग्री।

यदि वे समझदार व्यक्ति होंगे, सदा सुख लेने और देने के लिये तय्यार रहेंगे और जीवन की तरफ एक तात्विक दृष्टि से काम लेने के लिये तय्यार रहेंगे तब उनके सुखी रहने की अधिक सम्भावना है।

जब आपस में मतभेद हो तब उन्हें उसकी गहराई को समझने की चेष्टा करनी चाहिए। दूसरों के स्वभाव में परिवर्तन करने की अपेक्षा अपने स्वभाव में परिवर्तन करना अधिक अच्छा और कम कठिन है।



विवाह के प्राचीन क्रम

सांसारिक व्यवहार विवाह होने पर ही प्रारम्भ होते हैं। कन्या को अच्छी तरह सजाकर विवाह कर देना, ब्राह्मविवाह कहलाता है। कन्या और वर से यह वचन लेकर कि वे दोनों मिल कर धर्म का आचरण करेंगे, विवाह कर देना प्राजापत्य विवाह कहा जाता है। वर से दो गाय लेकर पुत्री दे देना आर्ष विवाह के नाम से प्रसिद्ध है।

वेदी पर बैठाकर ऋत्विज को कन्या दे देने से दैव विवाह होता है। गान्धर्व-विवाह, प्रेम का विवाह है, युवक और युवती प्रेम से प्रेरित हो (बिना माता पिता की राय के भी) अपनी रुचि से विवाह करते हैं। कन्या के पिता को धनादि देकर पुत्री को प्राप्त करना आसुर-विवाह है। बल से कन्या को छीन लाना, जैसे रुक्मणी-हरण, राक्षस-विवाह कहा जाता है। सोती हुई कन्या को उठा या उठवा लेजाना पैशाच- विवाह है।

पहिले चार प्रकार के विवाह धर्म्म कहे जाते हैं। बाक़ी के चार[1] के लिए भी माता पिता की अनुमति[2] आवश्यक है, क्योंकि वे दोनों ही लड़की को देकर शुल्क को लेते हैं।

---

(१) कुछ आचार्यों ने इन चारों को "काम्य" विवाह कहा है। कुछ लोगों का कहना यह भी है कि ये धर्म्य नहीं माने गये क्योंकि इनमें विवाह—विच्छेद की अधिक सम्भावना है।

(२) यह समझ में नहीं आता कि अगर माता पिता सम्मत हों तो ज़बर्दस्ती और चोरी की ज़रूरत क्यों! संभव है बल से छीन लाने या चुरा लाने के बाद विवाह के अर्थ विवाह के समय में अनुमति लेना ज़रूरी रहा हो।

यदि माता पिता में से कोई एक न हो, तो दूसरा और यदि दोनों ही न हों तो उस शुल्क, धन की अधिकारिणी वह स्त्री ही होगी। सब विवाहों में ही पुरुष और स्त्री की परस्पर प्रीति आवश्यक है।*

---

*हमारी समझ में यह नहीं आता कि "पैशाच-विवाह" के लिए परस्पर प्रीति कैसे और क्यों आवश्यक है? अगर प्रीति हो, तो कन्या सोती न रहेगी? वह प्रेमी के साथ भागने को स्वयं तैयार रहेगी राक्षस विवाह में प्रीति हो भी सकती है नहीं भी हो सकती है। यह बात ही दूसरी है कि हम बल से छीनी कन्या के साथ विवाह को राक्षस-विवाह ही न कहें। भीष्मपितामह काशिराज की तीन कन्याओं को बल से हर लाये थे। वह राक्षस-विवाह नहीं था तो क्या था? वर, वधू मे प्रीति कर सवाल ऐसी दशा में नहीं हो सकता। कृ० का० मा०

स्त्री-धन

स्त्री-धन दो प्रकार का होता है। एक वृत्ति, दूसरा आवध्य। वृत्ति, नक़द रुपयों की होती है और वह किसी महाजन के पास जमा करदी जाती है। कहा जाता है कि रुपयों की संख्या दो हज़ार से कम न हो यह नियम था। आवध्य-स्त्री धन की तादाद नियमित न थी, वह गहना, गुरिया, मकान, भूमि तथा अन्य मनकूला और ग़ैर मनकूला जायदाद के रूप में होता था।

स्त्री, पति के विदेश में होने पर, अगर वह भरण पोषण का प्रबन्ध न कर गया हो तो गाढ़ के समय में अपने इन रुपयों को खर्च कर सकती थी।

गान्धर्व तथा आसुर-विवाह में पति के लिए ब्याज सहित स्त्री-धन का लौटा देना आवश्यक था।

धर्म्य-विवाह जिनका हुआ है ऐसे पति पत्नी परस्पर सलाह से,* दो बच्चों के पैदा हो जाने पर, स्त्री-धन की रक़म में से खर्च कर सकते थे। बच्चा न पैदा होने की दशा में शुरू में तीन वर्ष तक एक दूसरे की सलाह से पति पत्नी स्त्री-धन में से खर्च कर सकते थे।

---

*जहां तक मालूम पड़ता है, दो बच्चों की शर्त इसलिए है, क्योंकि बाद में विवाह-विच्छेद की सम्भावना कम हो जाती है।

कु० का०मा०

विधवा-विवाह

काम्य-विवाह में, अर्थात् गान्धर्व, आसुर-विवाह वाले पति को अगर वह स्त्री-धन से रुपया खर्च करे तो व्याज सहित उसे वह वापस करना पड़ता था। अगर राक्षस और पैशाच-विवाह वाला पति खर्च करता था तो उसे व्याज सहित रुपया तो वापस ही करना पड़ता था, साथ ही उसे चोरी का दंड भी भोगना पड़ता था। पति के मरते ही, जो स्त्री पवित्र जीवन धारण करना चाहती थी उसे स्त्री-धन, शुल्क सब उसी समय दे दिया जाता था। किन्तु अगर वह दूसरा विवाह करना चाहती थी तो उसे स्त्री धन का मूल-धन वापस कर देना पड़ता था। किन्तु यदि कुटुम्ब की कामना से वह विवाह करना चाहती और पति के पिता या अभिभावकों की सम्मति से तो उसे रुपया नहीं लौटाना पड़ता था।

पुत्रवती विधवा यदि विवाह करना चाहती थी तो उसे स्त्री-धन पर कोई अधिकार नहीं होता था। किन्तु पुत्रवती होती हुई भी बाल बच्चों के पालन पोषण के अर्थ ही यदि कोई विधवा दूसरा विवाह करना चाहती थी।। विवाह के पहिले पुत्र के नाम से स्त्री-धन की रकम को उसे सुरक्षित रूप से जमा कर देना पड़ता था।

कई पतियों द्वारा कई पुत्रों की माता को हरएक पुत्र के नाम से, उसके पिता से पाये हुए स्त्री-धन को जमा कर देना पड़ता था। ❀

❀विवाहधर्म, स्त्रीधन, विधवा-विवाह, विवाह-विच्छेद यह सब "कौटिल्य अर्थशास्त्र" से उद्धृत किया गया है।

विवाह-विच्छेद ।

(Divorce)

यदि पति अकारण ही एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह करे तो उस प्रथम स्त्री को उसके विवाह में पाये हुए धन दहेज आदि को उसे लौटा देना पड़ता था।

एक पति एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री से विवाह करना चाहता तो पहिली स्त्री को उसका स्त्रीधन, दहेज और साथ ही जीवन भर के निर्वाह के लिये धन देकर वह दूसरी स्त्री या स्त्रियों से विवाह कर सकता था।

नीच, प्रवासी, राज-द्रोही, पापी, हत्याकारी, धर्म और जाति से पतित तथा पुंसत्व-हीन पति को पत्नी छोड़ कर दूसरा विवाह कर सकती थी।

यदि पत्नी पतिसे द्वेष रखती हो और सात ऋतु पर्यन्त पति से दूर रहे तो स्त्री-धन, आभूषणादि पति को लौटा कर उसे दूसरे विवाह की अनुमति दे दे। इसी तरह से यदि पति पत्नी से द्वेष रखता हो और सात ऋतुओं पर्यन्त उससे दूर रहे तो नियम यह था कि वह पत्नी को संन्यासिनी, भिक्षुकी स्त्रियों तथा बन्धु बान्धवों के साथ अकेली रहने से न रोके अर्थात् उपयुक्त अवसरों पर उसे अकेली रहने की अनुमति दे दे।

यदि पति किसी बुराई करने पर पत्नी को छोड़ना चाहे तो उसका स्त्रीधन दहेज वग़ैरह उसे देकर छोड़ दे। किन्तु यदि दोष पुरुष का हो तो स्त्री से स्त्रीधन आभूषणादि न लिया जाय।

धर्म्य विवाहों में विच्छेद की आज्ञा न थी। इनमें दंड का विधान था।

थोड़े समय के लिए यदि पति बाहर गया है और स्त्री के

भरण पोषण का प्रबन्ध नहीं कर गया है तो पत्नी एक वर्ष तक या कुछ और दिनों तक उसकी प्रतीक्षा करे बाद में दूसरा विवाह करले, किन्तु यदि पति जीविका का प्रबन्ध कर गया है तो दो तीन वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा करे।

अगर पति जीविका का प्रबन्ध न कर गया हो तो बन्धु बान्धव आठ वर्ष तक स्त्री की रक्षा करें, इसके बाद उससे स्त्रीधन लेकर उसे पुनः विवाह कर लेने की आज्ञा दे दें।

विद्योपार्जन के लिए गए हुए ब्राह्मण की सन्तानहीन पत्नी दश वर्ष तक और पुत्रवती बारह वर्ष तक पति की प्रतीक्षा करे और यदि पति राज काज से गया हो तो जीवन पर्यन्त उसकी प्रतीक्षा करे। यदि किसी समान वर्ण ब्राह्मणादि से इस समय में बच्चा पैदा हो जाय तो स्त्री निन्द्य न समझी जाय।

सम्पत्ति के नाश होने पर, तथा बन्धु बान्धवों के किसी तरह से जीविका का प्रबन्ध न करने पर स्त्री अपनी इच्छा से दूसरा विवाह कर सकती थी। धर्म्य-विवाह की पत्नी अक्षतयोनि सात ऋतुओं तक प्रतीक्षा करे। यदि पति उसकी जीविका का कोई प्रबन्ध नहीं कर गया है। यदि पति कहकर गया हो तो उसकी एक वर्ष पर्यन्त प्रतीक्षा करे, उसकी खबर न मिलने पर पांच मास और पति की खबर मिलजाने पर दश मास तक उसकी प्रतीक्षा करे।

ऐसी स्थितियों में प्रत्येक स्त्री धर्माधिकारी से आज्ञा ले दूसरा विवाह कर सकती थी। यदि पति संन्यासी होगया हो, साधु हो गया हो, भाग गया हो, मर गया हो, तो उसकी पत्नी सात मास प्रतीक्षा करने के बाद पुनर्विवाह करले।

पति का सगा भाई हो तो अच्छा, न हो तो उसके समान गोत्रवाले, उसी के कुटुम्ब के किसी से विवाह करले।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र)

काम-वासना का दमन कैसे किया जाय?

कुवासनाओं का प्रभुत्व नवयुवक समाज पर अत्यधिक है, यह निर्विवाद है। साथ ही यह भी उतना ही सत्य है कि इससे नवयुवकों का ही नहीं, देश तथा समाज का भी बड़ा अहित होरहा है। काम-वासना की कुप्रवृत्ति के फलस्वरूप मनुष्य का इतना शारीरिक ह्रास हो जाता है कि वह फिर किसी मर्ज की दवा रह नहीं जाता इसलिए देश और समाज के हित की दृष्टि से यह आवश्यक है कि इस कुप्रवृत्ति का दमन किया जाय और इस पर विजय प्राप्त की जाय।

नवयुवकों का हृदय वास्तव में शुद्ध होता है। साधारणतः उनकी कामना पवित्र-जीवन व्यतीत करने की होती है। मनुष्य के अन्तस्तल में एक वस्तु होती है, जो सदा इस बात का स्मरण कराया करती है कि 'तुम उत्पन्न हुए हो लिप्सा के लिए नहीं वरन् प्रेम के लिए, अपवित्र वस्तुओं के लिए नहीं, बल्कि शुद्ध और पवित्र वस्तुओं के लिए' साथ ही वह सदा आदेश करती रहती है कि 'अपने जीवन को उत्तम और सुन्दर बनाओ।'

मुझसे बहुधा नवयुवक लोग कहा करते हैं "आप जो कुछ कहते हैं, जो कुछ लिखते हैं वह अक्षरसः सत्य है और हम इस बात में आप से सहमत हैं कि पवित्रता जीवन का सर्वोत्तम मार्ग है; परन्तु कहना तो सरल है और उसका करना बड़ा मुश्किल है।" मैं इसे जानता हूं, पर जिस प्रकार एक नवयुवक अन्य बातों के सम्बन्ध में अपने कर्तव्य का निश्चय करता है, उसी तरह उसे स्वयं अपने जीवन और शरीर के संबन्ध मे भी निश्चय करन।

चाहिए। शरीर के सम्बन्ध में भी निश्चय करना ही होगा क्योंकि इसे टाला नहीं जा सकता। मेरे इस लेख का उद्देश्य उन लोगों की सहायता करना है जिन्होंने अभी अपने मार्ग का निश्चय नहीं किया है और साथ ही मुझको उन लोगों की भी मदद करनी है जिन्होंने अपने मार्ग को निर्धारित तो कर लिया है, किन्तु रास्ता ग़लत चुना है।

मुख्य प्रश्न यही है कि मनुष्य कामवासना का नियन्त्रण न कर उसके हाथों अपना आत्म-समर्पण कर दे अथवा अपनी वासनाओं का वह दमन करे और अपनी मानवी शक्ति को कायम रखे। अभाग्यवश कुछ लोग ऐसे भी हैं जो स्वयं तो कोई प्रयत्न नहीं करते और सारा दोष वासनाओं के ही माथे मढ़ते हैं और यह भूल जाते हैं कि इस समस्या का सामना केवल उन्हें ही नहीं करना पड़ता, बल्कि प्रत्येक मनुष्य को उसका मुकाबिला करना पड़ता है। यहां पर मुझे एक नवयुवक की कथा याद आती है—युवक यद्यपि नौवजवान था, किन्तु उसकी आँखें उसे जवाब दे रही थीं। वह डाक्टर के पास गया। डाक्टर ने उसकी परीक्षा की और कहा कि अपने आचरणों को छोड़ो नहीं तो ६ महीने बाद तुम्हारी आँखें फूट जायंगी। युवक डाक्टर की राय सुन कर घर चला आया और घर पर उसने कहा "संसार के प्रकाश! तुमको भले ही नमस्कार, पर मैं अपने पाप-कर्मों को नही छोड़ सकता।"

ग़लत निर्णय करने का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। इसी प्रकार लोग मानवी शक्ति की हत्या कर बैठते हैं।

अब कुछ व्यावहारिक बातें भी कह देना चाहता हूं। वासनाओं के साथ युद्ध करने में दो वस्तुओं को साथ लेकर उसका मुकाबला करना होता है। एक है शरीर और दूसरा मस्तिष्क। बुरी वासनाओं से बचने के लिए शरीर के बराबर ही मस्तिष्क पर भी

काबू रखना पड़ता है। यह सदा देखा गया है कि मनुष्य के विचार ही आगे चल कर आचरण में परिणत हो जाते हैं।

कामवासना के दमन के उपाय

कुवासनाओं से बचने के लिए सब से पहली आवश्यक बात शरीर को साफ रखने की है। नित्य ठंडे जल से खूब स्नान करना चाहिये। ठंडे जल का प्रयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से ही लाभप्रद नहीं है, वरन् यह मनुष्य के विचारों को भी पवित्र रखता है। इसमें कुविचारों के दमन की भी शक्ति है। इसके अतिरिक्त अत्यधिक खाने से भी बचना चाहिये। अधिक भोजन और साथ ही बहुत अच्छा तथा खटाई मिर्चा आदि पदार्थों के खाने से कामोद्दीपन होता है। खेद है कि भोजन की ओर काफी ध्यान नहीं दिया जाता। कुछ भोज्य-पदार्थ ऐसे होते हैं जो मनुष्य के स्वास्थ्य को श्रेष्ठ बनाते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जिनसे स्वास्थ्य बिगड़ता है। अतएव मनुष्य को ऐसे ही पदार्थ खाने चाहियें जिनसे स्वास्थ्य की वृद्धि होती हो। भोजन के लिए घी, दुग्ध, मक्खन, ताजे फल विशेषकर सन्तरे, नींबू और अधिक से अधिक हरी तरकारियाँ बहुत लाभकर हैं।

बहुत से लोग नशीली चीज़ों का व्यवहार करते हैं और यह समझते हैं कि इससे स्वास्थ्य की वृद्धि होती है, पर यह उनकी भूल है। वास्तव में नशीली वस्तुओं से मनुष्य की वासनाएं बढ़ती हैं और संयम अपना जाता रहता है। नशे की हालत में मनुष्य में वासनाओं को दमन करने की शक्ति बिल्कुल नहीं रहती। साधारण दशा में मनुष्य वासनाओं के आक्रमण का मुकाबला कर भी सकता है, किन्तु नशे की हालत में तो वह स्वयं उनके वशीभूत हो जाता है। इसलिए काम-वासनाओं के दमन के लिए नशीली चीज़ों का बहिष्कार अत्यावश्यक है। यह सब हम

अपने शरीर की ही सहायता से कर सकते हैं। अब हम इस पर विचार करते हैं कि मतिष्क की सहायता से क्या हो सकता है ?

बुरी बातों के मन में आने का प्रभाव शरीर पर अवश्य पड़ता है, परन्तु इस सिद्धान्त का ख्याल न कर आजकल नवयुवक लोग अधिकतर गन्दी कथाओं और घृणित मज़ाक में ही लिप्त रहते हैं। इनको ध्यान में रखना चाहिए कि गन्दी बातें यदि कही और सुनी जायंगी तो व्यवहार में भी उनसे बचा नहीं जा सकता।

इसके अतिरिक्त एक उपाय और है। जिस मनुष्य का जीवन स्वास्थ्यकर और पवित्र विचारों की ओर लगा रहता है, अर्थात् जो खेल-कूद और पवित्र दिल बहलाव की चीज़ों में अधिक दिलचस्पी रखता है, जो उसी प्रकार के विषयों पर बातचीत करता है, जो वास्तव में बातें करने योग्य हैं, और वे ही पुस्तकें पढ़ता है जिन्हें पढ़ना चाहिए, तो उस मनुष्य से बुरे विचार और बुरी भावनाएं कोसों दूर रहेंगी और उसे कुवासनाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए बहुत ज़बर्दस्त युद्ध न करना पड़ेगा। यह उपाय ऐसा है जिसे प्रत्येक मनुष्य कर सकता है और जो इसे न करे तो इसका सारा दोष किसी और पर नहीं बल्कि उसी पर होगा।

अन्त में मुझे एक बात और कहनी है और वह यह कि बहुत से लोग यह कहा करते हैं कि—'अवस्था का झुकाव और प्रकृति की लहरों का वेग इतना बलशाली होता है कि वासनाओं का आक्रमण मनुष्य पर होता ही है और वह उसे अपनी ओर खींच ही ले जाता है।' यह सारा दोष वासनाओं के ही माथे मँढ़ते हैं। यह हो सकता है, परन्तु हमें ऐसी बातों को उत्तेजन नहीं देना चाहिए। हमें विचार यह करना चाहिए कि जीवन युद्धों का समूह है और सब से कठिन युद्ध हमें जिससे करना है वह बुरी वासनाएं ही हैं।

इसलिए कठिनाइयों का सामना करके भी हमें बुरी वासनाओं से बचना चाहिये । यह याद रहे कि मस्तिष्क और स्वस्थ शरीर ईश्वर की बड़ी भारी देन है और जिसके पास ये दोनों हैं उसके पास तो बुरी वासनाओं के दमन के लिए सर्वोत्तम अस्त्र आप ही मौजूद है।

(अनुवादित)

[मूल लेखक—डॉ० बोयन पार्टिङ्गटन]

विवाह के अनन्तर शय्या विधान*



परिचय-विधि

तथा

दूसरी तीसरी रात्रि के कर्म

(कन्दर्पचूड़ामणि से)

शयनमथो कुर्यातामक्षारलवणभोजनावेतौ ।
यत मानसौ त्र्यहं किल संचरितं ब्रह्मचर्यं च ॥

तीन दिन पहिले से क्षारलवण[1] का भोजन न कर, एकाग्रचित हो ब्रह्मचर्य में स्थित, पति पत्नी विवाह के अनन्तर शय्या विधान[2] करें।

---

*जब तक पति पत्नी एक दूसरे के प्रेम में न फँस जायँ और जब तक दोनों यह न समझें कि बिना शारीरिक सम्मेलन के चैन नहीं तब तक शय्याविधान या इस तरह के किसी भी आयोजन के मैं विरुद्ध हूँ। मैंने इस विधान को फिर भी उद्धृत करना ज़रूरी समझा है, उन लोगों के लिए जो मेरी बातों से सहमत न हों, साथ ही इसलिए भी कि पति-गण आचार्यों के मत से भी परिचित हो जायँ।

(१) "ताता, तीता, आमला, तीनों धात विनाश" यह एक पुरानी कहावत है। कृ० का० मा०

(२) "मैं ऊपर ही कह चुका हूं कि मैं किसी भी विधान के वरुद्ध हूँ" मेरी समझ में आदत, विधान, रीति और रस्म से पुत्रोत्पा-

तूर्येण सह निगदितं सप्ताहं चैव मङ्गलस्थानम् ।
भूषण कृति सहभुक्ती प्रेक्षा सम्बन्धि पूजा च ॥

वाद्य के साथ सात दिन तक मंगल करें और सब लोग भूषण पहन कर साथ भोजन, तमाशा नृत्य और सम्बन्धियों की पूजा भी करें।

मृदुभिरुपायैरेता तस्मिन्निशि निर्जने वशीकर्तुम् ।
आदध्यादुद्यममिह मूकवदासीत केषाञ्चित् ॥

उसी रात्रि में नम्रता से कन्या को वश करने के लिए एकान्त स्थान में उद्योग करे और किसी आचार्य का मत है कि मूक* के तुल्य रहे।

स्तम्भीभावे भर्तुः सम्मतिरिहनास्तिवाभ्रवीयानाम् ।
अहमेव पश्यन्ती गाढं दूयेत सा यस्मात् ॥

पति कामवासना को चरितार्थ न करे, वाभ्रवीयाचार्य इस मत के विरुद्ध हैं, उनका कहना है कि वधू पति के तीन दिन तक इन बातों का आयोजन न करने से दुःखी होती है।

परिभवति षण्ढामिवत स्तंभत्वं यस्त्र्यंह समातनुते ।
तस्मादुपक्रमीस्यात् स्तभं नारोचयेत्तत्र ॥

जो पुरुष तीन दिन पर्यन्त कामवासना की तृप्ति में अग्रसर नहीं होता, स्त्री उसका नपुंसक के तुल्य तिरस्कार करती है, इससे पुरुष का अग्रसर होना उचित है, अनारम्भ उचित नहीं है।

दन हानिकर है। हाँ गर्भाधान के पहिले उसकी उत्कृष्ट कामना और उसके लिए पतिपत्नी का सब प्रकार से प्रसन्नता पूर्वक तैयार होना ज़रूर आवश्यक है। कृ० का० मा०

*मेरी समझ में यह आदेश सर्वथा ग़लत है, वात्स्यायन ने भी रस भरी, प्रेममय बात करने का आदेश किया है। हाँ ब्रह्मचर्य का भग नहीं होना चाहिए। कृ० का० मा०

एवं स्याद्विश्रम्भः कन्याया न व्रतस्य भङ्गश्च ।
सति यंत्रे व्रतभंग स्वीयायामामनन्त्यार्याः ॥

यदि शीघ्र ही पति इन बातों की ओर रुजू होगा तो कन्या का उसमें विश्वास बढ़ेगा, इससे व्रत भंग भी न होगा, क्योंकि आचार्य लोग स्वकीया के साथ अग्रसर न होने को ही व्रतभङ्ग मानते हैं।

साम्ना प्रयोजयेदथ यंत्र परतस्त्रिरात्रतः प्रसभम् ।
कुसुमसमाना तासां सुकुमारोपक्रमेऽभिरुचिः ॥
प्रसभं कृतविश्वासैर्यन्त्रया दीपमानमारायाः ।
नियतो भवति द्वेषोऽयत्ने पुरुषे तथा तासाम् ।

उपर्युक्त आलिंगनादि कर्म के पश्चात् यह विश्वास होने पर कि कन्या में कामदेव अभी दीपमान अर्थात् प्रज्वलित नहीं हुआ है रति के लिए हठ करने में निश्चय द्वेष होता है, साथ ही कामुकी कन्याओं को रति विषयक यत्न रहित पुरुष में द्वेष होता है, इससे कन्या को इच्छा होने पर ही रतिसुख की आशा करे, यह फलितार्थ हुआ।

युक्त्यापि यतः प्रसरं स्वयमुपलभते विशेत्तु तेनैव ।
यौवनतरलितभावं विन्द्यादस्याः प्रयत्नेन ॥

.... न शीघ्रता करे, न शान्त रहे, नायिका के भावानुकूल आचरण करे।

कृत्वा सन्नतिमस्या निज कर कमलेन पाणिकमलस्य ।
तत्र च सिद्धामेतां परिरम्भे साधयेद्बालाम् ॥

नायक स्वकीय कर कमलों से नायिका के हस्तकमलों को नम्र करके ऐसी सिद्धि वाला को आलिंगन में समाधान करे।

सह्यत्वात परिरम्भे दद्याद्वदनेन वासताम्बूलम् ।
अप्रतिपत्तौ तत्र च सान्त्वनवाक्यैरिमा शपथै ॥

प्रतियाचनैः प्रयत्नैः चरणाम्बुजयोः सरोजरम्याक्ष्याः ।
संग्राहयेदिदं खलु तामुचित मध्यकार्येऽपि ॥

कमल के सदृश सुन्दर नेत्रवाली नायिका के चरण कमल पर प्रार्थना पूर्वक गिरकर नायिका को ताम्बूल ग्रहण करावे, यह मध्यमा में भी उचित है।

आस्यमुदास्यावसरे मृदुचुंबनमाचरेदत्रानुचितम् ।
आलपयेत्तु सिद्धा चुम्बन परिरम्भयोरुभयोः ॥

समुचित काल में नायक नायिका का मुख उठा कर उचित कोमल चुम्बन करे और सिद्ध नायिका को चुम्बन और आलिंगन करते हुए वार्ता करावे।

आकर्णनार्थमस्याः परिमित वर्णामिताभिधेय च ।
किंचित्पृच्छेत्कामी रहित इवै तस्य बोधेन ॥

कामी पुरुष नायिका के थोड़े अक्षर वाले और अधिक अर्थ वाले वचन को सुनने के लिए इसको न समझता हुआ सा कुछ प्रश्न करे*।

पृष्ट्वा सकृदभिधत्ते यदि नेयं तदा सकृच्चरेत्पृच्छाम् ।
युक्त्या सात्वनया खलुनोद्वेगः स्याद्यथातस्याः ॥

यदि प्रश्न की गयी नायिका उत्तर देवे तो नायक एक वार सामभेद से पुनः प्रश्न करे जिसमें नायिका का मन उद्विग्न न होवै।

संश्लिष्टा नलिनाक्ष्यो निर्विण्णायाः शुभेत्तयारमणे।
विपहन्ते पतिवचनं नैव न दोषान्स्वयं ब्रुवते ॥

कमल के सदृश सुन्दर नेत्रवाली नायिका पति से आलिंगन किए जाने पर तत्वज्ञानादि हेतु से निर्वेद को प्राप्त होती है और

---

* उद्धत करने में मूल और टीका मैंने वैसी ही रहने दी है।
कु० का० मा०

पति के वचन को नहीं सहती भी उसके दोषों को स्वयं प्रकाश नहीं करती है।

निर्विंद्यमानताया प्रतिवचन साचरेच्छिर: कपैः।
कलहेनैव विदध्यात् कंप शिरसोऽपि पश्चात्ती ॥

नायिका निर्वेद को प्राप्त होने पर शिर को कंपाते हुए नायक के वचन का उत्तर देवे और वह शिर कंपाना कुछ कलह अर्थात् लड़ाई के साथ किया जावे।

इच्छसि मानेच्छसि वा रुचितोऽह्र तेऽथ वा न संरुचितः।
इति पृष्ट्वा व्यवतिष्ठेदचिरं वश्यः स्मरास्त्रस्य ॥
....
....

निर्विण्णे सति नाथे यत्स्यादन्यत्क्रमर्यंत पूर्णम्।
प्रब्रूयाद्विहसन्ती पश्येत्तिर्यंक् कदाचित्तम् ॥

पति के निर्वेद होने पर हास्य करती हुई नायिका गूढ़ार्थ वचन बोले और कभी कभी नायक की ओर तिरछे नेत्रों से देखें।

युक्ता तथा छुरितकैरुपरि कुच स्वर्णकुंभयोरुभयोः।
सद्यः स्पृशेदजस्रं निषयीभूतः स्मरास्त्रस्य ॥
प्रियया निवार्यमाणो नैवं कुर्याद्यदा परीरंभम्।
कुरुषे ममेति कथयन् परिरम्भ कारयेदेषः ॥
आलिंगन समये स्वं करकमल नाभिदेशपर्यन्तम्।
व्यावर्त्तयेत्प्रसार्य हि हरिणदृश शोभनाकार ॥
आरोप्य स्वोत्संगे कान्ता क्रमशोऽधिक ततोऽप्यधिकम्।
सोपक्रमता कलयेदतिपत्तौ भीषये ! देवम् ॥
दशनेन क्षतमधरे स्तन पृष्ठे नखरद तयो कुर्यात्।
कृत्या च स्वयमात्मनि सख्याः सविधे त्वया रचितम् ॥
कथयिष्यामि किमत्र त्व वक्षसि तासु जात हासासु।
एव प्रतारयेत्ता बाल प्रत्यायनैश्चैव ॥

उत्तर रात्रिष्वधिकं विश्रम्भे हस्तयोजनं रचयेत् ।
सर्वांगिकं च चुम्बनमासंगः स्याकरस्यैवम् ॥

....

....

इत्थं तस्याः कन्याभावं क्रमतो विधाय दूरेण ।
विगतोद्वेगं रचयेत भोगान् सोपक्रमः पुरुषः ॥
इत्थं चित्तानुगतो बालामिह साधु साधयेद्बहुभिः ।
उचितैरुपायैरेवं रागस्तस्याश्च विश्रम्भः ॥

इस प्रकार चित्तानुगत होकर बहुत उचित उपायों से कन्या को उत्तम प्रकार से साधन करे जिससे उसको प्रीति और विश्वास उत्पन्न होवे।

अत्यन्तमानुकूल्यं प्रतिकूलत्वं तथा च नात्यन्तम् ।
कन्या सिद्धौ हेतुस्तस्मान्मध्यस्थता युक्ता ॥

अत्यन्त अनुकूलता वा अत्यन्त प्रतिकूलता ठीक नहीं है, इससे कन्या सिद्धि में मध्यस्थता उचित है।

*सहसोपक्रान्तौ सा चित्ता विदुषां भयं तथा पीडाम् ।
उद्वेगं च द्वेषं च प्रथयेद्योषेति, शास्त्रार्थः ॥

हठ से आरम्भ करने पर वह कन्या चित्त के अभिप्राय के न जानने वाले पुरुषों से भय, पीड़ा, उद्वेग और द्वेष को प्रकाशित करती है यह शास्त्र का आशय है।

अति साध्व समातनुते रमणोद्वेगेन दूषिता बहुधा ।
पुरुषद्वेषं प्राप्ता विदिष्टा स्याद्भवात्परतः ॥

बहुत प्रकार के रमणके उद्वेग से दूषित कन्या भय को प्राप्त

---

*कोक ने रतिरहस्य में लिखा है:—
"सहसा वाप्युपक्रान्ता कन्याचित्तमविन्दता ।
भयमत्रासमुद्वेगम् सद्योद्वेषमचगच्छति" ॥

होती है और पुरुष के द्वेष से प्राप्त रति के पश्चात् आप भी नाराज़ हो जाती है।

एक मूर्ख से बलात्कार किये जाने पर बालिका भयभीत और त्रस्त हो जाती है और उसको वह घृणा की दृष्टि से देखने लगती है।

सा प्रीतियोगमप्राप्य तेनोद्वेगेन दूषिता ।
पुरुषद्वेषिणीवास्याद्विद्विष्टा वा ततोऽन्यगा ॥*

अथ परिचयसंभासणीयम्

जात परिचयातूष्णीं याचितमेतेन नागवल्यादि ।
अस्यान्तिके निदध्याद्बध्नीयान्दोत्तरीयेऽस्य ॥

इस प्रकार परिचय होने पर नायिका नायक के मांगे हुए पान इत्यादि वस्तु को चुपचाप उसके समीप रख देवे अथवा उसी के अंगोछा या रूमाल में बांध देवे।

---

*Then when she has not found a union full of love; she, being afflicted with despondency, becomes either a hater of man kind or; hating her own man has recourse to other man.

सुहागरात्रि सम्बन्धी वात्स्यायन के उपदेश

तस्मिन्नेताम् निशि विजने मृदुभिरुपचारैरुपक्रमेत ।

इस रात्रि में पति पत्नी की अधिक से अधिक ख़ातिर करे और उससे मीठी मीठी बातें करे ।

उपक्रमेत विस्रम्भयेच्च न तु ब्रह्मचर्यमतिवर्तेत् ।

पति विश्वास भाजन बनने की चेष्टा करे किन्तु अपने ब्रह्मचर्य व्रत का भङ्ग कदापि न करे ।

*उपक्रममाणाश्च न प्रसह्य किंचिदाचरेत ।
कुसुमसधर्माणो हि योषितः सुकुमारोपक्रमाः ॥

बलपूर्वक या पाशविक शक्ति के सहारे कोई भी कार्य न करे, स्त्रियां स्वभाव से ही फूलों के समान होती हैं इसलिए बहुत ही आदर, स्नेह और नम्रता से ही उनके साथ व्यवहार करे । अगर एक अनजान पति उनके साथ पशुता से व्यवहार करेगा तो वह उससे और उसकी प्रेम की बातों से दूर भागेंगी, उनको उससे प्रीति न होगी, उस में विश्वास न होगा । नवपत्नियों के साथ इन्हीं कारणों से बहुत ही स्नेह, प्रेम, नम्रता और मृदुता का व्यवहार करना चाहिये ।

---

*He should not attempt to do anything by force. For woman, are by nature like flowers and such should be approached very tenderly If they are handled roughly during the first attempt by those who are unacquainted with them, they would become averse to such amours and therefore brides should he approached with care, love and kind words

*आत्मानुरागं दर्शयेत्। मनोरथाश्च पूर्वकालिकाननुवर्णयेत्।
आयत्या च तदानुकूल्येन प्रवृत्तिं प्रतिजानीयात् ॥
एवं चित्तानुगो बालामुपायेन प्रसाधयेत्
तथास्य सानुरक्ता च सुविश्रब्धा प्रजायते ॥

उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट करे, उसके संबन्ध की हृदगत अपनी आकांक्षाओं का उसमे वर्णन करे, उसे यह विश्वास दिलाए कि उस की इच्छा के विरुद्ध वह कभी भी आचरण नहीं करेगा। उसकी कामनाओं का आदर करता हुआ उसका विश्वास-भाजन बने, तब वह उसका विश्वास और उससे प्रेम करने लगेगी।

---

*He should reveal his love towards her, and describe what expectation he had regarding her before their marriage and should promise that he will act in future in conformity with her wishes He should win her by intelligently following her intention and then she will repose confidence in him and get firmly attached to him.

अंग्रेज़ विशेषज्ञों का मत

"So brutal are men that they very often drive their chaste and ignorant young wives from them for ever by raping them on their bridal night."

पुरुष ऐसे पशु होते हैं कि प्रायः वे अपनी पवित्र, अज्ञान पत्नियों के साथ सुहागरात्रि में बलात्कार कर उनके हृदय को सदा के लिए अपने से दूर कर देते हैं।

"Moderation should be the husband's watchword on this night of all nights He should be very careful not to arouse in her a feeling of exhaustion or disgust."

"He should make every night of love a tender conquest, a swift, noble comprehension If he can conquer a woman by making her heart and soul her own by taking her verginity, every times he takes her, yet making their union, a pure sacrament of love and by making her his sweet comrade."

"The man should not forget, in his passion, the need for soothing words of love, of whispered outpourings of his heart and soul He should tell her how dear and precious she is to him, how that if he is taking from her, vergin honour, he is giving his own life into her keeping and has given her the protection of his name; how that he will always loves succour her how that although the law, the world, now gives him certain previleges (let him eschew for all time the odious word rights !) he will claim nothing from her that she

does not concede him gladly. Let him whisper through the sheltering darkness, clasping her lovely soft form, close to his breast with tender, loving arms, if she under-stands what he asks of her. If she is a normal womon, she will whisper back that she loves him."

W N. Willis

. . ...on the contrary, the process should be a most gradual one It is only by gradudal process that the beginings of a happy married life are secured It is certain that the future married life is very much coloured by these early days of marriage and if later on times of misunderstanding or doubt come between husband and wife, she consciously or unconsciously, thinks of the early days of marriage If in these days she had any reason for resentment the doubting is apt to turn to a lasting bitterness

Isabel E. Hutton, M D.

चन्द्रकलानिरूपणम्

"अंगुष्ठे पद-गुल्फ-जानु-जघने, नाभौ च वक्षःस्तने,
कक्षा कंठ कपोल-दन्तवसने, नेत्रालिके मूर्द्धनि ।
शुक्ला शुक्लविभागतो मृगदृशामङ्गेष्व नङ्गस्थिती-
रूर्ध्वाधोगमनेन वामपदतः पक्षद्वये लक्षयेत् ॥"

तेन रूपेण केशा कर्षणाद्युच्यंते

दृढं गृह्णन्ति क चान ललाटनयने चुम्बन्ति दन्तच्छदं,
दन्तोष्ठेन निपीडयन्ति, बहुश श्चुम्बन्ति गंडस्थलीम् ।
कक्षा कंठतटं लिखन्ति नखरैर्घ्नन्ति गाढं स्तनौ,
मुष्ट्या वक्षसि ताडयन्ति, ददते नाभौ चपेटाशनैः ॥
कुर्वन्ति स्मरमंदिरे करिकरक्रीड़ा स्त्रियो जानुनी,
गुल्फांगुष्ठपदानि च प्रतिमुहुर्निघ्नन्ति तैरात्मनः ।
इत्येव कलयन्ति ये शशिकला मालिङ्गय मज्जन्ति ते,
शीता शूपलपुत्रिका शशिकरस्पृष्टामिव प्रेयसीम् ॥
एकारौकारयुक्ता हरिहरजहराः पञ्चबाणाः स्मरस्य,
ख्याता लक्ष्याण्यमीषा हृदयकुचदृशो मूर्धगुह्ये क्रमेण ।
मर्मस्वेतेषु भूयो निजनयनधनुः प्रेरितैस्तैः पतद्भिः,
स्यन्दन्ते सुन्दरीणाज्वलदनलनिभैर्बिन्दवः कामवाराम् ॥
संक्षेपादिति नन्दिकेश्वर मतात्तत्वं किमप्युद्धृत,
गोणीपुत्रक भाषितोऽयमधुना सङ्क्षिप्यते विस्तरः ।
मूर्द्धोरः स्थलवामदक्षिणकरे वक्षोरुहोरुद्वये,
नाभी गुह्यललाटजाठरकटी पृष्ठेषु तिष्ठत्यसौ ॥

कला श्रेणिषु च प्रतिपदं प्रारभ्य कृष्णामथ,
श्वेतायाः प्रभृति क्रमेण मदनो मूर्द्धानमारोहति ।
अङ्गेष्वेषु मृगीदृशां मनसिज प्रस्तावना पद्धति,
मात्रापोढय चिन्तयन्ति बहलज्योतिः स्फुलिङ्गा कृतीः ॥

(रतिरहस्य)



स्त्रीणाम् द्रावणोपाय:

स्त्री युगों से अपनी वासनाओं को दमन करती करती दमन की आदी होगई है। वह गंभीर भी अधिक होती है, सहसा उत्तेजित नहीं होती और जब उत्तेजित नहीं होती तो तृप्ति भी नहीं लाभ करती। पुरुष स्वभावतः सक्रिय होने के कारण तृप्त लाभ करता है। जिस स्त्री को तृप्ति नहीं लाभ हुआ करती, उसका जीवन ही उसे भारी मालूम पड़ता है, वह प्रसन्न और सन्तुष्ट नहीं रहती, अक्सर हिस्टीरिया तथा अन्य इसी प्रकार के रोगों का वह शिकार रहती है। यही नहीं, तृप्ति लाभ न करने से वह पुरुष में श्रद्धा नहीं रखती, उससे प्रेम नहीं करती और इस तरह से वैवाहिक जीवन उसका असन्तोष और कलह-प्रधान हो जाता है। स्त्री को तृप्तिलाभ हो, इसीलिए प्राचीन आचार्यों ने इसके लिए कितने ही विधान लिखे हैं। कामसूत्र, अनङ्गरंग, नागर-सर्वस्व, रतिरहस्य आदि ग्रन्थ इसकी शिक्षा देने ही के लिए बनाये गये। पुरुष स्त्री को सन्तुष्ट कर सके, इन ग्रन्थों की रचना का उद्देश्य ही यही है। तत्व इतना ही है कि पुरुष शीघ्र ही शान्त हो जाता है। इसलिए वह स्त्री को वाह्य उपचारों से ही कामातुरा और उत्तेजित करले और जब स्त्री भी विह्वला हो जाय तब रतिकर्म आरम्भ करे, जिसमें दोनों को तुष्टि बराबर से मिले। स्त्री किस तरह से कामातुर और विह्वला की जाय इसके अनेक उपाय कहे गये हैं। कहा गया है कि स्त्री के शरीर के अङ्गों में चन्द्रकला के अनुसार यत्र तत्र काम का निवास होता है, और इस तरह से उन अङ्ग से स्त्री में कामोद्दीपन किया जा सकता है। स्त्री के शरीर में कुछ नाड़ियाँ भी हैं जिनसे इसी

इष्ट की सिद्धि होती है। इसलिए हम प्राचीन आचार्यों के चन्द्रकला संबन्धी मत को केवल यहाँ पर उद्धृत कर देते हैं।

कंठे संश्लिष्य गाढं शिरसि विदधतश्चुम्बमोष्ठौ रदाग्रे-
रापीड्याचुम्ब्यगण्डौ विरचितपुलाः पृष्ठतः पार्श्वयोश्च।
दत्वा सूक्ष्मं नखाङ्क मृदुकरजमुखैरङ्कयन्तो नितम्ब,
प्राग्भारं मन्दसीत्काः प्रतिपदि युवतीं नागरा द्रावयन्ति॥

स्तनमिलनसुखार्तौ गण्डपालीं विचुम्बन्
नयनकुचयुग चाकृष्य पार्श्वं नखाग्रैः
अधरमवलिहन् दोर्मूल चञ्चन्नखाग्रः
कृतघन परिरम्भो द्रावयेदह्नि युग्मे
तृतीयाया श्लिष्यन्निविड़तममासाद्य पुलकं
मुहुर्वाहोमूले मृदुलिखित पार्श्वं कररुहैः
भुजापीड कंठे दशनवसना स्वादतरलः
स्तनो पान्तारब्धच्छुरितमबला विह्वलयति
चतुर्थ्यामालिङ्गय स्फुटमलघसपीड़ितकुचा
दशन्तो विम्बोष्ठ नखलिखितवामोरुफलका:
ददन्तो दोर्मूलेद्दूरितमस कुञ्जीरजद्दशः
शरीरे क्रीडन्ति स्मररस नदीनिर्झरजलैः
पचम्या चिकुरानदक्षिणकरेणाकृष्य दष्ट्वाऽधर
दत्वा चूचुकयोः सखेल पुलकं चुम्बेत्कुचौ भावतः।
षष्ठ्या गाढ़विगूढ़गात्रमधर दष्ट्वाऽथ नाभीतले
प्रारब्धच्छुधुरितो लिखेत्कररुहै रुर्वोस्तटी रुन्मदः॥

मृदित मदनवासो दन्तवासो लिहानः
करजकलित कठो पान्तवक्षः कपोलः
कृतघन परिरम्भः सम्भृतानङ्गरङ्गो
गमयति मृदुभाव भामिनी मन्हिभानौः
अष्टम्या परिरम्य कठमथकुक्षाभि नखैरङ्कयन्

देष्ठौष्ठः पुलकं ददन कुचतटीं चुम्बेद्विमृद्योचके:
नाभी मूलविलोलपाणिरधर दृष्ट्वा स्तनौ पीडयन
मृद्रीयाद मदनालयं च विलिखन पार्थं नवम्या नखैः
ललाटमाचुम्ब्य नखैर्लिखन्तः शिरोधरा आमितवामहस्ताः
कटिस्तनेरः स्थल पृष्ठमध्ये स्मरं दशम्या प्रतिबोधयन्ति
एकादश्या करजकलित ग्रीवमालिङ्ग्य गाढ
पाय पाय दशनवसन किंचिदालीढलोलम्
घात घातं हृदि सहसितं मन्मथागार मुद्रा
भङ्ग क्रीडातरलितकरा कामिनी द्रावयन्ति
द्वादश्या परिरम्य गाढ़मसच्चुम्बन् कपोलौ दृशो
रुन्मेश विदधीत सीकृतिनुशोव्यादष्ट दन्तच्छदः
चुम्बनगडतटीं मनोभवतियौ मृन्दत् ससीक्त कुचौ
कान्ता द्रावयतिद्रुते कररुहैर्भिन्दनूशनैः कन्धराम्
कन्दर्पारितियौ विचुम्बितदृशो दोमूंल चञ्चन्नखाः
कामागारनिवेशितद्विपकराः क्रीडन्ति कान्ता तनौ
दर्शे पूर्णतियौ च नर्तितनखाः स्कन्धस्थली रङ्गतोऽ
नङ्गागार चुचूलिकाञ्चितकराः कुर्युः स्त्रिय विह्वलाम् ॥

(इति रतिरहस्ये)

मदनोदय

(नागरसर्वस्व से

पादाग्रजङ्घोरुषु योनिनाभिकुक्षौ कुचे हस्ततले गले च
ओष्ठे कपोल नयने श्रुतौ च शीर्षे तथा सर्वशरीर देशे
स्थानेषु चैतेषु तिथिक्रमेण* नितम्बिनीना समुदेतिकामः
वामाङ्गभागो परि शुक्लपक्षे कृष्णे च सव्यावयेत तथैव
अगुष्ठमूलात्प्रभृतिक्रमेण यावच्छिखा मूलमुपैति कामः
कृष्णे तु पक्षे चरणाग्रदेश प्रयाति नित्य शिरसस्तथैव
अंगुष्ठमूलेषु अ, आ च जङ्घा युगे, इ ऊरावपि, ई च योनौ
नाभ्या उ, ऊ कुक्षतटे, कुचे तथा ऌ च कंठदेशे
ॡ चाधरे, ए सततं कपोले, नेत्रे च ऐ, कर्ण युगे तथा ओ
शिखाश्रये औ कथितो रतज्ञैःसर्वाङ्गदेशे च सदैव अं अः
सर्वाङ्गदेशे मदनस्य वीज मिष्टाक्षरं सेन्दु सविन्दु शीर्षम्
वीजं शरच्चन्द्रकलावदातं सचोदयत्सूर्यनिभं प्रदीप्तम्
विभावयेत्तद्दयिता शरीरे वतो निरुन्मेश विलोचनायाः
(नितान्तनि स्यन्दितनोः प्रियायाः)

विहाय बाह्यान् विभवान् भवेयुः
मु (सु ?) खे निलीनानि षडिन्द्रियाणि
(तृप्तानि सर्वाणि भवन्ति तन्व्याः)

---

* तिथिक्रमेणत्यादि शुक्लप्रतिपदाया वामभागे पादाग्रे, शुक्ल द्वितीयाया दक्षिण कर्णेइत्यदि प्रकारेण व्युतक्रमेणेति बोध्यम् । हरिहरस्तु श्रृंगारदीपकाया शुक्लपक्षादि वैलक्षण्यनाह" रजोदर्शनमारभ्यं आपं च दशवासरम् शुक्लपक्ष इति ख्यात कृष्णपक्षस्तथोपरि" इति

इति चिन्तितमात्रेण स्त्रीणां तृप्तिः प्रजायते
विनाऽपियोनिलिङ्गाभ्याम् संसर्गेण वरानने

—:o:—

कर्णोरुपार्श्वत्रिक मस्तकेषु सचोदनीयाः करजेन नित्यम्
तृप्तिर्न तासां तु विपर्ययेण भवेत कदापीति वदन्ति धीराः
(नागरसर्वस्व)

स्त्री-शरीर की प्रधान नाड़ियों से पुत्र तथा पुत्री

(नागरसर्वस्व से)

सती चैवा सती संज्ञा सुभगा दुर्भगा तथा।
पुत्री दुहित्रिणी चेति षडेता मदनाड्किाः॥
योनिमात्रेऽपि सन्त्येताः कथिता मदनाड्किाः।
सती वामेऽसती सव्ये द्वे वराङ्गत्वचि स्मृते॥
किञ्चिदभ्यन्तरे चैव रन्ध्रे सव्यापसव्ययोः।
दुर्भगा सुभगा चैव द्वे नाड्यौ समुदाहृते॥
सर्वतोऽभ्यन्तरे चैव पार्श्वे स्मरातपत्रस्य वै।
वामे पुत्री*समाख्याता, दक्षिणेन दुहित्रिणी †॥
सती संचोदनाच्चैवा सतीरामा प्रकुप्यति।
असती चोदनान्नारी खिद्यते च सती सदा॥
सती संचोदनादेवसती हृष्यति निर्भरम्।
असती चोदनाच्चैवासती तुष्यति नित्यशः॥
सुभगा चोदनान्नारी सुभगा प्रियदर्श (र्शि)नी।
भवेत् स्निग्धाननाङ्गी च श्यामा पीनपयोधरा॥
दुर्भगा चोदनेनापि वनिता दुर्भगा भवेत्।
रुक्षा कृशा विवर्णाङ्गी जरारोगनिपीडिता॥
पुत्री संचोदनादेव प्रिया पुत्रवती भवेत्।
दुहित्री चोदनेनापि दुहिता जायते ध्रुवम्॥

---

* पुत्र देने वाली, † कन्या उत्पन्न करने वाली।

उभयोश्चोदनात्सूते क्लीवमेव न संशयः ।
निपुण चोदयेन्नारीं यदीच्छेद्धितमात्मनः ॥
सती कुचेऽसती कक्षे, सुभगौष्ठे च दुर्भगा ।
त्रिके तुण्डे स्थिता पुत्री, नितम्बे च दुहित्रिणी ॥
एवं सचोदिता नारी नान्यमिच्छति मानवम् ।
क्लीवोऽपि हृदयं सर्वं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥

संतान-प्राप्ति के उपाय

सन्तान प्राप्ति के लिए दुनियां पागल रहती है। पुरुष और स्त्री इस कामना के वशीभूत हो अच्छे और बुरे से बुरे कर्म करते हैं। अक्सर साधु, सन्त और वैद्यो से वे धोखा भी उठाते है। स्त्रियां पुत्रप्राप्ति के अर्थ लुच्चो के फेर में पड़कर अपने सतीत्व से भी हाथ धो बैठती हैं। हम इसीलिए यह बतला देना चाहते हैं कि सन्तान की प्राप्ति सर्वथा पति और पत्नी के अधीन है और साधु, सन्त, देवता, पीर, पैगंबर और वैद्य इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकते। जिनको सन्तान न होती हो उनक पवित्रता से ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी का जीवन वहन करना बहुत जरूरी है। अगर अंगों की बनावट ठीक है और रज और वीर्य दूषित नहीं तो सन्तान होगी और होगी, चाहे संसार भर के देवी देवता और मदारी पीर और पैगंबर इसके विरोध में अपनी सारी शक्ति ही क्यों न लगादें। हम वैद्य, डाक्टर या इस विषय के विद्वान् नहीं, किन्तु जो कुछ इस विषय के अध्ययन से हमारा अनुभव है उसको हम देशवासियों के लाभार्थ यहाँ पर लिख देना चाहते हैं। सन्तानार्थी के अगर सन्तान न हो तो उसे यही विश्वास रखना चाहिये कि पति पत्नियों के अङ्गों की बनावट में कोई गड़बड़ी है या उनके रज और वीर्य मे सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है। अङ्गों की बनावट में कोई गड़बड़ी है यह सहज में ही डाक्टर या लेडी डाक्टर की सहायता से जाना जा सकता है और उनसे उसका इलाज हो सकता है। रज और वीर्य के दोष का पता लगाना बहुत ही कठिन है। विशेषकर इस बात का कि किसकी हीनता से, पति या पत्नी की, सन्तान नहीं

हो रही है। यह जान लेने का हम एक सहज उपाय वतलाये देते हैं। शयनगृह के वाहर दो गमलों को अच्छी मिट्टी भरकर रख-देना चाहिये। गमलों पर कोई ऐसा निशान वना देना चाहिये जिससे यह मालूम हो जाय कि कौन पति का है कौन पत्नी का, इन दो गमलों मे धान या यव छितरा देने चाहिये और रात्रि की निद्रा के वाद पति और पत्नी सुवह उठकर पहिली लघुशङ्का अपने अपने गमले मे कर दिया करें। प्रायः पन्द्रह वीस दिन मे गमले में धान या यव के पेड़ पैदा होजाने चाहिये। जिसके गमले के पेड़ हरे भरे, लहलहाते हुए हों, उसके सम्वन्ध में समझ लेना चाहिए कि उसमें सन्तानोत्पत्ति की शक्ति है और उसमें कोई भी दोष नहीं है, जिसके गमले में पेड़ न पैदा हों, या पैदा हों तो कमज़ोर, पीले या छितरे वितरे हों उसके सम्वन्ध में समझना चाहिए कि उसमें कोई दोष है, उसका रज या वीर्य हीन है। यह निश्चित रूप से मालूम होजाने पर एक विद्वान् वैद्य, हकीम या डाक्टर से सहज में ही रज या वीर्य का दोष दूर कराया जा सकता है। इस वातपर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि धान या यव दोनों गमलों में विलकुल वरावर हों, तनिक भी कम या ज्यादे नहीं। "गर्भधारणोपायः" में गर्भधारण की अनेक विधियाँ भी लिख दी गई हैं। "नागरसर्वस्व" से हमने "सुतोदय" की अध्याय को भी उद्धृत कर दिया है।

सुतोदयं या पुत्र कैसे हों ?

सुतार्थे यद्धचिन्तानामपुत्राणां मनोमु वाम् ।
हिताय करुणासिन्धुः कथयामि सुतोदयम् ॥
रजः स्नानदिने दत्वा भित्तु संघात भोजनम्
शक्तितो दक्षिणा दत्वा प्रार्थयेद्वरमीप्सितम् ॥
तदौषधं पिवेतकान्ता तारापूजा पुरःसरम् ।
कान्तया सहितो रात्रौ पुत्रार्थी विधिमुच्चरेत् ॥
समसौख्य निरुन्नमेष (षः?) प्रयोगेषु यथा सुधीः ।
धैर्यवान्मोहनात्पूर्वं तारापादाम्बुजं स्मरेत् ॥
यदा सूर्येण मार्गेण देहे वहति मारुतः ।
सचोद्य नाडिका पुत्रीं पश्चान्मोहनमाचरेत् ॥
करवीर कुसुमैर्देवीमार्यतारा वरप्रदाम् ।
त्रिसन्ध्यं पूजयित्वा तु मत्र सप्तशतं जपेत् ॥
मंत्रस्त्वयम्—श्रों जम्भेमोहाय स्वाहा ।
पञ्च शिष्या (ज्ञा?) परो भूत्वा मासमेकं तथाऽर्चयन् ।
यशोद्योतकरं पुत्र लभते नात्र संशयः ॥
उषित्वा लक्ष्मणामूल तन्मात्राधिष्ठितं पिवेत् ॥
सुरभ्या एकवर्णायाः पयसा सवली (शवली?) कृतम् ।
तदौषधि प्रभावेन शुक्रवृद्धिः प्रजायते ।
पिण्डाच्छुक्राधिकात्पुत्रः कन्या रक्ताधिकाद्भवेत् ।
फलमूलाशनो भूत्वा पार्वती परमेश्वरौ ॥
त्रिसन्ध्यं पूजयित्वा तु मंत्रमेतज्जपेत्तदा ।
श्रों नमो भगवते महेश्वराय नमः प्रजाजननाय स्वाहा ।

परदाराभिगमन मद्यमांसादि भोजनम् ।
मिथ्याभिलपन हास्य मान क्रोध च वर्जयेत् ॥
तदा स्नात्वा सचैलस्तु सुधौत वसन कृती ।
मन्त्रमेत जपेन्नित्य न निद्रा समुदाहरेत् ।
हेमतारक्तताम्राणि एकीकृत्य सुसर्पिषा ।
दातव्य लेहनं स्त्रीणाञ्चेत्रशुद्धिस्तथा भवेत् ।
शेष तु पूर्ववत्कुर्वन् कृतार्थो नियत भवेत् ।
सत्पुत्रालोकनात्यन्त प्रीतिस्निमितलोचन. ॥

गर्भधारणोपायः

ऋतु दिवसे घृतसहित पीत्वा नवनागकेसरस्य रजः
दुग्धमनुपीय रमणी रमणगता गर्भिणी भवति

मूलमपि लक्ष्मणायाः आज्येनाऽज्येन नासिका पीतम्
तण्डुलजलेन पीता ददाति पुत्रं जटामासी

गौरेकवर्णभाजः पयसा वन्ध्यापि धारयेद्गर्भम्
पीत्वा केकिशिखाया पुत्रञ्जीवस्य वा मूलम्

पीत्वाऽर्जुनस्य पयसा रजविस्नाता च लक्ष्मणा मूलम्
अनक्षालित शाली भक्तं भुक्त्वा सुतं लभते

(रतिरहस्य)

बाँझ की परीक्षा*

Let the woman sit, whilst she is fasting, on a chair or stool with an opening in the seat. Cover this opening with a napkin. Put under the chair a chafing-dish in which there is a fire incense of gum, sandarach or costus or some other perfume, like musk or aloes wood. The woman should close her mouth and nostrils before these things are thrown into the fire and if it be seen that the smoke of these perfumes comes out of the nostrils and mouth of the woman, she is not sterile, if no smoke is seen she is sterile.

When you would know if the woman will become pregnant again, take a clove of garlic, wrap it in a small piece of wool and insert it in the woman's vagina when she

goes to bed The next morning if her mouth smell of garlic she will concieve again, if not, then never.

– Sterility may not be in a woman

And to determine in which of thel two (husband or the wife) the fault lies put the urine of each in a separate vase, being careful to distinguish which is which and put a lettuce covered with green leaves into each and place the vase in the sun The next day one of the roots will be found dying. The urine of the impotent person being potent enough to kill the root.

बाजीकरणं बलीकरणम्

नागबलां, सबलामथ शतावरी वानरीं समं पयसा।
गोक्षुरके क्षुरके निशिनिपीय रतिमल्लतामेति ॥
मधुकस्य कर्षमेकं सहितं तुल्येन सर्पिषा मधुना।
लीढ्वानुपीय दुग्धं निधुवनशक्तिं परां धत्ते ॥
दशगुण दुग्धे पक्व शतावरी गर्भितं च घृतमश्नन्।
मागधिकामधुसहितं सशर्करं भवति रतिमल्लः ॥
सतिलं गोक्षुरचूर्णं छागीक्षीरेण साधितं मधुना।
सहपीत सप्तहाच्छमयति षण्ढत्व मचिरेण ॥

कामुक—चूर्ण

समुद्रसोख	६ मासा
मोचरस	६ मासा
अकरकरहा	३ मासा
तुख्मरेहाँ	२ तोला
पीपल की लाख	३ मासा
अजवायन खुरासानी	६ मासा
जायफल	३ मासा
जावत्री	३ मासा
लौंग	३ मासा
बड़ा गोखरू	३ मासा
तुलसी की मंजरी	४ मासा

अलग अलग जितनी अधिक यह पीसी जायँगी चूर्ण उतना ही अधिक अच्छा होगा। मात्रा ३ मासा सुबह, शाम आधसेर

दुग्ध के साथ। इस चूर्ण को और भी तेज बनाने की इच्छा हो तो इसमे एक तोला बरगद का दुग्ध मिला देना चाहिये। औषधि का सेवन शीतकाल में ही होना चाहिये और इस समय दूध अधिक से अधिक पीना चाहिये।

पश्चिमीय❋

R. Ol. Phosphorat ℥ j

Ol Morrhuae ℥ VI j

A tea spoonful gradually increased for a dose.

Phosphorized oil 1 ounce.

Cod Liver oil 7 ounces.

(The Phosphorized oil is Prepared by adding six grains of phosphorus to an ounce of almond oil)

Phosphorus Pills.

A pill containing $\frac{1}{33}$ grains of phosphorous to be taken 3 times day.

Preparation

Melt 600 grains of suet in a stoppered bottle capable of holding twice the quantity Add to this six grains of phosphorous and when dissolved, agitate the mixture till it is solid Divide it into 3 grain pills and cover each pill with gelatine. Each pill contains $\frac{1}{33}$ grains of phosphorous

---

❋किसी डाक्टर को भी यह नुस्खे सहसा मालूम नहीं होंगे। किन्तु यह अनुभूत हैं और बहुत ही लाभकर हैं फिर भी विद्वान् डाक्टरों से अनुमति लेकर ही इनका व्यवहार करना चाहिये बिना उनकी अनुमति के कदापि नहीं। कृ० का० मा०

रतिमल्लता प्राप्ति का उपाय

के लिए औषधियों के विज्ञापन बहुत छपा करते हैं। अधिकतर इन औषधियों में मादकवस्तु, अफीम या ऐसे ही हानिकर पदार्थों का मिश्रण रहता है। वाजीकरण, स्तम्भन सभी की औषधियाँ मिला करती हैं युवकों को इन से सदा दूर रहना चाहिये। पैसा तो गाँठ का जाता ही है, इनसे अगर यह ठीक नहीं है तो स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचती है। जो युवक रतिमल्लता प्राप्त करना चाहते हों, या जो कमजोर हों, और पत्नी को सन्तुष्ट करने में असमर्थ हों उनके लिए संसार की स्त्रियों के मदन-भंजन का उपाय यह है कि वे किसी योगी से उपदेश लेकर "अश्विनीमुद्रा" को सिद्ध कर लें, कम से कम इतना अभ्यास करलें कि इच्छा होते ही वह अपनी अपान-वायु और प्राण-वायु को एक दूसरे से अलग रख सकें। यह अभ्यास कठिन नहीं है, प्राय. एक वर्ष के अच्छे, अभ्यास में यह हो सकेगा किन्तु इसकी सिद्धि होजाने पर मनुष्य "स्त्री-जित" होजाता है।

स्त्रियों के विराग के कारण

दारिद्र्याद सहिष्णुता मलिनता कार्पण्यकालाऽज्ञता ।

पारुष्यादतिनिष्ठुरात् प्रणयिनो भूपानिषेधादपि ॥

मिथ्यादोषविशङ्कनादतिशयोद्योगाद्वियोगात्तथा ।

कार्कश्याद्वपुषो व्रजन्ति नियतं वैराग्यमुच्चैः स्त्रिय ॥

नैन पश्यतिनास्यनन्दति सुहृन्मित्रे प्रतीपस्थिति-

योगे सीदतिहृष्यतीव विरहे माण्ठ्यांनन चुम्बिता ॥

नास्मादिच्छति मानमीर्ष्यति वचः प्रत्युत्तर नार्प्यये-

त्स्पर्शादुद्विजते स्वपित्युपगता शैय्या विरक्ता सती ॥



नारी वशीकरणम्

आसीने लालयेद्वाला तरुणीं शयने तथा।
उत्थिते चाभिरूढ़ा तु लालनं त्रिविधं मतम्॥
मोहनं नारमेत्तावाद्यावलोत्कण्ठिता प्रिया।
अन्यथा तत्सुखोच्छित्तिरशीतेऽर्ककरादिव॥
नाभिहृत्कंठदेशेषु दधत् श्वास च यः क्रमात्।
कामोऽहं भावयेत् कामी गायत्री* सप्तधा जपेत्॥
व्याजेन चुम्बनादीनामुच्छ्वास पाययेत प्रियाम।
तेन सा वशमायाति न तत्यसतु स्वयं पिबेत्॥

नारीवशीकरण, कान्ता वशीकरणम्, सर्वजनवशीकरणम् के कितने ही उपाय कामसूत्र, अनङ्गरङ्ग, रतिरहस्य और नागरसर्वस्व में लिखे हैं, किन्तु अधिकतर उनमें गन्दे हैं या उनमें ऐसे पदार्थों का उपयोग है, जो सहसा मिलते नहीं ऐसी दशा में उनके सबन्ध में कुछ भी कह सकना कठिन है। हमने उपर्युक्त अंश "नागरसर्वस्व" से दे दिया है, केवल नमूने की भाति और इसलिए भी क्योंकि इसमें कुछ तथ्य भी है। अन्तिम श्लोक बहुत ही लाभप्रद है, साथ ही सरल है इसका अर्थ यह है कि नायक को चाहिये कि अपने मुख का पान खिलाने के मिस अपना उच्छ्वास प्रिया को पिलादे, खुद उसका उच्छ्वास कभी न पिये। सुनते हैं प्रवीण वेश्याएं इस प्रयोग को बहुत करती हैं।

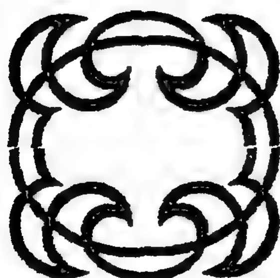
---

*गायत्री तथा—ओं नमो मनो भवाय विद्महे कन्दर्पाय धीमहि तन्न: कामः प्रचोदयात्।

"कह नहीं सकते ठीक कहां तक है किन्तु केवल पाठकों को यह दिखाने के लिए कि हमारे पूर्वजों ने इन विषयों के संबन्ध में कितनी खोज की थी, हम नारी वशीकरण सबन्धी "रति रहस्य" से यह श्लोक उद्धृत किये देते हैं:—

लज्जावन्ती सहदेवी घीकुमार गोरोचनोद्भवन्चूर्णम् ।
ताम्बूलेन विकीर्ण नार्या परम वशीकरणम् ॥"

कृ० का० मा



स्वरोदय और स्वास्थ्य ।

सृष्टि की रचना में जो तत्व कार्य कर रहे हैं वे सर्वत्र एक से हैं। एक ही प्रकार के नियमों के आधार पर जगत् के स्रष्टा ने सृष्टि रचना की है। जड़ तथा चेतन दोनों जगत् उन्हीं नियमों तथा मूलतत्वों के विकास हैं। पृथ्वी, सूर्य तथा अन्तरिक्षस्थ तारा मण्डल एवं च्यूंटी, मच्छर में एक ही स्रष्टा के क़ानून दिखलाई देते हैं। तभी प्राचीन ऋषि, महर्षि, संसार के अध्ययन के विशाल कार्य का 'स्वाध्याय अपने अध्ययन के विशाल कार्य का 'स्वाध्ययन अपने अध्ययन से प्रारम्भ करते थे। अपने को पढ़ लिया तो जगत् का पाठ होगया। उनकी प्रति दिन की भाषा में 'जो ब्रह्माण्डे सोई पिण्डे, सरीखे वाक्य आम तौर से बोले जाते थे। स्वामी विवेकानन्द एक बार समाधि से उठे और एकदम बोल पड़े 'मैंने परमाणु में विश्व को देख लिया है' इसी कारण से कई पाश्चात्य दार्शनिक चेतन शरीर को (Mierocom) तथा विशाल जगत् को (Macrocom) कहते हैं। सूक्ष्मरूप से प्राणि-शरीर में वह सब कुछ विद्यमान है जो स्थूल रूप में इस विशाल जगत् में दिखाई देता है।

इसी विचार को दृष्टि में रखते हुए भारत के कई योगियों ने 'स्वर विद्या' का आविष्कार किया था और इस विद्या से प्रत्येक गृहस्थी-परिचित होता था 'स्वरविद्या का जानना स्वास्थ्य के उन मौलिक नियमों का जानना है जिनके आधार पर परमाणु से सूर्य्य तक की गति होरही है। प्राचीन काल में प्रत्येक गृहस्थी अपने स्वास्थ्य को इस विद्या के सहारे ठीक रखता था।

'स्वर' का अभिप्राय क्या है ? जिस प्रकार वाह्य सृष्टि मे सूर्य्य तथा चन्द्र पाये जाते हैं इसी प्रकार मनुष्य शरीर की आभ्यन्तर रचना में भी सूर्य्य तथा चन्द्र हैं। दायीं नासिका के श्वास को सूर्य्य तथा वायीं नासिका के श्वास कोचन्द्र कहते हैं। दायें श्वास से मनुष्य-शरीर मे गर्मी का संचार होता है, वायें से सर्दी का। दायां श्वास सूर्य्य का काम देता है, वायां चन्द्र का। इन दोनों को क्रमशः गंगा, यमुना एवं ईडा, पगिला भी कहा जाता है और सम्भवतः वेदों आदि में जहां नदियों का नाम आता है वह (Microcom) की दृष्टि से ही है, भौगोलिक (Geographical) दृष्टि से नहीं।

'स्वर' के नियम का अभ्यास प्रत्येक गृहस्थ को करना चाहिए। दिन को वाह्य-जगत् में सूर्य होता है, उससे गर्मी उत्पन्न होती है। इस गर्मी का प्रतिकार करने के लिए शरीर में चन्द्र का उदय होना चाहिए। इसी प्रकार रात्रि को वाह्य-जगत् में चन्द्र का उदय होता है, जिससे शीतलता उत्पन्न होती है। इस शीतलता का प्रतिकार करने के लिए शरीर में सूर्य का उदय होना चाहिए। अर्थात् दिन को वायां तथा रात्रि को दायां सांस चलना चाहिए। इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है। यदि दिन और रात दोनों समय वायां सांस चले तो समझ लेना चाहिए कि शरीर में सर्दी से उत्पन्न होने वाले रोग शीघ्र ही उत्पन्न होंगे। जुक़ाम, खांसी, सिर दर्द आदि अक्सर इसी कारण हुआ करते हैं। इसी प्रकार यदि दिन रात दायां सांस चलने लगे तो गर्मी से उत्पन्न होने वाले रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जिस प्रकार वाह्य-जगत् में सूर्य तथा चन्द्र के उदय होने का अपना अपना समय है उसी प्रकार शरीर में भी इन तत्वों का समय वंधा होना चाहिए। इस दृष्टि से दिनचर्य्या को नियमित किया जाय तो स्वास्थ्यरक्षा की अनेक वातों पर स्वयं प्रकाश पड़जाता है। उदाहरणार्थ, भोजन के साथ पानी

पिया जाय या नहीं ? इस प्रश्न पर वैद्यों में परस्पर मतभेद पाया जाता है परन्तु 'स्वर-विद्या' जाननेवाला कह देगा कि क्योंकि भोजन दक्षिण स्वर में खाना चाहिए और पानी वाम स्वर में पीना चाहिए अतः भोजन के साथ पानी* पीना हितकर नहीं हो सकता। भोजन के अनन्तर दो घण्टे के बाद स्वर बदलने पर या स्वर बदलकर पानी पी ले। इसी प्रकार पूछा जाता है कि किस करवट सोना चाहिए। जैसे अभी कहा जा चुका है, रात्रि के समय शरीर में सूर्य्य नाड़ी चलनी चाहिए। और क्योंकि बाईं करवट लेटने से दायीं सांस-अथवा सूर्य्य नाड़ी—चलने लगती है अतः स्वास्थ्य की दृष्टि से रात्रि को बाईं करवट ही सोना लाभप्रद है। स्वर की दृष्टि से सब कोमल कार्य वाम स्वर में तथा कठोर कार्य दक्षिण स्वर में करने चाहिएं। जो लोग इस विषय में अधिक अध्ययन करना चाहें वे संस्कृत में 'शिवस्वरोदय'* तथा अंग्रेजी में 'Natures Finer Fovees' नामक पुस्तक पढ़ें।

इस प्रकरण में एक बात का लिख देना अत्यावश्यक है। साँस का दक्षिण वाम कर लेना सहज है। यदि दायीं करवट लेटा

---

*भोजन के साथ यदि पानी न पिया जाय और जब भोजन के दो घंटे बाद सदा पिया जाय, साथ ही भोजन के बाद ही लघुशंका करली जाय तो क्षीणता, आलस्य और बुढापा सहसा पास नहीं फटकेंगे। यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि सूर्य अर्थात् दाहिने स्वर के काल में ही रति-कर्म श्रेष्ठ होता है, वाम स्वर चलता हो तो इससे दूर रहें।

कृ० का० मा०

*हिन्दी में "शिव-स्वरोदय" और एक दूसरा ग्रन्थ "ज्ञान स्वरोदय" दोनों ही प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों पर ही ध्यान रखना अच्छा होगा।

कृ० का० मा०

जाय तो बायाँ साँस चलने लगता है, यदि बायीं करवट लेटा जाय तो दायां सांस चलने लगता है। परन्तु कभी कभी श्वास की गति इतनी तीव्र होती है कि कितनी देर तक भी क्यों न लेटा जाय सांस नहीं बदलता। कई लोग, जिन्हें कहीं से इस विषय में कुछ ज्ञान हो गया है, नाक में रुई आदि डालकर सांस के वेग को रोकने का प्रयत्न करते हैं। यह अत्यन्त हानिकर है। ऐसा कभी न करना चाहिए। इस प्रकार रोग अपने प्रचण्ड वेग से प्रकट होता है। स्वास्थ्य बनने के स्थान में नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। साथ ही स्वर-विद्या भी बदनाम होती है। यह भी नहीं समझ लेना चाहिए कि स्वर पर ही ध्यान देने से सब कुछ हो जायगा इसपर ध्यान न देने से जो रोग उत्पन्न हो जाते है, वे न होंगे; परन्तु स्वास्थ्य के अन्य नियमों का उल्लङ्घन करते चले जाने से मनुष्य फिर रोगों का घर हो जायगा। जहां स्वर पर ध्यान देना आवश्यक है, वहां नियमित व्यायाम, उचित तथा परिमित अहार, स्नान आदि पर ध्यान देना भी उतना ही आवश्यक है। स्वास्थ्य साधन के लिए किसी भी प्राकृतिक नियम का भङ्ग न होना चाहिए। क्योंकि स्वर के विषय में लोगों को ज्ञान ही नहीं है इसलिए उस की चर्चा यहां कर देनी आवश्यक समझी गई। स्वर का ज्ञान एक प्राकृतिक नियम का ज्ञान है जिससे प्रत्येक सद्गृहस्थ को परिचित होना चाहिए।

पतियों को आदेश

Husbands, love your wives, even Christ also loved the church and gave himself up for it.

That he might sanctify and cleanse it with the washing of water by the word. That he might present it to himself and a glorious church. not having spot, or wrinkle or any such thing: but that it should be holy and without blemish.

So ought men to love their wives as their own bodies. He that loveth his wife. loveth himself For no man ever yet hated his own flesh. but nourisheth and cherisheth it, even as the Lord the church. for we are members of his body, of his flesh and of his bones.

For this cause shall a man leave his father and mother, and shall be joined unto his wife and the two shall be one flesh.

दीर्घजीवी होने के उपाय

(१) सदा प्रसन्नचित्त रहो ।

(२) शुभ भविष्यवादी बनो, कोई भी बात हो सदा उसके अच्छे पहलू पर ध्यान लगाओ ।

(३) सदा काम में लगे रहो और परिश्रम करते रहो, आलस्य में एक मिनट भी मत खोओ।

(४) मादक वस्तुओं से सदा दूर रहो, सिगरेट और तम्बाकू का भी बहिष्कार करो ।